जैन पूजांजलि

चतुर्विंशति तीर्थंकर विधान

एवं

चतुर्विंशति तीर्थंकर निर्वाण क्षेत्र विधान)
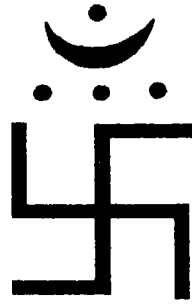
रचयिता

कविवर–राजमल पवैया भोपाल

संकलन कर्ता

उमेश चन्द्र जैन, सुरेन्द्र कुमार सौगानी, राजमल जैन, भोपाल

प्रकाशक

श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल, भोपाल

चौक बाजार, भोपाल (म.प्र.)

पन्द्रहवा संस्करण ५००० न्यौछावर २५ रुपया

भोपाल – अक्टूबर १९९९

दीपमालिका

पुस्तक प्राप्ति हेतु पत्र व्यवहार का पता
श्री दि. जैन मुमुक्षु मडल
श्री दिगम्बर जैन मदिर,
चौक बाजार, भोपाल

श्री राजमल जैन
मे एस रतनलाल
क्लॉथ मर्चेन्ट, चौक बाजार भोपाल

उमेश चन्द्र जैन द्वारा
संजीव कुमार राजीव कुमार जैन
६ जैन भवन, गली न २, लोहाबाजार,
भोपाल– ४६२००१ (म प्र)

श्री सुरेन्द्र सौगानी
भाभा मेडीकल स्टोर्स जुमेराती,
भोपाल

❑ प्रथम सस्करण	– ४०००	श्री दि जैन स्वाध्याय मडल सहारनपुर (यू पी)
❑ द्वितीय सस्करण	– ५०००	श्री दि जैन मुमुक्षु मडल भोपाल (म प्र)
❑ तृतीय सस्करण	– ७०००	श्री दि जैन मुमुक्षु मडल भोपाल (म प्र)
❑ चतुर्थ सरकरण	– १०००	श्री दि जैन महिलाशारत्र दरियागज दिल्ली
❑ पचम सरकरण	– २०००	श्री रूपचद सुशीलाबाई दि जैन ग्रथमाला ।वेदिशा
❑ षष्ठम सस्करण	– ३०००	श्री दि जैन मुमुक्षु मडल, भोपाल
❑ सप्तम सस्करण	– ५०००	श्री दि जैन मुमुक्षु मडल, भोपाल (मई ९७)
❑ आठवाँ सरकरण (२७ ५ ९२)	– १०००	श्री लक्ष्मण प्रसाद देवेन्द्र कुमार जैन भोपाल
❑ नौवाँ सस्करण (३१ ५ ९२)	– १०००	श्री रूपचद सुशीलाबाई दि जैन ग्रथमाला विदिशा
❑ दसवाँ सस्करण	– १०००	श्री बदामीलाल सुहागबाई दि जैन ग्रथमाला भोपाल
❑ ग्यारहवा सस्करण (५ ६ ९२)	– २०००	श्री दि जैन मुमुक्षु मडल, भोपाल
❑ बारहवाँ सरकरण	– १०००	श्री रूपचद सुशीलाबाई दि जैन ग्रथमाला, विदिशा
❑ तेरहवाँ सरकरण	– ४०००	श्री दि जैन मुमुक्षु मडल, भोपाल
❑ चौदहवाँ सरकरण (सितम्बर ९६)	– ५०००	श्री दि जैन मुमुक्षु मडल, भोपाल
❑ पन्द्रहवाँ सरकरण (अक्टूबर – ९९)	– ५०००	श्री दि जैन मुमुक्षु मडल, भोपाल
	४७०००	

जय हो जय हो जिनवाणी की।
जय हो जय हो जिनवाणी की ॥

बज उठी सरस प्रवचन बीणा श्री वीतराग जिनवाणी की।
शुभ अशुभ बंध-निज ध्यान मोक्ष जय हो वाणी कल्याणी की ॥ जय हो ॥१॥
अन्तर में हुई झनझनाहट निज में निज की प्रतीति जागी।
रागो से मोह ममत्व भागा मिथ्या भ्रम इति भिति भागी।
जडता के घन चकचूर हुये जय जिन श्रुत वीणा पाणी की ॥जय हो ॥२॥
रस गध-स्पर्श रूपादिक सब यह पुद्गल की छाया है.
यह देह भिन्न है चेतन से पुदगल की गदी काया है।
जग के सारे पदार्थ पर हैं ध्वनि गूजी केवलज्ञानी की ॥ जय हो ॥३॥
चेतन का है चैतन्य रूप इसमें है ज्योति अनत भरी
सुख ज्ञान वीर्य आनन्द अतुल हैं आत्म शक्ति गुणवंत खरी।
परमात्म परम पद पाती है चैतन्य शक्ति ही प्राणी की ॥ जय हो ॥४॥

卐

भजन

तत्वाभ्यास से ही श्रद्धान ज्ञान होगा ।
उर भेद ज्ञान होगा सम्यक् स्वभान होगा ॥
चारित्र सजाऊँगा निर्मल स्वरूपाचरण ।
चैतन्य प्राण जगते ही निज का ध्यान होगा ॥
कर्मों की प्रकृतियों का अब अत आएगा ही ।
अपने स्वभाव बल से कर्मावसान होगा ॥
चारो कषाय जाएगी क्षय की ओर क्षण क्षण ।
क्षय घातिया होते ही कैवल्य ज्ञान होगा ॥
फिर तो अघातिया भी उड़ जाएगे हवा में ।
निर्वाण प्राप्त होगा सिद्धत्व प्राण होगा ॥
तत्काल मुक्ति रमणी से होगा मेरा परिणय ।
त्रैलोक्य में स्वज्ञायक का गीत गान होगा ॥

卐

''जैन पूजांजलि'' लागत मूल्य में कम करने में सहयोगी - ''दानदाता''

५०१,०० श्रीमति लक्ष्मी देवी – श्री विमल चन्द जी भारिल्ल
५०१,०० श्री हुकमचन्द जी – पचशील नगर, भोपाल
२५१,०० श्री प राजमल जी – अशोक कुमार जी
२५१,०० श्रीमति शुकन्तला देवी ध प श्री रतनलाल जी सौगानी
२०१,०० श्रीमति चन्दनबाला जैन
१५१,०० श्री देवेन्द्र कुमार लक्ष्मण प्रसाद जी बडकुल
१५०,०० श्री अरुण कुमार जी
१०१,०० श्री सन्तोष कुमार रतनलाल जी
१०१,०० श्री श्रीचन्द्र जी
१०१,०० श्रीमति क्रान्तिदेवी धप श्री कोमलचन्द्र जी
१०१,०० श्री पन्नालाल जी
१०१,०० श्रीमति सुखवती ध प स्व श्री बाबूलाल जी
१०१,०० श्रीमति प्रेमबाई सेठी मातेश्वरी श्री अनिल कुमार जी सेठी
१०१,०० श्री छगनलाल प्रदीप कुमार जी
१०१,०० श्री ज्ञानचन्द्र जी (मनोज कटपीस)
१०१,०० श्री दिलीप कुमार सौगानी
१०१,०० श्री राजमल जी (एस रतनलाल)
१०१,०० श्री कस्तूर चन्द्र जी बजाज सिलवानी वाले
१०१,०० श्रीमति राजमति ध प श्री पारसमल जी
२०१,०० श्री सजीव कुमार उमेशचन्द्र जी
१०१,०० श्रीमति कविता ध प श्री सजीव कुमार
१०१,०० श्रीमति चन्द्रा ध प उमेशचन्द्र जी
१०१,०० श्री राजीव कुमार उमेश चन्द्र जी
१०१,०० श्रीमति सारिका ध.प श्री राजीव कुमार जी
१०१,०० श्री महेन्द्रकुमार जी प्रेमचन्द्र जी झाँसी वाले
१०१,०० श्रीमति माधुरी ध प श्री महेन्द्र कुमार जी
१०१,०० श्री शरद कुमार भागचन्द्र जी वर्धावाले
१०१,०० श्रीमति विनीता ध प श्री शरद कुमार जी

उपरोक्त सभी दानदाताओं को धन्यवाद
दि जैन मुमुक्षु मडल, भोपाल

चतुर्विंशति - तीर्थंकर पंचकल्याणक तिथि दर्पण

तीर्थंकर	कल्याणक तिथि		तीर्थंकर	कल्याणक तिथि	
	कार्तिक कृष्ण		अभिनदन	१४	ज्ञान
अनन्तनाथ	१	गर्भ	धर्मनाथ	१५	ज्ञान
सभवनाथ	४	ज्ञान		माघ कृष्ण	
पदमप्रभु	१३	जन्मतप	पदमप्रभु	६	गर्भ
महावीर	३०	निर्वाण	शीतलनाथ	१२	जन्मतप
	कार्तिक शुक्ल		ऋषभनाथ	१४	निर्वाण
पुष्पदंत	२	ज्ञान	श्रेयांसनाथ	३०	ज्ञान
नेमिनाथ	६	गर्भ		माघ शुक्ल	
अरहनाथ	१२	ज्ञान	वासुपूज्य	२	ज्ञान
पदमप्रभु	१३	तप	विमलनाथ	४	जन्मतप
सम्भवनाथ	१५	जन्म	विमलनाथ	६	ज्ञान
	मगसिर कृष्ण		अजितनाथ	१०	जन्मतप
महावीर	१०	तप	अभिनदन	१२	जन्मतप
	मगसिर शुक्ल		धर्मनाथ	१३	जन्मतप
पुष्पदन्त	१	जन्मतप		फागुन कृष्ण	
अरनाथ	१०	तप	पदमप्रभु	४	निर्वाग
मल्लिनाथ	११	जन्मतप	सुपार्श्वनाथ	६	निर्वाण
नमिनाथ	११	ज्ञान	सुपार्श्वनाथ	७	ज्ञान
अरहनाथ	१४	जन्म	चद्रप्रभु	७	ज्ञान
सभवनाथ	१५	तप	पुष्पदत	९	गर्भ
	पौष कृष्ण		ऋषभनाथ	११	ज्ञान
मल्लिनाथ	२	ज्ञान	श्रेयासनाथ	११	जन्मतप
चन्द्रप्रभु	११	जन्मतप	मुनिसुव्रत	१२	निर्वाण
पार्श्वनाथ	११	जन्मतप	वासुपूज्य	१४	जन्मतप
शीतलनाथ	१४	ज्ञान		फागुन शुक्ल	
	पौष शुक्ल		अरहनाथ	३	गर्भ
शातिनाथ	१०	ज्ञान	मल्लिनाथ	५	निर्वाण
अजितनाथ	११	ज्ञान	चद्रप्रभु	७	निर्वाण
			सभवनाथ	८	गर्भ

चतुर्विंशति - तीर्थंकर पंचकल्याणक तिथि दर्पण

तीर्थंकर	कल्याणक तिथि		तीर्थंकर	कल्याणक तिथि	
	चैत्र कृष्ण		अजितनाथ	३०	गर्भ
अनन्तनाथ	४	निर्वाण		ज्येष्ठ शुक्ल	
चन्द्रप्रभ	५	गर्भ	धर्मनाथ	४	निर्वाण
पार्श्वनाथ	४	ज्ञान	सुपार्श्वनाथ	१२	जन्मतप
शीतलनाथ	८	गर्भ		आषाढ कृष्ण	
ऋषभनाथ	९	जन्मतप	ऋषभनाथ	२	गर्भ
अनन्तनाथ	३०	ज्ञान निर्वाण	वासुपूज्य	६	गर्भ
अरहनाथ	३०	निर्वाण	नमिनाथ	१०	जन्मतप
	चैत्र शुक्ल			अषाढ शुक्ल	
मल्लिनाथ	१	गर्भ	महावीर	६	गर्भ
कुन्थुनाथ	३	ज्ञान	नेमिनाथ	७	निर्वाण
अजितनाथ	५	निर्वाण	विम्लनाथ	८	निर्वाण
सभवनाथ	६	निर्वाण		श्रावण कृष्ण	
सुमतिनाथ	११	जन्म,ज्ञाननिर्वाण	महावीर स्वामी	१	दिव्यध्वनि दिवस
महावीर	१३	जन्म	मुनिसुव्रत	२	गर्भ
पदमप्रभ	१५	ज्ञान	कुन्थुनाथ	१०	गर्भ
	बैशाख कृष्ण			श्रावण शुक्ल	
पार्श्वनाथ	२	गर्भ	सुमतिनाथ	२	गर्भ
मुनिसुव्रत	९	ज्ञान	नेमिनाथ	६	जन्म, तप
मुनिसुव्रत	१०	जन्म तप	पार्श्वनाथ	७	निर्वाण
नमिनाथ	१४	निर्वाण	श्रेयासनाथ	१५	निर्वाण
	बैशाख शुक्ल			भाद्र कृष्ण	
कुन्थुनाथ	१	जन्म,तप,निर्वाण	शातिनाथ	७	गर्भ
अभिनन्दन	६	गर्भ, निर्वाण		भाद्र शुक्ल	
सुमतिनाथ	९	तप	सुपार्श्वनाथ	६	गर्भ
महावीर	१०	ज्ञान	पुष्पदत	८	निर्वाण
धर्मनाथ	१३	गर्भ	वासुपूज्य	१४	निर्वाण
	ज्येष्ठ कृष्ण			अश्विन कृष्ण	
श्रेयासनाथ	६	गर्भ	नमिनाथ	२	गर्भ
विमलनाथ	१०	गर्भ		अश्विन शुक्ल	
अनन्तनाथ	१२	जन्म,तप	नेमिनाथ	१	ज्ञान
शांतिनाथ	१४	जन्म,तप निर्वाण	शीतलनाथ	८	निर्वाण

जैन पूजांजलि विषय सूची

जैन पूजांजलि विषय सूची

बड़े भाग्य से आऐ हैं

बडे भाग्य से आऐ है हम जिनवर के दरबार मे
बडे भाग्य से आये है हम जिनवर के दरबार मे,
हम अनादि से दुखिया व्याकुल चारों गति में भटक रहे
निज स्वरूप समझे बिन स्वामी भव अटवी मे अटक रहे
भेद ज्ञान बिन पडे हुए हैं पर के सोच विचार मे ॥ बडे भाग्य ॥१॥
महा पुण्य सयोग मिला तो शरण, आपकी पाई है।
आज आपके दर्शन करके निज की महिमा आई है
भव सागर से पार करो प्रभु हमको अब की बार मे ॥बडे भाग्य ॥२॥
दर्शन ज्ञान चरित्र शील तप के आभूषण पहिनादो
चार अनन्त, चतुष्टय की शोभा से स्वामी सजवा दो।
अष्ट स्वगुण प्रगटाऊ स्वामी फिर न बहू मझधार मे ॥बडे भाग्य ॥३॥

पुण्य पाप आदिक विकार की रुचि से जोरहते भयभीत।
पुण्य पाप के भाव जान विषतुल्य स्वयं से करते पीत॥

गगन मण्डल में उड़ जाऊं

तीन लोक के तीर्थ क्षेत्र सब वदन कर आऊं॥ गगन...
प्रथम श्री सम्मेद शिखर पर्वत पर मै जाऊं।
बीस टोंक पर बीस जिनेश्वर चरण पूज ध्याऊ॥ गगन .
अजित आदि श्री पार्श्वनाथ प्रभु की महिमा गाऊं।
शाश्वत तीर्थराज के दर्शन करके हर्षाऊँ॥ गगन .
फिर मंदारगिरी पावपुर वासुपूज्य ध्याऊँ।
हुए पच कल्याणक प्रभु के पूजन कर आऊँ॥ गगन
उर्जयत गिरनार शिखर पर्वत पर फिर जाऊँ।
नेमिनाथ निर्वाण क्षेत्र को वन्दूँ सुख पाऊँ॥ गगन .
फिर पावापुर महावीर निर्वाण पुरी जाऊँ।
जल मदिर मे चरण पूजकर नाचू हर्षाऊँ॥ गगन
फिर कैलाश शिखर अष्टापद आदिनाथ ध्याऊँ।
ऋषभदेव निर्वाण धरा पर शुद्ध भाव लाऊँ॥ गगन . .
पच महातीर्थो की यात्रा करके हर्षाऊँ।
सिद्ध क्षेत्र अतिशय क्षेत्रो पर भी मै हो जाऊ॥ गगन .
लगे हाथ फिर पंचमेरु नन्दीश्वर हो जाऊं।
जान सकूँ तो यही भावना जाने की भाऊँ॥ गगन
ऊर्ध्व मध्य पाताल लोक तक दर्शन कर आऊँ।
सर्व जिनालय जिनबिम्बो की शीष झुकाऊँ॥ गगन ..
तीन लोक की तीर्थ वदना कर निज कर आऊँ।
शुद्धातम से कर प्रतीति मै समकित उपजाऊँ॥ गगन
फिर रत्नत्रय धारण करके जिन मुनि बन जाऊँ।
निज स्वभाव साधन से स्वामी शिव पद प्रगटाऊँ॥ गगन

सिद्धों के दरबार में

हमको भी बुलवालो, स्वामी, सिद्धों के दरबार मे॥
जीवादिक सातो तत्वो की, सच्ची श्रद्धा हो जाए।
भेद ज्ञान से हमको भी प्रभु सम्यकदर्शन हो जाए।
मिथ्यातम के कारण स्वामी, हम डूबे संसार मे॥
हमको भी बुलावालो स्वामी सिद्धो के दरबार मे॥१॥

आत्म द्रव्य का ज्ञान करे हम, निज स्वभाव मे आ जाएँ।
रत्नत्रय की नाव बैठकर, मोक्ष भवन को पा जाएँ।
पर्यायो की चकाचौंध से, ब्हते है मझधार में।।
हमको भी बुलावालो स्वामी सिद्धो के दरबार मे ।।२।।

चलो रे भाई मोक्षपुरी

गाडी खडी रे खडी रे तैयार चलो रे भाई मोक्षपुरी ।।
सम्यक्‌दर्शन टिकट कटाओ, सम्यक् ज्ञान सवारो।
सम्यक्‌चारित की महिमा से आठो कर्म निवारो ।।चलो रे ।।१।।
अगर बीच मे अटके तो सर्वार्थसिद्धि जाओगे।
तैतीस सागर एक कोटि पूरव वियोग पाओगे ।।चलो रे ।।२।।
फिर नर भव से ही यह गाडी तुमको ले जाएगी।
मुक्ति वधू से मिलन तुम्हारा निश्चित करवाएगी ।।चलो रे ।।३।।
भव सागर का सेतु लाघकर यह गाडी जाती है।
जिसने अपना ध्यान लगाया उसको पहुचाती है ।।चलो रे ।।४।।
यदि चूके तो फिर अनत भव धर-धर पछताओगे।
मोक्षपुरी के दर्शन से तुम वचित रह जाओगे ।।चलो रे ।।५।।

चलो रे भाई सिद्धपुरी

देखो खडा है विमान महान, चलो रे भाई सिद्धपुरी।
वायुयान आया है सीट सुरक्षित अभी करालो।
सम्यक्‌दर्शन ज्ञान चरित के तीनों पास मगालो ।।देखो।।१।।
नरभव से ही यह विमान सीधा शिवपुर जाता है।
जो चूका वह फिर अनन्त कालो तक पछताता है ।।देखो ।।२।।
रत्नत्रय की बर्थ सभालो शुद्धभाव मे जीलो।
निज स्वभाव का भोजन लेकर ज्ञानामृत जल पीलो ।।देखो ।।३।।
निज स्वरूप मे जागरुक जो उनको पहुचाएगा।
सिद्ध शिला सिहासन तक जा तुमको बिठलाएगा ।।देखो ।।४।।
मुक्ति भवन मे मोक्ष वधू वरमाला पहनाएगी।
सादि अनत समाधि मिलेगी जगती गुण गाएगी ।।देखो ।।५।।

करलो जिनवर का गुणगान

करलो जिनवर का गुणगान, आई मंगल घडी।
आई मगल घडी, देखो मगल घडी।। करलो ।।१।।

वीतराग का दर्शन पूजन भव-भव को सुखकारी।
जिन प्रतिमा की प्यारी छविलख मैं जाऊ बलिहारी ।।करलो।।२।।

तीर्थंकर सर्वज्ञ हितकर महामोक्ष के दाता।
जो भी शरण आपकी आता, तुम सम ही बन जाता ।।करलो ।।३।।

प्रभु दर्शन से आर्त रौद्र परिणाम नाश हो जाते।
धर्म ध्यान में मन लगता है, शुक्ल ध्यान भी पाते ।।करलो।।४।।

सम्यक् दर्शन हो जाता है मिथ्यातम मिट जाता।
रत्नत्रय की दिव्य शक्ति से कर्म नाश हो जाता।। करलो।।५।।

निज स्वरूप का दर्शन होता, निज की महिमा आती।
निज स्वभाव साधन के द्वारा सिद्ध स्वगति मिल जाती ।।करलो।।६।।

मैंने तेरे ही भरोसे

मैने तेरे ही भरोसे महावीर, भवर मे नैया डार दई।।
जनम जनम का मै दुखियारा, भव-भव मे दुख पाया।
सारी दुनियाँ से निराश हो, शरण तुम्हारी आया ।।मैने ।।१।।

चारो गतियो मे भरमाया, कष्ट अनन्तो भोगे।
आज मुझे विश्वास हो गया, मेरी भी सुधि लोगे ।।मैने ।।२।।

नाम तुम्हारा सुनकर आया, मेरे सकट हर लो।
आत्म ज्ञान का दीपक दे दो, मुझको निज सम करलो ।।मैंने ।।३।।

वडे भाग्य से तुमको पाया, अब न कही जाऊँगा।
मुझे मोक्ष पहुँचा दो स्वामी, फिर न कभी आऊँगा ।।मैने ।।४।।

आत्म ज्ञानी

श्री सिद्ध चक्र का पाठ, करो दिन आठ, ठाठ से प्राणी।
फल पायो आतम ध्यानी ।।१।।

अगर जगत मे सुख होता तो तीर्थंकर क्यो इसको तजते।
पुण्यो का आनन्द छोड़कर निज स्वभाव चेतन क्यो भजते॥

जिसने सिद्धो का ध्यान किया, उसने अपना कल्याण किया।
समकित पाकर हो जाता सम्यक् ज्ञानी ॥फल पायो ॥२॥
पापो का क्षय हो जाता है, पर से ममत्व हट जाता है।
भव भावो से वैराग्य होय सुख दानी ॥ फल पायो ॥३॥
पुण्यो की धारा बहती है, माता जिनवाणी कहती है,
धर पच महाव्रत हो जाता मुनि ज्ञानी ॥फल पायो ॥४॥
फिर तेरह विधि चारित्र धार, निज रूप निरखता बार-बार,
श्रेणी चढ कर हो जाता केवलज्ञानी ॥फल पायो ॥५॥
निज के स्वरूप की मस्ती मे, रहता स्वभाव की बस्ती मे,
निश्चित पाता है सिद्धो की रजधानी ॥फल पायो ॥६॥
जिसने भी मन मे पाठ किया, उसने ही मंगल ठाठ किया।
क्रम-क्रम से पाता मोक्ष लक्ष्मी रानी ॥फल पायो ॥७॥

नरभव को सफल बनाओ

तुम करो आत्म कल्याण, धरो निज ध्यान,
मोक्ष में जाओ। नर भव को सफल बनाओ॥
मिथ्यात्व अधेरा छाया है, रागो ने सदा रूलाया है।
अज्ञान तिमिर को हरो, ज्ञान प्रगटाओ॥
नर भव को सफल बनाओ ॥१॥
पर्याय मूढता मे पडकर, रहते विभाव मे ही अड कर।
अब द्रव्य दृष्टि बन, निज का दर्शन पाओ॥
नर भव को सफल बनाओ ॥१॥
सातो तत्वो का ज्ञान करो, अपने स्वभाव का भान करो।
अब सम्यक् दर्शन, निज अंतर मे लाओ॥
नर भव को सफल बनाओ ॥१॥
लो भेद ज्ञान का अवलम्बन, है मुक्ति वधू का आमत्रण।
शिव पुर मे जाकर, अविनश्वर सुख पायो॥
नर भव को सफल बनाओ ॥१॥

मैं तो सर्वज्ञ स्वरूपी हूँ

मै अपने भावो का कर्ता, अपने वैभव का स्वामी हूँ।
शुभ अशुभ विभाव नही मुझमे, निर्मल अनत गुणधामी हूँ॥

मैं ज्योति पुंज चित्चमत्कार, चैतन्य पूर्ण सुखरूपी हूँ।।
मै तो सर्वज्ञ स्वरूपी हूँ ।।१।।
मै ज्ञानानदी ज्ञान मात्र अविचल दर्शन बलधारी हूँ।
मै शाश्वत चेतन मगलमय अविनाशी हूँ अविकारी हूँ।।
मै परम सत्य शिव सुन्दर हूँ, मै एक अखंड अरूपी हूँ।।
मैं तो सर्वज्ञ स्वरूपी हूँ ।।१।।

तो से लाग्यो नेह रे

तोसे लाग्यो नेह रे त्रिशलानदन वीर कुमार।
तोसे लाग्यो नेह रे, कुन्डलपुर के राजकुमार।।तोसे.।।१।।
गर्भकाल रत्नो की वर्षा, सोलह स्वप्न विचार।
त्रिशला माता हुई प्रफुल्लित, घर-घर मगलाचार।।तोसे ।।२।।
जन्म समय सुरपति सुमेरु पर, करे पुण्य अभिषेक।
तप कल्याणक लौकान्तिक आ करे हर्ष अतिरेक।।तोसे ।।३।।
चार घातिया क्षय करते ही पायो केवल ज्ञान।
समवशरण मे खिरी दिव्यध्वनि, हुआ विश्व कल्याण।।तोसे.।।४।।
पावापुर से कर्मनाश सव पायो पद निर्वाण।
यही विनय है दे दो स्वामी हमको सम्यक् ज्ञान।।तोसे ।।५।।
भेदज्ञान की ज्योति जगा दो अधकार कर क्षार।
तुम समान मै भी बन जाऊँ हो जाऊँ भव पार।।तोसे.।।६।।

सुनी जब मैंने जिनवाणी

भ्रम तम पटल चीर, दरसायो चेतन रवि ज्ञानी।।सुनी
काम क्रोध गज शिथिल भए, पीवत समरस पानी।
प्रगट्यो भेद विज्ञान निजंतर, निज आतम जानी।।सुनी।।१।।
ध्रुव वस्तुभाव की रूचि अब जागी, छोडी मन मानी।
निज परिणित की अनुपम छवि, अब मैंने पहचानी।।सुनी ।।२।।

अब प्रभु चरण छोड़ कित जाऊँ

ऐसी निर्मल बुद्धि प्रभु दो शुद्धातम को ध्याऊँ।।अब ।।
सुर नर पशु नारक दुख भोगे कब तक तुम्हें सुनाऊँ।
बैरी मोह महा दुख देवे कैसे याहि भगाऊँ।।अब ।।१।।

पर से पृथग्भूत होने पर ज्ञान भावना जाती है।
निज स्वभाव से सजी साधना देख कलुषता भगती है ।।

सम्यक् दर्शन की निधि दे दो तो भव भ्रमण मिटाऊँ।
सिद्ध स्वपद की प्राप्ति करूँ मै परम शान्त रस पाऊँ ।।अब ।।२।।
भेद ज्ञान का वैभव पाऊँ निज के ही गुण गाऊँ।
तुव प्रसाद से वीताराग प्रभु भव सागर तक जाऊँ ।।अब ।।३।।

मैं तो परमात्म स्वरूपी हूँ।

मैं तो परमात्म स्वरूपी हूँ। मै तो शुद्धात्म स्वरूपी हूँ।
मैं इन्द्रिय विषय कषाय रहित, पुदगल से भिन्न अरूपी हूँ।।१।।
मै पुण्य पाप रज से विहीन, पर से निरपेक्ष अनूपी हूँ।
मै निष्कलक निर्दोष अटल, निर्मल अनंत गुणभूपी हूँ।।२।।
मै परम पारिणामिक स्वभावमय केवल ज्ञान स्वरूपी हूँ।
मै तो परमात्म स्वरूपी हूँ।।३।।

अब तो ऋषभनाथ लौ लागी

वीतराग मुद्रा दर्शन कर ज्ञानज्योति उर जागी ।।अब
ज्ञानानदी शुद्ध स्वभावी निज परिणति अनुरागी।
भव भोगन से ममता त्यागी भये नाथ बैरागी ।।अब ।।१।।
अष्टापद कैलाश शिखर से कर्म धूल सब त्यागी।
अनुपम सुख निर्वाण प्राप्ति से भव बाधा सब भागी ।।अब ।।२।।
मेरो रोग मिटा दो स्वामी मैं अनादि को रागी।
वीतरागता जागे उर में बन जाऊँ बड भागी ।।अब ।।३।।

जय हो जय हो जिनवाणी की

बज उठी सरस प्रवचन वीणा श्री वीतराग जिनवाणी की
शुभ अशुभ बन्ध निज ध्याम मोक्ष–जय हो वाणी कल्याणी की ।। जय हो ।।1।।
अन्तर मे हुई झनझनाहट निज में निज की प्रतीति जागी,
रागो से मोह ममत्व भागा मिथ्या भ्रम ईतिभीति भागी,
जडता के घनचकचूर हुए जय जिन श्रुत बीणा पाणी की ।।जय हो।।2।।
रस गध स्पर्श रूपादिक सब यह तो पुद्‌गल की छाया है।
यह देह भिन्न है चेतन से पुद्‌गल की गदी काया है।।
जग के सारे पदार्थ पर हैं ध्वनि गूँजी केवलज्ञानी की।। जय हो।।3।।
चेतन का चैतन्य रूप इसमे है ज्योति अनन्त भरी।
सुख ज्ञान–वीर्य आनन्द अतुल है आत्म शक्ति गुणवतखरी।
परमात्म परम पद पाती है चैतन्य शक्ति ही प्राणी की ।।जय हो।। 4।।

卐

राग द्वेष शुभ अशुभ भाव से होते पुण्य पाप के बध।
साम्य भाव पीयाषामृत पीने वाला ही है निर्बन्ध ॥

श्री
जैन पूजान्जलि
एवं
चतुर्विंशति तीर्थंकर विधान

ॐ नम सिद्धेभ्य

अभिषेक पाठ

मै परम पूज्य जिनेन्द्र प्रभु को भाव से वन्दन करूँ।
मन वचन काय, त्रियोग पूर्वक शीश चरणों में धरूँ ॥१॥
सर्वज्ञ केवलज्ञानधारी की सुछवि उर में धरूँ।
निर्ग्रन्थ पावन वीतराग महान की जय उच्चरूँ ॥२॥
उज्जवल दिगम्बर वेश दर्शन कर हृदय आनन्द भरूँ।
अति विनय पूर्व नमन करके सफल यह नरभव करूँ ॥३॥
मै शुद्ध जल के कलश प्रभु के पूज्य मस्तक पर करूँ।
जल धार देकर हर्ष से अभिषेक प्रभु जी का करूँ ॥४॥
मै न्हवन प्रभु का भाव से कर सकल भवपातक हरूँ।
प्रभु चरणकमल पखारकर सम्यक्त्व की सम्पत्ति वरू ॥५॥

जिनेन्द्र - अभिषेक -स्तुति

मैने प्रभु के चरण पखारे।
जनम, जनम से संचित पातक तत्क्षण ही निरवारे ॥१॥
प्रासुक जल के कलश श्री जिन प्रतिमा ऊपर ढारे।
वीतराग अरिहंत देव के गूंजे, जय जयकारे ॥२॥
चरणाम्बुज स्पर्श करत ही छाये हर्ष अपारे।
पावन तन, मन नयन भये सब दूर भये अंधियारे ॥३॥

कर लो जिनवर की पूजन

कर लो जिनवर की पूजन, आई पावन घडी।
आई पावन घडी मन भावन घडी ॥१॥
दुर्लभ यह मानव तन पाकर, कर लो जिन गुणगान।
गुण अनन्त सिद्धो का सुमिरण, करके बनो महान ॥करलो.॥२॥
ज्ञानावरण, दर्शनावरणी, मोहनीय अंतराय।
आयु नाम अरु गोत्र वेदनीय, आठों कर्म नशाय ॥करलो.॥३॥
धन्य धन्य सिद्धो की महिमा, नाश किया संसार।
निज स्वभाव से शिवपद पाया, अनुपम अगम अपार ॥करलो.॥४॥
जड से भिन्न सदा तुम चेतन करो भेद विज्ञान।
सम्यक्दर्शन अगीकृत कर निज को लो पहचान ॥करलो ॥५॥
रत्नत्रय की तरणी चढकर चलो मोक्ष के द्वार।
शुद्धातम का ध्यान लगाओ हो जाओ भवपार ॥करलो.॥६॥

पूजा पीठिका

ॐ जय जय जय नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु
अरिहतो को नमस्कार है, सिद्धों को सादर वदन।
आचार्यो को नमस्कार है, उपाध्याय को है वन्दन ॥१॥
और लोक के सर्वसाधुओ को है विनय सहित वन्दन।
पच परम परमेष्ठी प्रभु को बार बार मेरा वन्दन ॥२॥
ॐ ह्रीं श्री अनादि मूलमत्रेभ्यो नम पुष्पाजलि क्षिपामि।
मगल चार, चार है उत्तम चार शरण मे जाऊँ मै।
मन वच काय त्रियोग पूर्वक, शुद्ध भावना भाऊँ मैं ॥३॥
श्री अरिहत देव मगल है, श्री सिद्ध प्रभु हैं मंगल।
श्री साधु मुनि मगल है, है केवलि कथित धर्म मगल ॥
श्री अरिहत लोक में उत्तम , सिद्ध लोक में है उत्तम।
साधु लोक में उत्तम है, है केवलि कथित धर्म उत्तम ॥४॥

तीन लोक का नाथ ज्ञान सम्राट सिद्ध पद का स्वामी।
ज्ञानानंद स्वभावी ज्ञायक तू ही है अन्तर्यामी ॥

श्री अरिहत शरण में जाऊँ, सिद्ध शरण में मैं जाऊँ।
साधु शरण में जाऊँ केवलि कथित धर्मशरणा पाऊँ ॥५॥

ॐ ह्रीं नमो अर्हते स्वाहा पुष्पाजलि क्षिपामि।

मंगल विधान

णमोकार का मन्त्र शाश्वत इसकी महिमा अपरम्पार।
पाप ताप संताप क्लेश हर्ता भवभय नाशक सुखकार ॥१॥
सर्व अमगल का हर्ता है सर्वश्रेष्ठ है मन्त्र पवित्र।
पाप पुण्य आश्रव का नाशक सवरमय निर्जरा विचित्र ॥२॥
बन्ध विनाशक मोक्ष प्रकाशक वीतरागपद दाता मित्र।
श्री पचपरमेष्ठी प्रभु के झलक रहे है इसमे चित्र ॥३॥
इसके उच्चारण से होता विषय कषायो का परिहार।
इसके उच्चारण से होता अन्तर मन निर्मल अविकार ॥४॥
इसके ध्यान मात्र से होता अतर द्वन्दों का प्रतिकार।
इसके ध्यान मात्र मात्र से होता ब्राह्यान्तर आनन्द अपार ॥५॥
णमोकार है मन्त्र श्रेष्ठतम सर्व पाप नाशनहारी।
सर्व मगलो मे पहला मगल पढते ही सुखकारी ॥६॥
यह पवित्र अपवित्र दशा सुस्थिति दुस्थिति मे हितकारी।
निमिष मात्र मे जपते ही होते विलीन पातक भारी ॥७॥
सर्व विघ्न बाधा नाशक है सर्व सकटो का हर्ता।
अजर अमर अविकल अविकारी अविनाशी सुख का कर्ता ॥८॥
कर्माष्टक का चक्र मिटाता, मोक्ष लक्ष्मी का दाता।
धर्मचक्र से सिद्धचक्र पाता जो ओम् नम ध्याता ॥९॥
ओम् शब्द मे गर्भित पाँचो परमेष्ठी निज गुण धारी।
जो भी ध्याते बन जाते परमात्मा पूर्ण ज्ञान धारी ॥१०॥
जय जय जयति पच परमेष्ठी जय जय णमोकार जिन मंत्र।
भव बन्धन से छुटकारे का यही एक है मन्त्र स्वतत्र ॥११॥

तन पर्वत पर गिरे न अब तक वज्र अरे यमराज का।
तब तक कर्म नाश करने को ले शरण निजराज का।।

इसकी अनुपम महिमा का शब्दों से कैसे हो वर्णन।
जो अनुभव करते है वे ही पा लेते हैं मुक्ति गगन ॥१२॥

अर्घ्य

जल गंधाक्षत पुष्प सुचरु ले दीप धूप फल अर्घ्य धरूँ।
जिन गृह में जिनराज पंच कल्याणक पाँचोंनमन करूँ ॥१॥
ॐ ह्रीं श्री तीर्थकर पच कल्याणकेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
जल गधाक्षत पुष्प सुचरु ले दीप धूप फल अर्घ्य धरूँ।
जिन गृह मे पाँचों परमेष्ठी के चरणो में नमन करूँ ॥२॥
ॐ ह्रीं श्री अरहतादि पच परमेष्ठिभ्यो अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।
जल गधाक्षत पुष्प सुचरु ले दीप धूप फल अर्घ्य धरूँ।
जिन गृह मे निजप्रतिमा सम्मुख सहस्त्रनाम को नमन करूँ ॥३॥
ॐ ह्री श्री भगवज्जिनसहस्त्रनामेभ्यो अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

स्वस्ति मंगल

मगलमय भगवान वीर प्रभु मगलमय गौतम गणधर।
मगलमय श्री कुन्दकुन्द मुनि मगल जैन धर्म सुखकर ॥१॥

मगलमय श्री ऋषभदेवप्रभु मगलमय श्री अजित जिनेश।
मंगलमय श्री सम्भव जिनवर, मगल अभिनदन परमेश ॥२॥

मगलमय श्री सुमति जिनोत्तम मंगल पद्मनाथ सर्वेश।
मगलमय सुपार्श्व जिन स्वामी मंगल चन्द्राप्रभु चन्द्रेश ॥३॥

मगलमय श्री पुष्पदंत प्रभु, मंगल शीतलनाथ सुरेश।
मगलमय श्रेयासनाथ जिन मगल वासुपूज्य पूज्येश ॥४॥

मगलमय श्री विमलनाथ विभु, मगल अनन्तनाथ महेश।
मगलमय श्री धर्मनाथ प्रभु, मंगल शातिनाथ चक्रेश ॥५॥

मगलमय श्री कुन्थुनाथ जिन मगल श्री अरनाथ गुणेश।
मगलमय श्री मल्लिनाथ प्रभु मगल मुनिसुव्रत सत्येश ॥६॥

रूचि अनुयायी वीर्य काम करता है जैसी मति होती।
पर भावो का रुचि त्यागे तो उरमे निज परिणति होती॥

मंगलमय नमिनाथ जिनेश्वर मंगल नेमिनाथ योगेश।
मगलमय श्री पार्श्वनाथ प्रभु, मंगल वर्धमान तीर्थेश ॥७॥

मगलमय अरिहत महाप्रभु,मगल सर्व सिद्ध लोकेश।
मंगलमय आचार्य श्री जय मगल उपाध्याय ज्ञानेश ॥८॥

मंगलमय श्री सर्वसाधुगण, मंगल जिनवाणी उपदेश।
मंगलमय सीमन्धर आदिक, विद्यमान जिन बीस परेश ॥९॥

मगलमय त्रैलोक्य जिनालय, मंगल जिन प्रतिमा भव्येश।
मंगलमय त्रिकाल चौबीसी, मंगल समवशरण सविशेष ॥१०॥

मंगल पंचमेरु जिन मन्दिर, मगल नन्दीश्वर द्वीपेश।
मंगल सोलह कारण दशलक्षण, रत्नत्रय व्रत भव्येश ॥११॥

मंगल सहस्त्र कूट चैत्यालय मगल मानस्तम्भ हमेश।
मंगलमय केवलि श्रुतकेवलि मगल ऋद्धिधारि विद्येश ॥१२॥

मंगलमय पाँचों कल्याणक, मंगल जिन शासन उद्देश।
मंगलमय निर्वाण भूमि, मगलमय अतिशय क्षेत्र विशेष ॥१३॥

सर्व सिद्धि मगल के दाता हरो अमगल हे विश्वेश।
जब तक सिद्ध स्वपद ना पाऊँ तब तक पूजूँ हे ब्रह्मेश ॥१४॥

卐

श्री नित्य नियम पूजन

जय जय देव शास्त्र गुरु तीनो, मगलदाता प्रभु वन्दन।
पच परम परमेष्ठी प्रभु के चरणो को मैं करूँ नमन॥
विद्यमान तीर्थकर बीस विदेह क्षेत्र के करूँ नमन।
तीन लोक के कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालय को वंदन॥
परमोत्कृष्ट अनत गुण सहित सर्व सिद्ध प्रभु को वन्दन।
वृषभादिक श्री वीर जिनेश्वर तीर्थकर सब करूँ नमन॥
निज भावो की अष्ट द्रव्य ले सविनय नाथ करूँ पूजन।
श्रद्धा पूर्वक भक्तिभाव से करता हूँ निजपद अर्चन॥

ॐ ह्रीं श्री सर्वजिनचरणाग्रेषु पुष्पाजलि क्षिपामि।

बाह्य विषय तो मृग जवलत ह उनमे स्त्रोत न शान्ति का।
अन्तर्नभ मे क्यो छाया है बादल मिथ्या भ्रान्ति का ।।

अनन्तानुबंधी कषाय का नाश करूँ दो यह आशीष।
मोहरूप मिथ्यात्व नष्ट कर दूँ मै समकित जल से ईश ।।
देव शास्त्र गुरु पाँचों परमेष्ठी प्रभु विद्यमान जिन बीस।
कृत्रिम अकृत्रिम जिनगृह वन्दूँ सर्व सिद्ध जिनवर चौबीस ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री सर्वजिनचरणाग्रेषु जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल नि ।

अप्रत्यख्यानावरणी कषाय का नाश करूँ तत्काल।
अविरति हर अणुव्रत लूँ, समकित चदन से चमके निज भाल ।।देव.।।२।।

ॐ ह्रीं श्री सर्वजिनचरणाग्रेषु ससारताप विनाशनाय चदन नि ।

मैं कषाय प्रत्यख्यानावरणी हर करूँ प्रमाद अभाव।
पच महाव्रत ले समकित अक्षत से पाऊँ शुद्ध स्वभाव ।।देव.।।३।।

ॐ ह्रीं श्री सर्वजिनचरणाग्रेषु अक्षयपद प्राप्ताय अक्षत नि ।

प्रभु कषाय संज्वलन नाश कर पाऊँ मै निज में विश्राम।
समकित पुष्प खिले अन्तर मे मै अरहंत बनूँ निष्काम ।।४।।

ॐ ह्रीं श्री सर्वजिनचरणाग्रेषु कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि ।

पाप पुण्य शुभ अशुभ आश्रव का निरोध कर लूँ संवर।
समकित चरु से कर्म निर्जराकर मैं बंध हरूँ सत्वर ।।देव ।।५।।

ॐ ह्रीं श्री सर्वजिनचरणाग्रेषु क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि ।

राग द्वेष सबका अभाव कर नो कषाय का करूँ विनाश।
सम्यक्ज्ञान दीप से स्वामी पाऊँ केवलज्ञान प्रकाश ।।देव.।।६।।

ॐ ह्रीं श्री सर्वजिनचरणाग्रेषु मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि ।

ज्ञानावरणादिक आठों कर्मो का नाश करूँ भगवन्त।
समकित धूपसुवासित हो उर भवसागर का कर दूँ अन्त ।।देव.।।७।।

ॐ ह्रीं श्री सर्वजिनचरणाग्रेषु अष्टकर्म दहनाय धूप नि ।

गुणस्थान चौदहवाँ पाकर योग अभाव करूँ स्वामी।
समकित का फल महामोक्ष पद पाऊँ हे अन्तर्यामी ।।देव.।।८।।

ॐ ह्रीं श्री सर्वजिनचरणाग्रेषु महामोक्ष फल प्राप्ताय फल नि ।

निज परिणति को किया बहिष्कृत तूने अपनी भूल से।
पर परिणति से राग कर रहा खेल रहा है धूल से ॥

बन्ध हेतु मिथ्यात्व असंयम और प्रमाद कषाय त्रियोग।
समकित का अर्घ्य सजा अन्तर में पाऊँ पद अनर्घ अवियोग ॥द्वे.॥९॥

ॐ ह्रीं श्री सर्वजिनचरणाग्रेषु अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि ।

जयमाला

जिनवर पद पूजन करूँ नित्य नियम से नाथ।
शुद्धातम से प्रीत कर मैं भी बनूं सनाथ ॥१॥

तीन लोक के सारे प्राणी है कषाय आतप से तप्त।
इन्द्रिय विषय रोग से मूर्छित भव सागर दुख से संतप्त ॥२॥

इष्ट वियोग अनिष्ट योग से खेद खिन्न जग के प्राणी।
उनको है सम्यक्त्व परम हितकारी औषधि सुखदानी ॥३॥

सर्व दुखो की परमौषधि पीते ही होता रोग विनष्ट।
भवनाशक जिन धर्म शरण पाते ही मिट जाता भवकष्ट ॥४॥

है मिथ्यात्व असंयम और कषाय पाप की क्रिया विचित्र।
पाप क्रियाओं से निवृत्त हो तो होता सम्यक्चारित्र ॥५॥

घाति कर्म बन्धन करने वाली शुभ अशुभ क्रिया सब पाप।
महा पाप मिथ्यात्व सदा ही देता है भव भव संताप ॥६॥

इसके नष्ट हुए बिन होता दूर असयम कभी नहीं।
इसके सम दुखकारी जग मे और पाप है कहीं नहीं ॥७॥

मुनिव्रत धारण कर ग्रैवेयक मे अहमिन्द्र हुआ बहुबार।
सम्यकदर्शन बिन भटका प्रभु पाए जग मे दुक्ख अपार ॥८॥

क्रोधादिक कषाय अनुरजित हो भवसागर मे डूबा।
साता के चक्कर मे पडकर नही असाता से ऊबा ॥९॥

पाप पुण्य दुखमयी जाकर यदि मैं शुद्ध दृष्टि होता।
नष्ट विभाव भाव कर लेता यदि मैं द्रव्य दृष्टि होता ॥१०॥

मिथ्यातम के गए बिना प्रभु नही असयम जाता है।
जप तप व्रत पूजन अर्चन से जिय सम्यक्त्व न पाता है ॥११॥

तू विभाव के तरुओ की छाया से कब तक सोएगा।
जप तप व्रत का श्रम करके भी बीज दुखो के बोएगा ॥

इसीलिए मै शरण आपकी आया हूँ जिन देव महान।
सम्यकदर्शन मुझे प्राप्त हो, पाऊँस्वपर भेद विज्ञान ॥१२॥

नित्य नियम पूजन करके प्रभु निजस्वरूप का ज्ञान करूँ।
पर्यायो से दृष्टि हटा, बन द्रव्य दृष्टि निज ध्यान धरूँ ॥१३॥

ॐ ह्रीं श्री सर्वजिनचरणाग्रेषु पूर्णार्घ्यं नि स्वाहा।

नित्य नियम पूजन करूँ जिनवर पद उर धार।
आत्म ज्ञान की शक्ति से हो जाऊँ भव पार ॥

इत्याशीर्वाद

जाप्य मन्त्र - ॐ ह्रीं श्री सर्वजिनेन्द्रेभ्यो नम ।

卐

श्री देवशास्त्रगुरु जिन पूजन

वीतराग अरिहत देव के पावन चरणो मे बन्दन।
द्वादशाग श्रुत श्री जिनवाणी जग कल्याणी का अर्चन ॥
द्रव्य भाव संयममय मुनिवर श्री गुरु को मै करूँ नमन।
देव शास्त्र गुरु के चरणो का बारम्बार करूँ पूजन ॥

ॐ ह्रीं श्री देव शास्त्र गुरु समूह अत्र अवतर अवतर सवौषट,
ॐ ह्रीं श्री देव शास्त्र गुरु समूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ ,
ॐ ह्रीं श्री देव शास्त्र गुरु समूह अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

आवरण ज्ञान पर मेरे है, हूँ जन्म मरण से सदा दुखी।
जब तक मिथ्यात्व हृदय में है यह चेतन होगा नहीं सुखी ॥
ज्ञानावरणी के नाश हेतु चरणो मे जल करता अर्पण।
देव शास्त्र गुरु के चरणो का बारम्बार करूँ पूजन ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरूभ्यो ज्ञानावरणकर्मविनाशनाय जल नि ।

दर्शन पर जब तक छाया है ससार ताप तब तक ही है।
जब तक तत्वो का ज्ञान नहीं मिथ्यात्व पाप तब तक ही है ॥
सम्यक् श्रद्धा के चंदन से मिट जायेगा दर्शनावरण ॥देव.॥२॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरूभ्यो दर्शनावरणकर्म विनाशनाय चन्दन नि ।

जब सम्यक्त्व पल्लवित होता तो पवित्रता आती है।
ज्ञानॉकुर की कार्य प्रणाली मे विचित्रता आती है।।

निज स्वभाव चैतन्य प्राप्ति हित जागे उर में अन्तरबल।
अव्याबाधित सुख का घाता वेदनीय है कर्म प्रबल ।।
अक्षत चरण चढाकर प्रभुवर वेदनीय का करूँदमन ।।
देव शास्त्र गुरु के चरणों का बारम्बार करूँ पूजन ।।३।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो वेदनीयकर्म विनाशनाय अक्षत नि ।

मोहनीय के कारण यह चेतन अनादि से भटक रहा।
निज स्वभाव तज पर द्रव्यो की ममता मे ही अटक रहा।
भेदभाव की खड्ग उठाकर मोहनीय का करूँ हनन ।।देव.।।४।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहनीय कर्म विनाशनाय पुष्प नि ।

आयु कर्म के बध उदय से सदा उलझता आया हूँ।
चारों गतियों में डोला हूँ निज को जान न पाया हूँ।।
अजर अमर अविनाशी पदहेतु आयुकर्म का करूँशमन ।।देव.।।५।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो आयुकर्म विनाशनाय नैवेद्य नि ।

नाम कर्म के कारण मैंने जैसा भी शरीर पाया।
उस शरीर को अपना समझा निज चेतन को विसराया।
ज्ञानदीप के चिर प्रकाश से नामकर्म का करूँ दमन ।।देव.।।६।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो नामकर्म विनाशनाय दीप नि ।

उच्च नीच कुल मिला बहुत पर निजकुल जान नहीं पाया।
शुद्ध बुद्ध चैतन्य निरजन सिद्ध स्वरूप न उर भाया ।।
गोत्र कर्म का धूम्र उडाऊ निज परिणति मे करूँ नमन ।।देव.।।७।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो गोत्रकर्म विनाशनाय धूप नि ।

दान लाभ भोगोपभोग बल मिलने मे जो बाधक है।
अन्तराय के सर्वनाश का आत्मज्ञान ही साधक है।
दर्शन ज्ञान अनन्त वीर्य सुख पाऊँ निज आराधक बन ।।देव।।८।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो अन्तराय कर्म विनाशनाय फल नि ।

कर्मोदय मे मोह रोष से करता है शुभ अशुभ विभाव।
पर मे इष्ट अनिष्ट कल्पना राग द्वेष विकारी भाव ।।
भाव कर्म करता जाता है जीव भूल निज आत्मस्वभाव।
द्रव्य कर्म बधते है तत्क्षण शाश्वत सुख का करे अभाव ।।

आत्म क्षितिज की प्राची मे सम्यक् दर्शन का सूर्य महान।
जिसे प्रगट करने मे तू सक्षम चैतन्य नाथ भगवान ।।

चार घातिया चउ अघातिया अष्ट कर्म का करूँ हनन ।।
देव शास्त्र गुरु के चरणों का बारम्बार करूँ पूजन ।।९।।
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरूभ्यो सम्पूर्ण अष्टकर्म विनाशनाय अर्घ्य नि ।

जयमाला

हे जगबन्धु जिनेश्वर तुमको अब तक कभी नही ध्याया।
श्री जिनवाणी बहुत सुनी पर कभी नही श्रद्धा लाया ।।१।।
परम वीतरागी सन्तों का भी उपदेश न मन भाया।
नरक तिर्यच देव नरगति मे भ्रमण किया बहु दुख पाया ।।२।।
पाप पुण्य में लीन हुआ निज शुद्ध भाव को बिसराया।
इसीलिये प्रभुवर अनादि से भव अटवी में भरमाया ।।३।।
आज तुम्हारे दर्शन कर प्रभु मैने निज दर्शन पाया।
परम शुद्ध चैतन्य ज्ञानघन का बहुमान हृदय आया ।।४।।
दो आशीष मुझे हे जिनवर जिनवाणी गुरुदेव महान।
मोह महातम शीघ्र नष्ट हो जाये करूँ आत्म कल्याण ।।५।।
स्वपर विवेक जगे अन्तर में दो सम्यक् श्रद्धा का दान।
क्षायक हो उपशम हो हे प्रभु क्षयोपशम सद्दर्शन ज्ञान ।।६।।
सात तत्व पर श्रद्धा करके देव शास्त्र गुरु को मानूँ।
निज पर भेद जानकर केवल निज मे ही प्रतीत ठानूँ ।।७।।
पर द्रव्यों से मैं ममत्व तज आत्म द्रव्य को पहचानूँ।
आत्म द्रव्य को इस शरीर से पृथक भिन्न निर्मल जानूँ ।।८।।
समकित रवि की किरणे मेरे उर अन्तर में करे प्रकाश।
सम्यकज्ञान प्राप्तकर स्वामी पर भावो का करूँ विनाश ।।९।।
सम्यकचारित को धारण कर निज स्वरूप का करूँ विकास।
रत्नत्रय के अवलम्बन से मिले मुक्ति निर्वाण निवास ।।१०।।
जय जय जय अरहन्त देव जय, जिनवाणी जग कल्याणी।
जय निर्ग्रन्थ महान सुगुरु जय जय शाश्वत शिवसुखदानी ।।११।।
ॐ ह्री श्री देवशास्त्रगुरूभ्यो अनर्घ्य पद प्राप्तये पूर्णार्घ्य नि स्वाहा।

अरे विकल्पातीत अवस्था निर्विकल्प होकर पाले।
निज अतर मे भीतर जाकर पूर्ण अतीन्द्रिय सुख पाले ।।

देवशास्त्र गुरु के वचन भाव सहित उरधार।
मन वच तन जो पूजते वे होते भव पार ।।

इत्याशीर्वाद

जाप्य मत्र ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्र गुरुभ्यो नम

卐

श्री विद्यमान बीस तीर्थंकर पूजन

सीमधर, युगमंधर, बाहु, सुबाहु, सुजात स्वयंप्रभ देव।
ऋषभानन, अनन्तवीर्य, सौरीप्रभु विशाल कीर्ति सुदेव ।।
श्री वज्रधर, चन्द्रानन प्रभु चन्द्रबाहु, भुजंगम ईश।
जयति ईश्वर जयतिनेमि प्रभु वीरसेन महाभद्र महीश ।।
पूज्य देवयश अजितवीर्य जिन बीस जिनेश्वर परम महान।
विचरण करते है विदेह में शाश्वत तीर्थंकर भगवान ।।
नहीं शक्ति जाने की स्वामी यहीं वन्दना करूँ प्रभो।
स्तुति पूजन अर्चन करके शुद्ध भाव उर भरूँ प्रभो ।।

ॐ ह्रीं श्री विदेहक्षेत्रस्थित विद्यमानबीसतीर्थंकर जिन समूह अत्र अवतर अवतर सवौषट ॐ ह्रीं श्री विदेहक्षेत्रस्थित विद्यमानबीसतीर्थंकर जिन समूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ ॐ ह्रीं श्री विदेहक्षेत्रस्थित विद्यमानबीसतीर्थंकर जिन समूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

निर्मल सरिता का प्रासुक जल लेकर चरणों में आऊँ।
जन्म जरादिक क्षय करने को श्री जिनवर के गुण गाऊँ ।।
सीमधर, युगमधर आदिक, अजितवीर्य को नित ध्याऊँ।
विद्यमान बीसों तीर्थंकर की पूजन कर हर्षाऊँ ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानबीसतीर्थंकराय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जल नि।

शीतल चंदन दाह निकन्दन लेकर चरणों में आऊँ।
भव सन्ताप ताप हरने को श्री जिनवर के गुण गाऊँ ।।सीम.।।२।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानबीसतीर्थंकराय भवताप विनाशनाय चदन नि।

स्वच्छ अखण्डित उज्जवल तदुल लेकर चरणों में आऊँ।
अनुपम अक्षय पद पाने को श्री जिनवर के गुण गाऊँ ।।३।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानबीसतीर्थंकराय अक्षयपद प्राप्ताय अक्षत नि।

पुर्ण्यमयी शुभ भावो से होता है देव आयु का बध ।
मिश्रित भाव शुभाशुभ से होता है मनुज आयु का बध ॥

शुद्ध शील के पुष्प मनोहर लेकर चरणों में आऊँ ।
काम शत्रु का दर्प नशाने श्री जिनवर के गुण गाऊँ ॥
सीमंधर, युगमंधर आदिक, अजितवीर्य को नित ध्याऊँ ।
विद्यमान बीसो तीर्थकर की पूजन कर हर्षाऊँ ॥४॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानबीसतीर्थंकराय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि ।

परम शुद्ध नैवेद्य भाव उर लेकर चरणों में आऊँ ।
क्षुधा रोग का मूल मिटाने श्री जिनवर के गुण गाऊँ ॥सीमं.॥५॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानबीसतीर्थंकराय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य नि ।

जगमग अतर दीप प्रज्जवलित लेकर चरणों में आऊँ ।
मोह तिमिर अज्ञान हटाने श्री जिनवर के गुण गाऊँ ॥सीमं.॥६॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानबीसतीर्थंकराय मोहान्धकारविनाशनाय दीप नि

कर्म प्रकृतियो का ईधन अब लेकर चरणों में आऊँ ।
ध्यान अग्नि मे इसे जलाने श्री जिनवर के गुण गाऊँ ॥सीमं.॥७॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानबीसतीर्थंकराय अष्टकर्म दहनाय धूप नि ।

निर्मल सरस विशुद्ध भाव फल लेकर चरणों में आऊँ ।
परममोक्ष फल शिवसुख पाने श्री जिनवर के गुण गाऊँ ॥सीमं.॥८॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानबीसतीर्थंकराय मोक्षफल प्राप्ताय फल नि ।

अर्घ पुंज वैराग्य भाव का लेकर चरणो मे आऊँ ।
निज अनर्घ पदवी पाने को श्री जिनवर के गुण गाऊँ ॥सीमं.॥९॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानबीसतीर्थंकराय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्य नि ।

जयमाला

मध्यलोक में असख्यात सागर अरु असख्यात है द्वीप ।
जम्बूद्वीप धातकीखण्ड अरु पुष्करार्ध यह ढाई द्वीप ॥१॥

ढाई द्वीप मे पंचमेरु हैं तीनो लोको मे अति विख्यात ।
मेरु सुदर्शन, विजय, अचल, मदर विद्युन्माली विख्यात ॥२॥

एक एक मे हैं बत्तीस विदेह क्षेत्र अतिशय सुन्दर ।
एक शतक अरु साठ क्षेत्र है चौथा काल जहाँ सुखकर ॥३॥

निश्चय रत्नत्रय के बिन तो कभी न होगा मोक्ष त्रिकाल।
केवल शुद्ध भाव से ही तो होगा पूर्ण अबध निहाल ॥

पांच भरत अरु पच ऐरावत कर्मभूमियाँ दस गिनकर।
एक साथ हो सकते हैं तीर्थंकर एक शतक सत्तर ॥४॥
किन्तु न्यूनतम बीस तीर्थंकर विदेह में होते हैं।
सदा शाश्वत विद्यमान सर्वज्ञ जिनेश्वर होते हैं ॥५॥
एक मेरु के चार विदेहों में रहते तीर्थंकर चार।
बीस विदेहों में तीर्थंकर बीस सदा ही मंगलकार ॥६॥
कोटि पूर्व की आयु पूर्ण कर होते पूर्ण सिद्ध भगवान।
तभी दूसरे इसी नाम के होते है अरहंत महान ॥७॥
श्री जिनदेव महा मंगलमय वीतराग सर्वज्ञ प्रधान।
भक्ति भाव से पूजन करके मै चाहूँ अपना कल्याण ॥८॥
विरहमान श्री बीस जिनेश्वर भाव सहित गुणगान करूँ।
जो विदेह मे विद्यमान है उनका जय जय गान करूँ ॥९॥
सीमन्धर को वन्दन करके मैं अनादि मिथ्यात्व हरूँ।
जुगमन्दर की पूजन करके समकित अंगीकार करूँ ॥१०॥
श्री बाहु को सुमिरण करके अविरत हर व्रत ग्रहण करूँ।
श्री सुबाहु पद अर्चन करके तेरह विधि चारित्र धरूँ ॥११॥
प्रभु सुजात के चरण पूजनकर पच प्रमाद अभाव करूँ।
देव स्वयप्रभ को प्रणाम कर दुखमय सर्व विभाव हरूँ ॥१२॥
ऋषभानन की स्तुति करके योग कषाय निवृत्ति करूँ।
पूज्य अनन्तवीर्य पद वन्दूँ पथ निर्ग्रन्थ प्रवृत्ति करूँ ॥१३॥
देव सौरिप्रभु चरणाम्बुज दर्शन कर पाँचों बन्ध हरूँ।
परम विशालकीर्ति की जय हो निज को पूर्ण अबंध करूँ ॥१४॥
श्री वज्रधर सर्व दोष हर सब संकल्प विकल्प हरूँ।
चन्द्रानन के चरण चित्त धर निर्विकल्पता प्राप्त करूँ ॥१५॥
चन्द्रबाहु को नमस्कार कर पाप पुण्य सब नाश करूँ।
श्री भुजग पद मस्तक धर कर निज चिद्रूप प्रकाश करूँ ॥१६॥

अब व्यवहार दृष्टि तो तज दे दृष्टि त्याग सयोगाधीन।
दृष्टि निमित्ताधीन छोड दे हो जा निश्चय दृष्टि प्रवीण ।।

ईश्वर प्रभु की महिमा गाऊं आत्म द्रव्य का भान भरूं।
श्री नेमि प्रभु के चरणों में चिदानन्द का ध्यान धरूँ ।।१७।।
वीरसेन के पद कमलों में उर चचलता दूर करूँ।
महाभद्र की भव्य सुछवि लख कर्मघातिया चूर करूँ ।।१८।।
श्री देवयश सुयश गान कर शुद्ध भावना हृदय धरूँ।
अजितवीर्य का ध्यान लगाकर गुण अनन्त निज प्रगट करूँ।।१९।।
बीस जिनेश्वर समवशरण लख मोहमयी संसार हरूँ।
निज स्वभाव साधन के द्वारा शीघ्र भवार्णव पार करूँ ।।२०।।
स्वगुण अनन्त चतुष्टय धारी वीतराग को नमन करूँ।
सकल सिद्ध मंगल के दाता पूर्ण अर्घ के सुमन धरूँ ।।२१।।
ॐ ह्रीं श्री विद्यमान बीस तीर्थंकरेभ्यो पूर्णार्घ्यं नि ।
जो विदेह के बीस जिनेश्वर की महिमा उर में धरते।
भाव सहित प्रभु पूजन करते मोक्ष लक्ष्मी को वरते ।।

इत्याशीर्वाद

जाप्य मन्त्र-ॐ ह्रीं विदेह क्षेत्रस्थ श्री विद्यमान बीस तीर्थंकरभ्यो नम ।

卐

श्री सिद्ध पूजन

हे सिद्ध तुम्हारे वन्दन से उर मे निर्मलता आती है।
भव भव के पातक कटते है पुण्यावलि शीश झुकाती है ।।
तुम गुण चिन्तन से सहज देव होता स्वभाव का भान मुझे।
है सिद्ध समान स्वपद मेरा हो जाता निर्मल ज्ञान मुझे ।।
इसलिए नाथ पूजन करना, कब तुम समान मैं बन जाऊँ।
जिस पथ पर चल तुम सिद्ध हुए, मैं भी चल सिद्ध स्वपदपाऊँ।।
ज्ञानावरणादिक अष्टकर्म को नष्ट करूँ ऐसा बल दो।
निज अष्ट स्वगुण प्रगटे उर मे, सम्यक् पूजन का यह फल हो।
ॐ ह्रीं णमो सिद्धाण सिद्ध परमेष्ठिन् अत्र अवतर अवतर सवौषट, ॐ ह्रीं णमो सिद्धाण परमेष्ठिन् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ , ॐ ह्रीं णमो सिद्धाण सिद्ध परमेष्ठिन् अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

निश्चयनय के आश्रय से जो जीव प्रर्वतन करते है।
वे ही कर्मों का क्षय करके भव बधन को हरते है॥

कर्म मलिन हूं जन्म जरा मृतु को कैसे कर पाऊँ क्षय।
निर्मल आत्म ज्ञान जल दो प्रभु जन्म मृत्यु पर पाऊँ जय॥
अजर, अमर, अविकल, अविकारी, अविनाशी अनंत गुणधाम।
नित्य निरंजन भव दुख भंजन ज्ञानस्वभावी सिद्ध प्रणाम॥१॥

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाण सिद्ध परमेष्ठिने जन्मजरामृत्युविनाशनाय जल नि।

शीतल चंदन ताप मिटाता, किन्तु नहीं मिटता भव ताप।
निजस्वभाव का चदन हो प्रभु मिटे राग का सब संताप॥अजर.॥२॥

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाण सिद्ध परमेष्ठिने ससारताप विनाशनाय चदन नि।

उलझा हूं संसार चक्र में कैसे इससे हो उद्धार।
अक्षय तन्दुल रत्नत्रय दो हो जाऊँभव सागर पार॥अजर॥३॥

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाण सिद्ध परमेष्ठिने अक्षयपद प्राप्ताय अक्षत नि।

काम व्यथा से मैं घायल हूं कैसे करूँ काम मद नाश।
विमलदृष्टि दो ज्ञानपुष्प दो कामभाव हो पूर्ण विनाश॥अजर॥४॥

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाण सिद्ध परमेष्ठिने कामबाणविध्वसनाय पुष्प नि।

क्षुधा रोग के कारण मेरा तृप्त नहीं हो पाया मन।
शुद्ध भाव नैवेद्य मुझे दो सफल करूँप्रभु यह जीवन॥अजर॥५॥

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाण सिद्ध परमेष्ठिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य नि।

मोह रूप मिथ्यात्व महातम अन्तर में छाया घनघोर।
ज्ञानद्वीप प्रज्वलित करो प्रभुप्रकटे समकितरवि की भोर॥अजर॥६॥

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाण सिद्ध परमेष्ठिने मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि।

कर्म शत्रु निज सुख के घाता इनको कैसे नष्ट करूँ।
शुद्ध धूप दो ध्यान अग्नि में इन्हे जला भवकष्ट हरूँ॥अजर॥७॥

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाण सिद्ध परमेष्ठिने अष्टकर्म विध्वशनाय धूप नि।

निज चैतन्य स्वरूप न जाना कैसे निज मे आऊँगा।
भेद ज्ञान फल दो हे स्वामी महा मोक्षफल पाऊँगा॥अजर॥८॥

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाण सिद्ध परमेष्ठिने महामोक्षफल प्राप्तये फल नि।

पुण्यभाव से ही हित होगा जिनकी है मान्यता सदा।
वे ससार भाव मे रत रह मुक्त न होगे अरे कदा ॥

अष्ट द्रव्य का अर्घ चढाऊँ अष्टकर्म का हो सहार।
निज अनर्घ पद पाऊँ भगवन् सादि अनंत परमसुखकार ॥अजर॥९॥
ॐ ह्रीं णमो सिद्धाण सिद्ध परमेष्ठिने अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं नि ।

जयमाला

मुक्तिकन्त भगवन्त सिद्ध को मनवच काया सहित प्रणाम।
अर्ध चन्द्र सम सिद्ध शिला पर आप विराजे आठो याम ॥१॥
ज्ञानावरण दर्शनावरणी, मोहनीय अन्तराय मिटा।
चार घातिया नष्ट हुए तो फिर अरहन्त रूप प्रगटा ॥२॥
वेदनीय अरु आयु नाम अरु गोत्र कर्म का नाश किया।
चऊ अघातिया नाश किये तो स्वयं स्वरूप प्रकाश किया ॥३॥
अष्टकर्म पर विजय प्राप्त कर अष्ट स्वगुण तुमने पाये।
जन्म मृत्यु का नाश किया निज सिद्ध स्वरूप स्वगुण भाये ॥४॥
निज स्वभाव में लीन विमल चैतन्य स्वरूप अरूपी हो।
पूर्ण ज्ञान हो पूर्ण सुखी हो पूर्ण बली चिद्रूपी हो ॥५॥
वीतराग हो सर्व हितैषी राग द्वेष का नाम नहीं।
चिदानन्द चैतन्य स्वभावी कृतकृत्य कुछ काम नहीं ॥६॥
स्वयं सिद्ध हो स्वय बुद्ध हो स्वयं श्रेष्ठ समकित आगार।
गुण अनन्त दर्शन के स्वामी तुम अनंत गुण के भडार ॥७॥
तुम अनन्त बल के हो धारी ज्ञान अनन्तानन्त अपार।
बाधा रहित सूक्ष्म हो भगवन् अगुरुलघु अवगाह उदार ॥८॥
सिद्ध स्वगुण के वर्णन तक की मुझ मे प्रभुवर शक्ति नहीं।
चलूं तुम्हारा पथ पर स्वामी ऐसी भी तो भक्ति नहीं ॥९॥
देव तुम्हारी पूजन करके हृदय कमल मुस्काया है।
भक्ति भाव उर में जागा है मेरा मन हर्षाया है ॥१०॥
तुम गुण का चिन्तवन करे जो स्वयं सिद्ध बन जाता है।
हो निजात्म में लीन दुखों से छुटकारा पा जाता है ॥११॥

तू विभाव मे ही तन्मय है अब इस तन्मयता को छोड़।
निज चैतन्य तत्व की निर्मलता से ही अब नाता जोड़॥

अविनश्वर अविकारी सुखमय सिद्ध स्वरूप विमल मेरा।
मुझमें है मुझसे ही प्रगटेगा स्वरूप अविकल मेरा ॥१२॥

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाण सिद्ध परमेष्ठिने पूर्णार्घ्य नि स्वाहा।

शुद्ध स्वभावी आत्मा निश्चय सिद्ध स्वरूप।
गुण अनन्तयुत ज्ञानमय है त्रिकाल शिवभूप॥

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्रीं श्री अनन्तानन्त सिद्ध परमेष्ठिभ्यो नम ।

卐

श्री सीमंधर पूजन

जय जयति जय श्रेयांस नृप सुत सत्यदेवी नन्दनम्।
चऊ घाति कर्म विनष्ट कर्त्ता ज्ञान सूर्य निरन्जनम्॥
जय जय विदेहीनाथ जय जय धन्य प्रभु सीमन्धरम्।
सर्वज्ञ केवलज्ञानधारी जयति जिन तीर्थकरम्॥

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर जिन अत्र अवतर अवतर सवौषट् ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर जिन अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ । ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर जिन अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

यह जन्म मरण का रोग, हे प्रभु नाश करूँ।
दो सम रस निर्मल नीर, आत्म प्रकाश करूँ॥
शाश्वत जिनवर भगवन्त, सीमन्धर स्वामी।
सर्वज्ञ देव अरहंत, प्रभु अन्तरयामी ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल नि ।

चन्दन हरता तन ताप, तुम भव ताप हरो।
निज समशीलत हे नाथ मुझको आप करो ॥शांश्वत.॥२॥

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर जिनेन्द्राय ससारताप विनाशनाय चदन नि ।

इस भव समुद्र से नाथ, मुझको पार करो।
अक्षय पद दे जिनराज, अब उद्धार करो ॥३॥

ॐ ही श्री सीमन्धर जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षत नि ।

कन्दर्प दर्प हो चूर, शील स्वभाव जगे।
भवसागर के उस पार, मेरी नाव लगे॥ शाश्वत. ॥४॥

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर जिनेन्द्राय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि ।

धन वैभव तो चलती फिरती छाया है पर वस्तु है।
उसका गुण पर्याय द्रव्य सब जड़ है तुझे अवस्तु है ।।

यह क्षुधा ज्वाल विकराल, हे प्रभु शांत करूँ।
चरु चरण चढाऊँ देव मिथ्या भ्रांति हरूँ ।।
शाश्वत जिनवर भगवन्त, सीमन्धर स्वामी।
सर्वज्ञ देव अरहंत, प्रभु अन्तरयामी ।।५।।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य नि ।

मद मोह कुटिल विष रूप, छाया अंधियारा।
दो सम्यकज्ञान प्रकाश, फैले उजियारा ।।शाश्वत.।।६।।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर जिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीप नि ।

कर्मों की शक्ति विनष्ट, अब प्रभुवर कर दो।
मैं धूप चढाऊँ नाथ, भव बाधा हर दो ।।शाश्वत ।।७।।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर जिनेन्द्राय अष्टकर्म विनाशनाय धूप नि ।

फल चरण चढाऊं नाथ, फल निर्वाण मिले।
अन्तर में केवलज्ञान, सूर्य महान खिले ।।शाश्वत.।।८।।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्ताय फल नि ।

जब तक अनर्घ पद प्राप्त, हो न मुझे सत्वर।
मै अर्घ चढाऊँ नित्य, चरणों में प्रभुवर ।।शाश्वत.।।९।।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर जिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्ताय अर्घ्य नि ।

卐

श्री कल्याणक अर्घ्यावलि

जम्बूद्वीप सुमेरु सुदर्शन पूर्व दिशा मे क्षेत्र विदेह।
देश पुष्कलावती राजधानी है पुण्डरीकिणी गेह ।।
रानी सत्यवती माता के उर में स्वर्ग त्याग आये।
सोलह स्वप्न लखे माता ने रत्न सुरों ने वर्षाये ।।१।।

ॐ ह्रीं गर्भमगलमण्डिताय श्री सीमधर जिनेन्द्राय अर्घ्य नि ।

नृप श्रेयासराय के गृह मे तुमने स्वामी जन्म लिया।
इन्द्रसुरों ने जन्ममहोत्सव कर निज जीवन धन्य किया ।।

आगम के अभ्यास पूर्वक श्रद्धाज्ञान चारित्र संवार।
निज मे ही सकल भाव लाकर तू अपना रुप निहार ॥

गिरि सुमेरु पर पाडुंक वन में रत्नशिला सुविराजित कर।
क्षीरोदधि से न्हवन किया प्रभु दशोंदिशा अनुरंजित कर ॥२॥
ॐ ह्रीं जन्ममगलमण्डिताय श्री सीमधर जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि।

एक दिवस नभ में देखे बादल क्षणभर में हुए विलीन।
बस अनित्य संसार जान वैराग्य भाव में हुए सुलीन ॥
लौकान्तिक देवर्षि सुरों ने आकर जय जयकार किया।
अतुलित वैभव त्याग आपने वन में जा तप धार लिया ॥३॥
ॐ ह्रीं तपोमगलमण्डिताय श्री सीमधर जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि।

आत्म ध्यानमय शुक्ल ध्यान धर कर्मघातिया नाश किया।
त्रेसठ कर्म प्रकृतियाँ नाशी केवलज्ञान प्रकाश लिया ॥
समवशरण मे गंध कुटी में अन्तरीक्ष प्रभु रहे विराज।
मोक्षमार्ग सन्देश दे रहे भव्य प्राणियों को जिनराज ॥४॥
ॐ ह्रीं श्री केवलज्ञान मण्डिताय श्री सीमधर जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि।

जयमाला

शाश्वत विद्यमान तीर्थंकर सीमन्धर प्रभु दया निधान।
दे उपदेश भव्य जीवों को करते सदा आप कल्याण ॥१॥

कोटि पूर्व की आयु पाँच सौ धनुष स्वर्ण सम काया है।
सकल ज्ञेय ज्ञाता होकर भी निज स्वरूप ही भाया है॥२॥

देव तुम्हारे दर्शन पाकर जागा है उर मे उल्लास।
चरण कमल मे नाथ शरण दो सुनो प्रभो मेरा इतिहास ॥३॥

मैं अनादि से था निगोद में प्रति पल जन्म मरण पाया।
अग्नि, भूमि, जल, वायु, वनस्पति कायक थावर तन पाया ॥४॥
दो इन्द्रिय त्रस हुआ भाग्य से पार न कष्टों का पाया।
जन्म तीन इन्द्रिय भी धारा दुख का अन्त नहीं आया ॥५॥

चौ इन्द्रियधारी बनकर मैं विकलत्रय मे भरमाया।
पचेन्द्रिय पशु सैनी और असैनी हो बहु दुख पाया ॥६॥

वस्तु स्वभाव कभी न पलटता गुण अभाव होता न कभी।
है विकार पर्याय मात्र से वस्तु विकार सहित न कभी ।।

बडे भाग्य से प्रबल पुण्य से फिर मानव पर्याय मिली।
मोह महामद के कारण ही नही ज्ञान की कली खिली ।।७।।
अशुभ पाप आश्रव के द्वारा नर्क आयु का बन्ध गहा।
नारकीय बन नरको मे रह ऊष्ण शीत दुख द्वन्द सहा ।।८।।
शुभ पुण्याश्रव के कारण मैं स्वर्ग लोक तक हो आया।
ग्रैवेयक तक गया किन्तु शाश्वत सुख चैन नही पाया ।।९।।
देख दूसरो के वैभव को आर्त्त रौद्र परिणाम किया।
देव आयु क्षय होने पर एकेन्द्रिय तक में जन्म लिया ।।१०।।
इस प्रकार धर धर अनन्त भव चारो गतियो मे भटका।
तीव्र मोह मिथ्यात्व पाप के कारण इस जग मे अटका ।।११।।
महापुण्य के शुभ संयोग से फिर यह तन मन पाया है।
देव आपके चरणों को पाकर यह मन हर्षाया है ।।१२।।
जनम जनम तक भक्ति तुम्हारी रहे हृदय मे हे जिनदेव।
वीतराग सम्यक् पथ पर चल पाऊँ सिद्ध स्वपद स्वयमेव ।।१३।।
भरत क्षेत्र से कुन्द कुन्द मुनि ने विदेह को किया प्रयाण।
प्रभो तुम्हारा समवशरण में दर्शन कर हो गये महान ।।१४।।
आठ दिवस चरणो में रहकर ओंकार ध्वनि सुनी प्रधान।
भरत क्षेत्र मे लौटे मुनिवर सुनकर वीतराग विज्ञान ।।१५।।
करुणा जागी जीवो के प्रति रचा शास्त्र श्री प्रवचनसार।
समयसार पचास्तिकाय श्रुत नियमसार प्राभृत सुखकार ।।१६।।
रचे देव चौरासी पाहुड प्रभु वाणी का ले आधार।
निश्चयनय भूतार्थ बताया अभूतार्थ सारा व्यवहार ।।१७।।
पाप पुण्य दोनो बधन है जग मे भ्रमण कराते है।
रागमात्र को हेय जान ज्ञानी निज ध्यान लगाते है ।।१८।।
निज का ध्यान लगाया जिसने उसका प्रगटा केवलज्ञान।
परम समाधि महासुखकारी निश्चय पाता पद निर्वाण ।।१९।।

जीव देह को भिन्न जानना द्वादशाग का सार है।
है विकार से भिन्न आत्मा पूर्णतया अविष्कार है ॥

इस प्रकार इस भरत क्षेत्र के जीवों पर अनन्त उपकार।
हे सीमन्धर नाथ आपका, करो देव मेरा उद्धार ॥२०॥
समकित ज्योति जगे अन्तर मे होजाऊँ मै आप समान।
पूर्ण करो मेरी अभिलाषा हे प्रभु सीमन्धर भगवान ॥२१॥

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं नि स्वाहा।

सीमन्धर प्रभु के चरण भाव सहित उरधार।
मन बच तन जो पूजते वे होते भवपार ॥

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर जिनेन्द्राय नम ।

卐

श्री कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालय पूजन

तीन लोक के कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालय को वन्दन।
उर्ध्व मध्य पाताल लोक के जिन भवनो को करूँ नमन ॥
हैं अकृत्रिम आठ कोटि अरु छप्पन लाख परम पावन।
सतानवे सहस्त्र चार सौ इक्यासी गृह मन भावन ॥
कृत्रिम अकृत्रिम जो असंख्य चैत्यालय है उनको वन्दन।
विनय भाव से भक्ति पूर्वक नित्य करूँ मै प्रभु पूजन ॥

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक सबधी कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिन् बिम्ब समूह अत्र अवतर अवतर सवौषट। ॐ ह्रीं तीन लोक सबधी कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालय जिन बिम्ब समूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ । ॐ ह्रीं श्री लोक सबधी कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिन बिम्ब समूह अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

सम्यक् जल की निर्मल उज्जवलता से जन्म जरा हर लूँ।
मूल धर्म का सम्यक्दर्शन हे प्रभु हृदयगम कर लूँ ॥
तीन लोक के कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालय वदन कर लूँ।
ज्ञान सूर्य की परम ज्योति पा भव सागर के दुख हर लूँ ॥१॥

ॐ श्री ह्रीं लोक सबधी कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिन बिम्बेभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल नि ।

अति आसन्न भव जीवो को होता निश्चय प्रत्याख्यान।
जीवो को हित रुप यही है इससे ही होता निर्वाण ॥

सम्यक् चन्दन पावन की शीतलता से भव भय हरलूँ।
वस्तु स्वभाव धर्म है सम्यक् ज्ञान आत्मा में भरलूँ॥
तीन लोक के कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालय वदन कर लूँ।
ज्ञान सूर्य की परम ज्योति पा भव सागर के दुख हर लूँ॥२॥

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक सबधी कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिन बिम्बेभ्यो ससारतापविनाशनाय चदन नि ।

सम्यक्चारित्र की अखंडता से अक्षय पद आदर लूँ।
साम्यभाव चारित्र धर्म पा वीतरागता को वरलूँ॥तीन.॥३॥

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक सबधी कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिन बिम्बेभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षत नि ।

शील स्वभावी पुष्प प्राप्त कर काम शत्रु को क्षय कर लूँ।
अणुव्रत शिक्षाव्रत गुणव्रत धर पंच महाव्रत आचरलूँ॥तीन.॥४॥

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक सबधी कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिन बिम्बेभ्यो कामबाणविध्वसनाय पुष्प नि ।

सतोषामृत के चरु लेकर क्षुधा व्याधि को जय कर लूँ।
सत्य शौच तप त्याग क्षमा से भाव शुभाशुभ सब हरलूँ॥तीन.॥५॥

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक सबधी कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिन बिम्बेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि ।

ज्ञान दीप के चिर प्रकाश से मोह ममत्व तिमिर हरलूँ।
रत्नत्रय का साधन लेकर यह संसार पार कर लूँ॥तीन.॥६॥

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक सबधी कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिन बिम्बेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि ।

ध्यान अग्नि मे कर्म धूप धर अष्टकर्म अघ को हर लूँ।
धर्म श्रेष्ठ मगल को पा शिवमय सिद्धत्व प्राप्त कर लूँ॥तीन.॥७॥

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक सबधी कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिन बिम्बेभ्यो ससारतापविनाशनाय चदन नि ।

भेद ज्ञान विज्ञान ज्ञान से केवलज्ञान प्राप्त कर लूँ।
परम भाव सम्पदा सहजशिव महामोक्षफल को वरलूँ॥तीन ॥८॥

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक सबधी कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिन बिम्बेभ्यो मोक्षफल प्राप्त फल नि ।

बाहर मे सयोग दुखों के, अन्तर मे सुख का सागर।
सयोगो पर दृष्टि न देते, पीते मुनि निज रस गागर ॥

द्वादश विधितप अर्घ संजोकर जिनवर पद अनर्घ पद पालूँ।
मिथ्या अविरिति पंच प्रमाद कषाय योग बन्ध हरलूँ ॥तीन ॥९॥

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक सबधी कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिन बिम्बेभ्यो अनर्घ पद्व प्राप्तये अर्घ्यं नि ।

जयमाला

इस अनन्त आकाश बीच में तीन लोक है पुरुषाकार
तीनो वातवलय से वेष्टित, सिंधु बीच ज्यो बिन्दु प्रसार ॥१॥
उर्ध्व सात है, अधो सात मे, मध्य एक राजू विस्तार।
चौदह राजु उतग लोक है, त्रस नाडी त्रस का आधार ॥२॥
तीन लोक मे भवन अकृत्रिम आठ कोटि अरुछप्पन लाख।
सतानवे सहस्त्र चारसौ इक्यासी जिन आगम साख ॥३॥
उर्ध्व लोक मे कल्पवासियो के जिन गृह चौरासी लक्ष।
सतानवे सहस्त्र तेईस जिनालय है शाश्वत प्रत्यक्ष ॥४॥
अधो लोक मे भवनवासि के लाख बहात्तर, करोड सात।
मध्यलोक के चार शतक अट्ठावन चैत्यालय विख्यात ॥५॥
जम्बू धातकी पुष्करार्ध मे पंचमेरु के जिनगृह विख्यात।
जम्बूवृक्ष शाल्मलितरु अरु विजयारध के अति विख्यात ॥६॥
वक्षारो गजदतो इष्वाकारो के पावन जिनगेह।
सर्व कुलाचल मानुषोत्तर पर्वत के वन्दूँ धर नेह ॥७॥
नन्दीश्वर कुण्डलवर द्वीप रुचकवर केजिन चैत्यालय।
ज्योतिष व्यतर स्वर्गलोक अरु भवनवासि के जिनआलय॥८॥
एक एक में एक शतक अरु आठ आठ जिन मूर्ति प्रधान।
अष्ट प्रातिहायो वसु मंगल द्रव्यों से अति शोभावान ॥९॥
कुल प्रतिमा नौ सौ पच्चीस करोड तिरेपन लाख महान।
सत्ताइस सहस्त्र अरु नौ सौ अडतालीस अकृत्रिम जान ॥१०॥
उन्नत धनुष पाँच सौ पद्मासन हैं रत्नमयी प्रतिमा।
वीतराग अर्हन्त मूर्ति की है पावन अचिन्त्य महिमा ॥११॥
असख्यात संख्यात जिन भवन तीन लोक मे शोभित है।
इन्द्रादिक सुन नर विद्याधर मुनि वन्दन कर मोहित है ॥१२॥

ध्रुवधाम ध्येय की धुन मै ध्रुव ध्यान धैर्य पर ध्याऊँ ।
शुद्धात्म धर्म ध्याता बन परमात्म परम पद पाऊँ ।।

देव रचित या मनुज रचित, है भव्य जनों द्वारा वंदित ।
कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालय की पूजन कर मैं हूँ हर्षित ।।१३।।
ढाईद्वीप मे भूत भविष्यत वर्तमान के तीर्थकर ।
पचवर्ण के मुझे शक्ति दें मै निज पद पाऊँ जिनवर ।।१४।।
जिनगुण सपत्ति मुझे प्राप्त हो परम समाधिमरण हो नाथ ।
सकल कर्म क्षय हो प्रभु मेरे बोधिलाभ हो हे जिननाथ ।।१५।।

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक सबधी कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिन बिम्बेभ्यो पूर्णार्घ्यं नि ।

कृत्रिम अकृत्रिम जिन भावन भाव सहित उरधार ।
मन वच तन जो पूजते वे होते भव पार ।।

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - णमोकार मत्र की

卐

श्री समस्त सिद्धक्षेत्र पूजन

मध्य लोक में ढाई द्वीप के सिद्धक्षेत्रों को वन्दन ।
जम्बूद्वीप सुभरत क्षेत्र के तीर्थक्षेत्रो को वन्दन ।।
श्री कैलाश आदि निर्वाण भूमियों को मैं करूँ नमन ।
श्रद्धा भक्ति विनयपूर्वक हर्षित हो करता हूँ पूजन ।।
शुद्ध भावना यही हृदय मे मै भी सिद्ध बनूँ भगवन ।
रत्नत्रय पथ पर चलकर मैं नाशूँ चहूँगति का क्रन्दन ।।

ॐ ह्रीं श्री समस्त सिद्धक्षेत्र अत्र अवतर अवतर सवौषट्, ॐ ह्री श्री समस्त सिद्धक्षेत्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ , ॐ ह्रीं श्री समरत सिद्धक्षेत्र अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट् ।

ज्ञान स्वभावी निर्मल जल का सागर उर में लहराता ।
फिर भी भव सागर भवरों मे जन्म मरण के दुख पाता ।।
श्री सिद्धक्षेत्रो का दर्शन पूजन वन्दन सुखकारी ।
जो स्वभाव का आश्रय लेता उसको है भव दुखहारी ।।१।।

ॐ ह्री श्री समरत सिद्धक्षेत्रेभ्यो जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जल नि ।

पुण्य पाप आदिक विकार की रुचि से जोरहते भयभीत।
पुण्य पाप के भाव जान विषतुल्य स्वय से करते पीत॥

ज्ञान स्वभावी शीतलतामय चदन निज में भरा अपार।
फिर भी भव दावानल में जल जल दुख पाया बारम्बार ॥श्री ॥२॥
ॐ ह्रीं श्री समरत सिद्धक्षेत्रेभ्यो जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जल नि।
ज्ञान स्वभावी उज्जवल अक्षत पुन्ज हदय में भरे अटूट।
फिर भी अविनाशी अखड होकर भी पा न सका निजकूट ॥श्री॥३॥
ॐ ह्री श्री समस्त सिद्धक्षेत्रेभ्यो अक्षयपद प्राप्ताय अक्षत नि।
ज्ञान स्वभावी दिव्य सुगधित पुष्पो का निज मे उपवन।
फिर भी भव माया में पड निष्काम न बन पाया भगवन् ॥श्री॥४॥
ॐ ह्री श्री समरत सिद्धक्षेत्रेभ्यो कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि।
ज्ञान स्वभावी सरस मनोरभ तृप्ति पूर्ण नैवेद्य स्वयम्।
फिर भी क्षुधारोग से व्याकुल तृष्णा हुई न तिलभर कम॥५॥
ॐ ह्रीं श्री समरत सिद्धक्षेत्रेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य नि।
ज्ञान स्वभावी स्वपर प्रकाशी केवलरवि निज मे अनुपम।
फिर भी अघमय अंधियारे मे भटका मिटा न मिथ्यातम ॥श्री॥६॥
ॐ ह्रीं श्री समरत सिद्धक्षेत्रेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि।
ज्ञान स्वभावी सहजानंद विमल धूप से हूँ परिपूर्ण।
फिर भी प्रभो नहीं कर पाया अब तक अष्टकर्म अरिचूर्ण ॥श्री॥७॥
ॐ ह्रीं श्री समस्त सिद्धक्षेत्रेभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूप नि।
ज्ञानस्वभावी शिवफलधारी अविकारी हूँ सिद्ध स्वरूप।
फिर भी भव अटवी मे अटका होकर मे त्रिभुवन का भूप ॥श्री॥८॥
ॐ ह्रीं श्री समरत सिद्धक्षेत्रेभ्यो महा मोक्षफल प्राप्ताय फल नि।
ज्ञान स्वभावी चिदानन्द चैतन्य अनन्त गुणो से पूर।
फिर भी पद अनर्घ ना पाया रह कर निज परिणति से दूर ॥श्री॥९॥
ॐ ह्री श्री समरत सिद्धक्षेत्रेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्ताय अर्घ्य नि।

जयमाला

तीर्थंकर ऋषि आदि मुनि गए यहाँ निर्वाण।
उन क्षेत्रो को वद्यकर करूँ आत्म कल्याण ॥१॥

सम्यक् दर्शन अगर तुझे पाना है तो कर तत्वाभ्यास।
निजस्वरूप का निर्णय कर ले आत्म तत्व का कर विश्वास ।।

जम्बूद्वीप धातकी खण्ड अरु पुष्करार्द्ध में क्षेत्र विदेह।
पंचभरत अरु पंच ऐरावत तीर्थक्षेत्र वन्दूँ धर नेह ॥२॥
तीन लोक के सकल तीर्थ निर्वाण क्षेत्र सविनय वन्दू।
सिद्ध अनन्तानत विराजित सिद्धशिला नित प्रति वन्दू ॥३॥
अष्टापद कैलाशशिखर पर ऋषभदेव के पद वन्दूँ।
बालि महाबालि मुनि नागकुमार आदि मुनिवर वन्दूँ ॥४॥
श्री सम्मेदशिखर पर्वत पर बीस तीर्थकर वन्दूँ।
अजितनाथ सभव, अभिनन्दन, सुमति, पद्म प्रभु को वन्दूँ ॥५॥
श्री सुपार्श्व चन्द्रप्रभु स्वामी, पुष्पदंत, शीतल वन्दूँ।
प्रभु श्रेयास, विमल, अनन्त जिन, धर्म, शान्ति, कुन्थु वन्दूँ ॥६॥
श्री अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमिजिन, पार्श्वनाथ, प्रभु को वन्दूँ।
मुनि अनत निर्वाण गये जो, उनके चरणाम्बुज वन्दूँ ॥७॥
चम्पापुर मे वासुपूज्य तीर्थकर को सादर वन्दूँ।
श्री मदारगिरि से मुक्त हुए मुनियों के पद वन्दूँ ॥८॥
श्री गिरनार नेमि प्रभु शंबु प्रदुम्न अनिरुद्ध आदि वन्दूँ।
कोटि बहात्तर सात शतक मुनि मुक्त हुए उनको वन्दूँ ॥९॥
पावापुर मे महावीर अन्तिम तीर्थकर को वन्दूँ।
क्षेत्र गुणावा गौतमस्वामी के पद कमलो को वन्दूँ ॥१०॥
तुन्गीगिरि श्री रामचन्द्र, हनुमान गवय, गवाक्ष वन्दूँ।
महानील, सुग्रीव, नील मुनि निन्यानवे कोटि वन्दूँ ॥११॥
शत्रुन्जय पर आठ कोटि मुनियो के चरणाम्बुज बन्दूँ।
भीम युधिष्ठिर अर्जुन पाडव और द्रविड राजा वन्दूँ ॥१२॥
श्री गजपथ शैल पर मै बलभद्र सप्त के पद वदूँ।
आठ कोटि मुनि मुक्ति गए है भाव सहित उनको वन्दूँ ॥१३॥
सोनागिरि पर नग अनग कुमार आदि मुनि को वन्दूँ।
साढे पाँच कोटि ऋषियो की यह निर्वाण भूमि वन्दूँ ॥१४॥

ज्ञानी को स्वामित्व राग का लेश नहीं है अन्तर मे।
पूर्ण अखण्ड स्वभाव साधने का उत्साह भरा उर मे ।।

रेवा तट पर रावण के सुत आदि मुनीश्वर को वन्दूँ।
साढे पाँच कोटि मुनियों को सादर सविनय अभिनन्दूँ ।।१५।।
पावागढ पर साढे पाँच कोटि मुनियों के पद वन्दूँ।
रामचन्द्र सुत लव, मदनाकुश, लाडदेव के नृप वन्दूँ ।।१६।।
तारगागिरि साढे तीन कोटि मुनियों को मैं वन्दूँ।
श्री वरदत्तराय मुनिसागरदत्त आदि पद अभिनन्दूँ ।।१७।।
श्री सिद्धवरकूट सनत, मघवा चक्री दोनों वन्दूँ।
कामदेव दस आदि ऋषीश्वर साढे तीन कोटि वन्दूँ ।।१८।।
मुक्तागिरि से साढे तीन कोटि मुनि मोक्ष गए वन्दूँ।
पावागिरि पर सुवर्णभद्र आदिक चारों मुनि को वन्दू ।।१९।।
कोटि शिला से एक कोटि मुनि सिद्ध हुए उनको वन्दूँ।
देश कलिग यशोधर नृप के पॉच शतक सुत मुनि वन्दूँ ।।२०।।
श्री चूलगिरि इन्द्रजीत कुम्भकरण ऋषिवर वन्दूँ।
कुन्थलगिरि पर श्री देशभूषण कुलभूषण मुनि वन्दूँ ।।२१।।
रेशदीगिरि वरत्तादि पंच ऋषियों को मैं वन्दूँ।
द्रोणागिरि पर गुरुदत्तादिक मुनियो को सविनय वन्दूँ ।।२२।।
पच पहाडी राजगृही से मुक्त हुए मुनिवर वन्दूँ।
चरम केवली जम्बूस्वामी मथुरा मुक्ति भूमि वन्दूँ ।।२३।।
पटना से श्री सेठ सुदर्शन मुक्त हुए उनको वन्दूँ।
कुण्डलपुर से मोक्ष गए श्रीधर स्वामी के पद वन्दूँ ।।२४।।
पोदनपुर से सिद्ध हुए श्री बाहुबली स्वामी वन्दू।
भरत आदि चक्रेश्वर मुनियो की निर्वाण धरा वन्दूँ ।।२५।।
श्रवण, द्रोण, वैभार, बलाहक, विध्य, सह्य, पर्वत वन्दूँ।
प्रवर, कुण्डली, विपुलाचल, हिमवान क्षेत्रों को वन्दूँ ।।२६।।
तीर्थकर के सभी गणधरो की निर्वाण भूमि वन्दूँ।
वृषभसेन आदिक गौतम, चौदह सौ उन्सठ ऋषि वन्दूँ ।।२७।।

ज्ञानी को अस्थिरता के कारण है विद्यमान कुछ राग।
किन्तु राग के प्रति एकत्व ममत्व नहीं है पूर्ण विराग।।

कामदेव बलभद्र चक्रि जो मुक्त हुए उनको वन्दूँ।
जल थल नभ से सिद्ध हुए उपसर्ग केवली सब वन्दूँ।।२८।।
ज्ञात और अज्ञात सभी निर्वाण भूमियो को वन्दूँ।
भूत भविष्यत वर्तमान की सिद्ध भूमियों को वन्दूँ।।२९।।
मन वच काय त्रियोग पूर्वक सर्व सिद्ध भगवान वन्दूँ।
सिद्ध स्वपद की प्राप्ति हेतु मै पाँचो परमेष्ठी वन्दूँ।।३०।।
सिद्ध क्षेत्रो के दर्शन कर निज स्वरूप दर्शन कर लूँ।
शुद्ध चेतना सिधु नीर पी मोक्ष लक्ष्मी को वर लूँ।।३१।।
सब तीर्थो की यात्रा करके आत्मतीर्थ की ओर चलूँ।
अजर अमर अविकल अविनाशी सिद्धस्वपद की ओर ढलूँ।।३२।।
भाव शुभाशुभ का अभावकर शुद्धआत्म का ध्यान करूँ।
रागद्वेष का सर्वनाश कर मगलमय निर्वाण वरूँ।।३३।।
ॐ ह्री श्री समस्त सिद्धक्षेत्रेभ्यो अनर्घपद प्राप्ताय पूर्णार्घ्यं नि।
श्री निर्वाण क्षेत्र का पूजन वदन जो जन करते हैं।
समकित का पावन वैभव पा मुक्ति वधू को वरते है।।

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्रीं श्री सर्व सिद्धेक्षेत्रेभ्यो नम।

माता तो जिनवाणी और कोई नही।
भव सागर पार करे साँची माँ सोई।।१।।
ज्ञान का प्रकाश करे मिथ्यात्व खोई।
जीव और पुद्गल है भिन्न भिन्न दोई।।२।।
भेद ज्ञान की महान ज्योति देत जोई।
स्याद्वाद् नय प्रमाण द्वादशाग होई।।३।।
भव्यो की प्रतिपालक मोक्ष सुख सजोई।
समकित को बीज देत अन्तर मे बोई।।४।।

卐

पर का आश्रय लेने वाला नर्क निगोदादिक जाता।
निज का आश्रय लेने वाला महामोक्ष फल को पाता ॥

अनादिनिधन पर्व पूजायें

जैन आगम मे नैमित्तिक पर्व पूजनो का विशेष महत्व है। ये पाँचो पर्व अष्टान्हिका, सोलहकारण-पचमेरु दशलक्षण एव रत्नत्रय अनादि निधन पर्व हैं तथा वर्ष मे ती नबार आते है। अष्टान्हिका पर्व कार्तिक, फाल्गुन एव आषाढ माह मे आते है। अष्टान्हिका पर्व मे आठ दिनो तक इन्द्रादिक सपरिवार आठवे नंदीश्वर द्वीप मे जाकर अकृत्रिम जिन चैत्यालयो मे स्थित जिनेन्द्र देव मे अहर्निश अति उल्लासपूर्वक पूजन भक्ति करते है। अन्य तीन पर्व माघ, चैत्र एव भाद्र माह मे आते है। इसमे से भाद्र पक्ष मे पडने वाले इन पर्वो को विशेष उल्लास पूर्वक मनाने की परम्परा है, ये धर्म आराधना के पर्व है और प्रत्येक मुमुक्ष को स्वपर कल्याणार्थ की भावना से वर्ष मे पडने वाले तीनो बार के पर्वो को अति उल्लास पूर्वक मनाया जाना श्रेयस्कर है।

श्री नन्दीश्वर द्वीप (अष्टान्हिका) पूजन

अष्टम द्वीप श्री नन्दीश्वर आगम मे वर्णित पावन।
चार दिशा में तेरह-तेरह जिन चैत्यालय है बावन ॥
एक-एक मे बिम्ब एक सौ आठ रतनमय है अति भव्य।
प्रातिहार्य है अष्ट मनोहर आठ-आठ हैं मगल द्रव्य ॥
पाच सहस्त्र अरु छः सौ सोलह प्रतिमाओ को करूँ प्रणाम।
धनुष पाँच सौ पद्मासन अरहिन्त देव मुद्रा अभिराम ॥
अष्टान्हिका पर्व मे इन्द्रादिक सुर जा करते पूजन।
भाव सहित जिन प्रतिमा दर्शन से होता सम्यक्दर्शन ॥

ॐ ह्री श्री नन्दीश्वर द्वीपे द्वि पचाशत जिनालयस्थ जिन प्रतिमासमूह अत्र अवतर अवतर सवौषट्, ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वर द्वीपे द्वि पचाशत जिनालयस्थ जिन प्रतिमा समूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ , ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वर द्वीपे द्वि पचाशत जिनालस्थ जिन प्रतिमा समूह अत्र मम् सन्निहितो भवभव वषट्।

समकित जल की पावन धारा निज उर अन्तर में लाऊँ।
मिथ्याभ्रम की धूल हटाऊँ निज स्वरूप को चमकाऊँ ॥

ज्ञान ज्ञान मे जब सुस्थिर हो तब होता है सम्यक् ज्ञान ।
सतत भावना शुद्धातम की करते करते केवल ज्ञान ।।

नन्दीश्वर के बावन जिन चैत्यालय वन्दू हर्षाऊँ ।
अष्टमद्वीप मनोरम जिन प्रतिमायें पूजूँ सुख पाऊँ ।।१।।

ॐ ह्री श्री नन्दीश्वर द्वीपे पूर्वपश्चिमोतर दक्षिणदिशासुद्धि-पचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो भवताप विनाशनाय चन्दन नि ।

क्षमा भाव का शुचिमय चन्दन उर अन्तर मे भर लाऊँ ।
क्रोध कषाय नष्ट करके मै शान्ति सिधु प्रभु बन जाऊँ ।।नदी।।२।।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वर द्वीपे द्विपचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो भवताप विनाशनाय चन्दन नि ।

मार्दव भाव परम उपकारी भाव पूर्ण अक्षत लाऊँ ।
मान कषाय नष्ट करके मै शुद्धातम के गुण गाऊँ ।।नंदी.।।३।।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वर द्वीपे द्विपचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो अक्षयपद प्राप्ताय अक्षत नि ।

शुद्ध आर्जव भाव पुष्प से सजा हृदय को, मै आऊँ ।
सर्वनाश माया कषाय का करूँ सरलता को पाऊँ ।।नदी.।।४।।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे द्वि पचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि ।

सत्य शौच मय भाव भक्तिनैवेद्य हृदय मे भर लाऊँ ।
लोभ कषाय नाश करने को सन्तोषामृत पी जाऊँ ।।नदी।।५।।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे द्वि पचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि ।

द्रव्य भाव सयम तप ज्योति जगा आतम मे रम जाऊँ ।
मै अनादि अज्ञान नाश कर सम्यक्ज्ञान रत्न पाऊँ ।।नदी।।६।।

ॐ ह्री श्री नन्दीश्वर द्वीपे द्विपचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि ।

त्याग भाव आकिचन पाऊँ शुद्ध स्वभाव धूप लाऊँ ।
पर विभाव परिणति को क्षयकर निजपरिणति वैभव पाऊँ ।।नदी।।७।।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे द्विपचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो अष्टकर्म विध्वसनाय धूप नि ।

बहुआरम्भ परिग्रह भावो से है घोर नरक गतिबंध।
मायामयी अशुभ भावो से होता गति त्रियच का बंध ॥

ब्रह्मचर्य का फल पाने को रत्नत्रय पथ पर आऊँ।
जिन स्वरूप में चर्या करके महामोक्ष फल को पाऊँ ॥
नन्दीश्वर के बावन जिन चैत्यालय वन्दू हर्षाऊँ।
अष्टमद्वीप मनोरम जिन प्रतिमायें पूजूँ सुख पाऊँ ॥८॥

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे द्विपचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो महामोक्षफल प्राप्ताय फल नि।

सवर और निर्जरा द्वारा कर्म रहित मैं हो जाऊँ।
आश्रव बध नाश कर स्वामी मैं अनर्घ पदवी पाऊँ ॥नंदी.॥९॥

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिशु द्विपचाश जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्य नि।

जयमाला

मध्यलोक में एक लाख योजन का जम्बूद्वीप प्रथम।
द्वीप धातकी खण्ड दूसरा तीजा पुष्करवर अनुपम ॥१॥
चौथा द्वीप वारुणीवर है द्वीप क्षीरवर है पंचम।
षष्टम् घृतवर द्वीप मनोहर द्वीप इक्षुवर है सप्तम ॥२॥
अष्टम् द्वीप श्री नन्दीश्वर अद्वितीय शोभा धारी।
योजन कोटि एक सौ त्रेसठ लख चौरासी विस्तारी ॥३॥
पूरब, पश्चिम, उत्तर,दक्षिण दिशि मे है अंजनगिरिचार।
इनके भव्य शिखर पर जिन चैत्यालय चारों हैं सुखकार ॥४॥
चहु दिशि चार चार वापी हैं लाख-लाख योजन जलमय।
इनमे सोलह दधिमुख पर्वत जिन पर सोलह चैत्यालय ॥५॥
सोलह वापी के दो कोणों पर इक-इक रतिकर पर्वत।
इन पर हैं बत्तीस जिनालय जिनकी है शोभा शाश्वत ॥६॥
कृष्ण वर्ण अजनगिरि चौरासी सहस्त्र योजन ऊँचे।
श्वेत वर्ण के दधिमुख पर्वत दस सहस्त्र योजन ऊँचे ॥७॥
लाल वर्ण के रतिकर पर्वत एकसहस्त्र योजन ऊँचे।
सभी ढोल सम गोल मनोहर पर्वत हैं सुन्दर ऊँचे ॥८॥
चारो दिशि में महा मनोरम कुल जिन चैत्यालय बावन।
सभी अकृत्रिम अति विशाल हैं उन्नत परम पूज्य पावन ॥९॥

यह जीवन दीपक निरतेज अवश्य एक दिन होगा ही।
तन यौवन धन परिजन सबसे ही वियोग क्षण होगा ही॥

जिन भवनों का एक शतक योजन लम्बाई का आकार।
अर्ध शतक चौडाई पचहत्तर योजन ऊँचा विस्तार॥१०॥
चौसठ वन की सुषमा से शोभित है अनुपम नन्दीश्वर।
है अशोक सप्तच्छद चम्पक आम्र नाम के वन सुन्दर॥११॥
इन सबमे अवतश आदि रहते है चौंसठ देव प्रबल।
गाते नन्दीश्वर की महिमा अरिहतों का यश उज्ज्वल॥१२॥
देव देवियाँ नृत्य वाद्य गीतो से करते जिन पूजन।
जय ध्वनि से आकाश गुंजाते थिरक-थिरक करते नर्तन॥१३॥
कार्तिक फागुन अरु अषाढ मे इन्द्रादिक सुर आते है।
अन्तिम आठ दिवस पूजन कर मन में अति हर्षाते है॥१४॥
दो दो पहर एक इक दिशि में आठ पहर करते पूजन।
धन्य धन्य नन्दीश्वर रचना धन्य धन्य पूजन अर्चन॥१५॥
ढाई द्वीप तक मनुज क्षेत्र है आगे होता नही गमन।
ढाई द्वीप से आगे तो जा सकते है केवल सुरगण॥१६॥
शक्तिहीन हम इसीलिए करते है यही भाव पूजन।
नन्दीश्वर की सब प्रतिमाओ को है भाव सहित वन्दन॥१७॥
भव-भव के अघ मिटे हमारे आत्म प्रतीत जगे मन मे।
शुद्धभाव अभिवृद्धि सहज हो समकित पाये जीवन मे॥१८॥
यही विनय है यही प्रार्थना यही भावना है भगवान।
नन्दीश्वर की पूजन करके करे आत्मा का ही ध्यान॥१९॥
आत्म ध्यान की महाशक्ति से वीतराग अरिहन्त बनें।
घाति अघाति कर्म सब क्षयकर मुक्तिकत भगवंत बने॥२०॥

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्धीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिशु द्विपचाश जिनालयस्थ पॉच हजार छ सौ सोलह जिनप्रतिमाभ्यो जिन पूर्णार्घ्यं नि स्वाहा।

भाव सहित नन्दीश्वर की पूजन से होता है कल्याण।
स्वर्ग मोक्ष पद मिल जाता है धर्म ध्यान से सहज महान॥

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वर सज्ञाय नम

卐

पुण्य पुण्य है पाप पाप है कहते सब कर्मात्मा।
पुण्य कर्म भी पाप कर्म है कहते है धर्मात्मा ॥

श्री पंचमेरु पूजन

मध्यलोक मे ढाई द्वीप के पचमेरु को करूँ प्रणाम।
मेरु सुदर्शन, विजय, अचल, मदिर, विद्युन्माली अभिराम ॥
मेरु सुदर्शन एक लाख योजन ऊँचा है महिमावान।
शेष मेरु योजन चौरासी सहस्त्र उच्च है दिव्य महान ॥

पॉचो मेरु अनादि निधन है स्वर्णमयी सुन्दर सुविशाल।
इन पर अस्सी जिन चैत्यालय वन्दू सदा झुकाऊँ भाल ॥
इनका पूजन वन्दन करके मै अनादि अघ तिमिर हरूँ।
मन वच काया शुद्धिपूर्वक श्री जिनवर को नमन करूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शन, विजय, अचल मन्दिर, विद्युन्माली पचमेरु सबधी जिन चैत्यालयस्थ जिनप्रतिमा समूह अत्र अवतर अवतर सवौषट् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

यह अथाह भव सागर जल पीकर भी तृषा न शात हुई।
जन्म मरण के चक्कर मे पडकर मेरी मति भ्रान्त हुई ॥
पंचमेरु के अस्सी जिन चैत्यालय को वन्दन कर लूँ।
भक्ति भाव से पूजन करके मै भवसागर दुख हर लूँ ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री पचमेरु सम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो जल नि।

भव दावानल की भीषण ज्वाला मे जल जल दुख पाया।
ताप निकंदन निजगुण चन्दन शीतलता पाने आया ॥पचमेरु॥२॥

ॐ ह्रीं श्री पचमेरु सम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो चदन नि।

भव समुद्र की चारो गतिमय भवरों मे गोता खाया।
अक्षय पद पाने को हे प्रभु कभी न अक्षत गुण भाया ॥पचमेरु ॥३॥

ॐ ह्रीं श्री पचमेरु सम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो अक्षत नि।

काम भाव से भव दुख की श्रृखला बढाता ही आया।
महाशील के सुमन प्राप्त करने को देवशरण आया ॥

जब तक ही नहीं स्वसन्मुख है तू तेरा शास्त्र ज्ञान भी व्यर्थ है।
ग्यारह अग पूर्व नौ तक का अगम ज्ञान सभी है व्यर्थ ।।

पंचमेरु के अस्सी जिन चैत्यालय को वन्दन कर लूँ।
भक्ति भाव से पूजन करके मै भवसागर दुख हर लूँ ।।४।।

ॐ ह्रीं श्री पचमेरु सम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो पुष्प नि ।

जग के अनगिनती द्रव्यों को पाकर तृप्त न हो पाया।
इसीलिए निर्लोभ वृत्ति नैवेद्य प्राप्त करने आया ।। पचमेरु ।।५।।

ॐ ह्रीं श्री पचमेरु सम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो नैवेद्य नि ।

अंधकार मे मार्ग भूलकर भटक भटक अति दुख पाया।
सम्यक्ज्ञान प्रकाश प्राप्त करने को यह दीपक लाया ।।पंचमेरु।।६।।

ॐ ह्रीं श्री पचमेरु सम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो दीप नि ।

विकट जगत जजाल कर्ममय इसको तोड नही पाया।
आत्म ध्यान की ध्यान अग्नि मे कर्मजलाने मै आया ।।पचमेरु।।७।।

ॐ ह्रीं श्री पचमेरु सम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो धूप नि ।

भव अटवी में अटका अब तक नहीं धर्म का फल पाया।
चिदानंद चैतन्य स्वभावी मोक्ष प्राप्त करने आया ।।पचमेरु।।८।।

ॐ ह्रीं श्री पचमेरु सम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो फल नि ।

क्षमा शील संयम व्रत तप शुचि विनयसत्य उर मे लाया।
निज अनतसुख पाने के प्रभु मै वसुद्रव्य अर्घ लाया ।। पचमेरु।।९।।

ॐ ह्रीं श्री पचमेरु सम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो अर्घ्य नि ।

अर्घ्यावलि

जम्बूद्वीप सुमेरु सुदर्शन परम पूज्य अति मन भावन।
भू पर भद्रशाल वन, पाँच शतक योजन पर नन्दन वन ।।
साढे बासठ सहस्त्र योजन ऊँचा है सौमनस सुवन।
फिर छत्तीस सहस्त्र योजन की ऊँचाई पर पाडुक वन ।।
चारों वन की चार दिशा मे एक एक जिन चैत्यालय।
सोलह चैत्यालय है अनुपम विनय सहित वन्दू जय जय ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपसुदर्शन मेरु सम्बन्धि षोडशजिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो अर्घ्य नि स्वाहा।

खण्ड धातकी पूर्व दिशा मे विजय मेरु पर्वत पावन।
भू पर भद्रशाल वन पाँच शतक योजन पर नंदन वन ।।
साढे पचपन सहस्त्र योजन ऊँचा है सौमनस सुवन।
अट्ठाईस सहस्त्र योजन की ऊचाई पर पांडुक वन ।।
चारों वन की चार दिशा में एक एक जिन चैत्यालय।
सोलह चैत्यालय है अनुपम विनय सहित वन्दू जय जय ।।२।।

ॐ ह्रीं श्री धातकीखण्डद्धीप पूर्वदिशा विजयमेरु सम्बन्धि षोडश जिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं नि स्वाहा।

खण्ड धातकी पश्चिम दिशि मे अचल मेरु पर्वत सुन्दर।
विजय मेरु सम इस पर भी हैं सोलह चैत्यालय मन हर ।।
प्रातिहार्य आठों वसुमगल द्रव्यों से जिन गृह शोभित।
देव इन्द्र विद्याधर चक्री दर्शन कर होते हर्षित ।।चारों.।।३।।

ॐ ह्रीं श्री धातकीखण्डद्धीप पश्चिमदिशा अचलमेरु सम्बन्धि षोडशजिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं नि स्वाहा।

पुष्करार्ध की पूर्व दिशा में मन्दिर मेरु महासुखमय।
विजय मेरु सम इसकी रचना सोलह चैत्यालय जय जय ।।
चन्द्र सूर्य सम कान्ति सहित हैं रत्नमयी प्रतिमा से युक्त।
दस प्रकार के कल्पवृक्ष की मालाओं से हैं संयुक्त ।।चारों.।।४।।

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्धीप पूर्वदिशा मन्दिरमेरुसम्बन्धि षोडशजिन चैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं नि स्वाहा।

पुष्करार्ध की पश्चिम दिशि में विद्युन्माली मेरु महान।
विजय मेरु सम की रचना है सोलह चैत्यालय छविमान।
सुर विद्याधर असुर सदा ही पूजन करने आते है।
चारण ऋद्धि धारिमुनि भी दर्शन को आते जाते है ।।चारों.।।५।।

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्धीप पश्चिमदिशा विद्युन्मालीमेरु सम्बन्धि षोडश जिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं नि स्वाहा।

सिद्ध समान परम पद अपना, यह निश्चय कब लाओगे।
द्रव्यदृष्टि बन निज स्वरूप को, कब तक अरे सजाओगे ।।

जयमाला

एक लाख योजन का जम्बूद्वीप लोक के मध्य प्रधान।
चार लाख योजन का सुन्दर द्वीप धातकी खण्ड महान ।।१।।
सोलह लाख सुयोजन का है पुष्कर द्वीप अपूर्व ललाम।
इनमे पंचमेरु है अनुपम परम सुहावन हैं शुभ नाम ।।२।।
सूर्य चन्द्र देते प्रदक्षिणा करते निशदिन सतत प्रणाम।
एक मेरु सम्बन्धी सोलह पचमेरु अस्सी जिन धाम ।।३।।
एक शतक अर अर्ध शतक योजन लम्बे चौडे जिन धाम।
पौन शतक योजन ऊचे है बने अकृत्रिम भव्य ललाम।।४।।
एक एक में बिम्ब एक सौ आठ विराजित है मनहर।
आठ सहस्त्र छ· सौ चालीस है श्री अरहत मूर्ति सुन्दर ।।५।।
धनुष पांच सौ पद्मासन हैं गूंज रहा है जय जय गान।
नृत्य वाद्य गीतो मे झकृत दशो दिशाये महिमावान ।।६।।
तीर्थकर के जन्मोत्सव की सदा गूजती जय जयकार।
धन्य धन्य श्री जिन शासन की महिमा जग मे अपरम्पार ।।७।।
नही शक्ति हममें जाने की यहीं भाव पूजन करते।
पुष्पांजलि व्रत की महिमा से भव-भव के पातक हरते ।।८।।
पचमेरु की पूजा करके निज स्वभाव मे आ जाऊँ।
भेद ज्ञान की नवल ज्योति से सम्यक्‌दर्शन प्रगटाऊँ ।।९।।
सम्यक्ज्ञान चरित्र धार मुनि बन स्वरूप मे रम जाऊँ।
वसु कर्मो का सर्वनाश कर सिद्ध शिला पर जम जाऊँ ।।१०।।

ॐ ह्रीं श्री ढाईद्धीपसम्बन्धी सुदर्शन, विजय, अचल, मन्दिर, विद्युन्माली पचमेरुसम्बन्धी अस्सीजिन चैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो पूर्णार्घ्यं।

पचमेरु जिन धाम की महिमा अगम अपार।
पुष्पाजलि व्रत जो करें हो जाये भव पार ।।११।।

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्रीं श्री पचमेरु चैत्यालयेभ्यो नम

卐

आत्म स्वरूपबलबन भावो, से विभाव परिहार करो।
रत्नत्रय का वैभव पाकर, भव दुख सागर पार करो ॥

श्री षोडशकारण पूजन

षोडशकारण पर्व धर्म का करू धर्म आराधना।
मुक्ति सुनिश्चित यदि इस व्रत की हो निजात्म में साधना ॥
दुखी जगत के जीव मात्र का हित हो जिन कल्याण हो।
अविनश्वर लक्ष्मी से परिणय मोक्ष प्रकाश महान हो ॥
पूर्ण ज्ञान कैवल्य अनन्तानत गुणों का वास हो।
तीर्थकर पद दाता सोलहकारण धर्म विकास हो ॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शविशुद्धयादि षोडश कारणानि अत्र अवतर अवतर सवौषट्, ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादि षोडश कारणानि अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ, ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादि षोड्श कारणानि अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

जल की उज्ञवल निर्मलता से मिथ्यामैल न धो सका।
आकुलता मय जन्म मरण से रहित न अब तक हो सका ॥
निर्विकल्प अविकल सुखदायक सोलहकारण भावना।
जय जय तीर्थकरपद दायक सोलहकारण भावना ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनाविशुद्धयादि षोडशकारणेभ्यो जल नि स्वाहा।

भाव मरण प्रति समय किया है मैने काल अनादि से।
भव सताप बढाया चलकर उल्टी चाल अनादि से ॥निर्वि.॥२॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनाविशुद्धयादि षोडशकारणेभ्यो चदन नि स्वाहा।

मुक्त नही हो पाया अब तक भावो के जाल से।
यह ससार चक्र मिट जाये धर्म चक्र की चाल से ॥निर्वि॥३॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनाविशुद्धयादि षोडशकारणेभ्यो अक्षत नि स्वाहा।

काम वेदना भव पीडामय पर परिणति दुखदायिनी।
काम विनाशक निज चेतन पद निज परणति सुखदायिनी ॥निर्वि.॥४॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनाविशुद्धयादि षोडशकारणेभ्यो पुष्प नि स्वाहा।

जग तृष्णा की व्याधि हजारो आकुल करती है मुझे।
क्षुधा रोग की माया नागिन भव भव डसती हैं मुझे ॥निर्वि.॥५॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनाविशुद्धयादि षोडशकारणेभ्यो नैवेद्य नि स्वाहा।

आत्मज्ञान रवि ज्योति प्रकाशित हो अब स्वपर प्रकाशिनी।
शुद्ध परमपद प्राप्ति भावना तुम नाशक भव नाशिनी ॥निर्वि.॥६॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनाविशुद्धयादि षोडशकारणेभ्यो दीप नि स्वाहा।

सवरभाव जगाओगे तो, आस्त्रव बध रुकेगा ही।
भाव निर्जरा अपनायी तो, कर्म निजरित होगा ही ॥

एक भूल कर्मो की संगति भव वन मे उलझा रही।
अग्नि लोह की संगति करके घन की चोटे खा रही ॥७॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनाविशुद्धयादि षोडशकारणेभ्यो धूप नि स्वाहा।

निज स्वभाव बिन हुई सदा ही अष्टकर्म की जीत ही।
महामोक्ष फल पाने का पुरुषार्थ किया विपरीत ही ॥
निर्विकल्प अविकल सुखदायक सोलहकारण भावना।
जय जय तीर्थकरपद दायक सोलहकारण भावना ॥८॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनाविशुद्धयादि षोडशकारणेभ्यो फल नि स्वाहा।

जल फलादि वसु द्रव्य अर्घ का अर्थ कभी आया नही।
अविचल अविनश्वर अनर्घ पद इसीलिए पाया नहीं ॥निर्वि.॥९॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनाविशुद्धयादि षोडशकारणेभ्यो अर्घ्यं नि स्वाहा।

जयमाला

भव्य भावना षोडशकारण विमल मुक्ति निर्वाण पथ।
तीर्थंकर पदवी पाने का द्रुत गतिवान प्रयाणरथ ॥१॥
रागादिक मिथ्यात्व रहित समकित हो निज की प्रीतिमय।
दोष रहित दर्शनविशुद्धि भावना मुक्ति सगीतमय ॥२॥
मन वच काया शुद्धि पूर्वक रत्नत्रय आराध ले।
तप का आदर परम विनय सम्पन्न भावना साध ले ॥३॥
पचव्रत सहित शील स्वगुण परिपूर्ण शीलमय आचरण।
निरतिचार भावना शीलव्रत दोषहीन अशरण शरण ॥४॥
शास्त्र पठन गुरु नमन पाठ उपदेश स्तवन ध्यानमय।
हो अभीक्षण ज्ञानोपयोग भावना हृदय में ज्ञानमय ॥५॥
मित्र भ्रात पत्नी सुत आदिक और विषय संसार के।
इनमे पूर्ण विरक्ति रखे संवेग भावना धार के ॥६॥
हम उत्तम मध्यम जघन्य सत् पात्रो को पहिचान ले।
चार दान दे नित्य शक्तितपरस्त्याग भावना जान ले ॥७॥
मुक्ति प्राप्ति हित आत्म आचरण शक्ति भक्ति अनुरूप हो।
द्वादश विधि से तपश्चरण भावना शक्ति तप रूप हो ॥८॥

शुद्धातक ही परमज्ञान है, शुद्धातम पवित्र दर्शन।
यही एक चारित्र परम है यही एक निर्मल तप धन ।।

इष्ट वियोग अनिष्ट योग उपसर्ग मरण या रोग हो।
साधु समाधि भावना अनुपम कभी न दुखमय योग हो ।।९।।

रोगी मुनि की भक्ति पूर्वक सेवा सुश्रुषा करें।
भव्य भावना वैयावृत्यकरण मन मजूषा भरें ।।१०।।

मन वच काया से विजयी हो करे भक्ति अरहन्त की।
निर्मल अर्हद भक्ति भावना शुद्ध रूप भगवन्त की ।।११।।

गुरु निर्ग्रन्थ चरण वन्दन पूजन नित विनय प्रणाम हो।
नमस्कार आचार्य भक्ति भावना हृदय वसु याम हो ।।१२।।

लोकालोक प्रकाशक जिन श्रुत व्याख्यान अनुरूप हो।
बहु श्रुत भक्ति भावना मन मे उपाध्याय मुनि रूप हो ।।१३।।

सप्त तत्व पचास्तिकाय छह द्रव्य आदि सत् जान ले।
जिन आगम का पढना प्रवचन भक्ति भावना मान ले ।।१४।।

कार्योत्सर्ग प्रतिक्रमण समता स्वाध्याय वन्दन विमल।
देव स्तुतिषट कृत्य भावना आवश्यक निर्मल सरल ।।१५।।

जिन अभिषेक नृत्य गीतो वाद्यों से पूजन अर्चना।
श्रुत प्रवचन मार्गप्रभावना जिनालयो की अर्चना ।।१६।।

शीलवान चारित्रवान जिन मुनियों का आदर करे।
मृदुल भावना प्रवचनवत्सल मुनिचरणो मे शिर धरे ।।१७।।

इनके ब्राह्य आचरण ही से स्वर्ग सम्पदा झिलमिले।
आभ्यन्तर आचरण किया तो मोक्ष लक्ष्मी फल मिले ।।१८।।

जितना अश शुद्धि का होगा उतनी आत्म विशुद्धि रे।
सतत जाग्रत हो निजात्म में मुक्ति प्राप्ति की बुद्धि रे ।।१९।।

पूर्ण शुद्धि होगी निजात्म में तब होगा निर्वाण रे।
ज्ञानानन्दी गुण अनन्तमय स्वय सिद्ध भगवान रे ।।२०।।

ॐ ही श्री दर्शनाविशुद्धयादि षोडशकारणेभ्यो पूर्णार्घ्य नि स्वाहा।

दर्शनीय श्रवणीय आत्मा, बदनीय मननीय महान।
शान्ति सिन्धु सुख सागर, नव तत्वो मे श्रेष्ठ प्रधान ॥

सोलह कारण भावना हरे जगत दुख द्वन्द ।
तीर्थंकर पद प्राप्त कर करो सदा आनन्द ॥

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्रीं श्री विशुद्धयादि षोडशकारण भावनाभ्यो नम ।

卐

श्री दशलक्षणधर्म पूजन

उत्तम क्षमा आत्मा का गुण उत्तम मार्दव विनय स्वरूप ।
उत्तम आर्जव माया नाशक उत्तम शौच लोभहर भूप ॥
उत्तम सत्य स्वभाव ज्ञानमय उत्तम संयम सवर रूप ।
उत्तम तप निर्जरा कर्म की उत्तम त्याग स्वरूप अनूप ॥
उतम आकिचन विरागमय उत्तम ब्रह्मचर्य चिद्रूप ।
धन्य धन्य दशधर्म परम पद दाता सुखमय मोक्ष स्वरूप ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तम क्षमा, मार्दव आर्जव, शौच, सत्य, सयम तप त्याग, आकिचन ब्रह्मचर्य दशलक्षण धर्म अत्र अवतर अवतर सवौषट, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट् ।

जल स्वभाव शीतल निर्मल पीकर भी प्यास न बुझ पाई ।
जन्म मरण का चक्र मिटाने आज धर्म की सुधि आई ॥
उत्तम क्षमा मार्दव आर्जव शौच सत्य सयम तप त्याग ।
आकिचन ब्रह्मचर्य धर्म के दशलक्षण से हो अनुराग ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादि दशधर्मागाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जल नि ।

दाह निकदन चन्दन पाकर भी तो दाह न मिट पाई ।
राग आग की ज्वाल बुझाने आज धर्म की सुधि आई ॥उत्तम॥२॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादि दशधर्मागाय ससारतापविनाशनाय चदन नि ।

शुभ्र अखण्डित तन्दुल पाकर भी निज रुचि न सुहा पाई ।
अजर अमर अक्षय पद पाने आज धर्म को सुधि पाई ॥उत्तम.॥३॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादि दशधर्मागाय अक्षयपद प्राप्ताय अक्षत नि ।

अगणित पुष्प सुवासित पाकर काम व्याधि न मिट पाई ।
अब कन्दर्प दर्प हरने को आज धर्म की सुधि आई ॥उत्तम ॥४॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादि दशधर्मागाय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि ।

जड की रुचि के कारण अब तक निज की तृप्ति न हो पाई।
सहज तृप्त चेतन पद पाने आज धर्म की सुधि आई ॥उत्तम.॥५॥
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादि दशधर्मागाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य नि ।
मिथ्या भ्रम की चकाचौध मे दृष्टि शुद्ध न हो पाई।
मोह तिमिर का अन्त कराने आजधर्म की सुधि आई ॥उत्तम.॥६॥
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादि दशधर्मागाय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि ।
आर्त रौद्र ध्यानो मे रहकर धर्म ध्यान छवि ना भाई।
अष्ट कर्म विध्वंस कराने आज धर्म की सुधि आई ॥उत्तम.॥७॥
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादि दशधर्मागाय अष्टकर्म विध्वसनाय धूप नि ।
राग हेय परिणति फल पाकर निजपरिणति ना मिल पाई।
फल निर्वाण प्राप्त करने को आज धर्म की सुधि आई ॥उत्तम.॥८॥
ॐ ह्री श्री उत्तमक्षमादि दशधर्मागाय महा मोक्षफल प्राप्ताय फल नि ।
चौरासी के क्रूर चक्र मे उलझा शान्ति न मिल पाई।
निज अनरत्व प्राप्त करने को आज धर्म की सुधि आई ॥उत्तम.॥९॥
ॐ ह्री श्री उत्तमक्षमादि दशधर्मागाय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्य नि ।

१-उत्तम क्षमा

उत्तम क्षमा धर्म है सुख का सागर तीन लोक मे सार।
जन्म मरण दुख का अभाव कर शीघ्र नाश करता संसार ॥
क्रोधकषाय विनाशक दुर्गति नाशक मुनियों द्वारा पूज्य।
व्रत सयम को सफल बनाता सुगति प्रदाता है अतिपूज्य ॥
जहॉ क्षमा है वही धर्म है स्वपर दया का मूल महान।
जय जय उत्तम क्षमा धर्म की जो है जग मे श्रेष्ठ प्रधान ॥१॥
ॐ ह्री श्री उत्तम क्षमा धर्मागाय अर्घ्य नि स्वाहा।

२-उत्तम मार्दव

उत्तम मार्दव धर्म ज्ञानमय वसु मद रहित परम सुखकार।
मानकषाय नष्ट करता है विनय गुणों का है भण्डार ॥
विनय बिना तत्वो का हो सकता न कभी सम्यक् श्रद्धान।
दर्शन ज्ञान चरित्र विनय तप बिना न होता सम्यक्ज्ञान ॥

पापो की जड़ कर प्रहार कर, पुण्य मूल की छेद करो।
मोक्ष हेतु सवर के द्धारा, आश्रव का उच्छेद करो ॥

जहाँ मार्दव वहीं धर्म है वहीं मोक्ष नगरी का द्वार।
उत्तम मार्दव धर्म हमारा विनय भाव की जय जयकार ॥२॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमार्दव धर्मागाय अर्घ्यं नि स्वाहा।

३-उत्तम मार्दव

उत्तम मार्दव धर्म कुटिलता से विरहित ऋजुता से पूर्ण।
निज आतम का परम मित्र है करता माया शल्य विचूर्ण ॥
लेशमात्र भी मायाचारी कुगति प्रदायक अति दुख कार।
सरल भाव चेतन गुण धारी टकोत्कीर्ण महा सुख कार ॥
शिवमय शाश्वत मोक्ष प्रदाता मंगलमय अनमोल परम।
उत्तम आर्जव धर्म आत्म का अभय रूप निश्चल अनुपम ॥३॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तम आर्जव धर्मागाय अर्घ्यं नि स्वाहा।

४-उत्तम शौच

उत्तम शौच धर्म सुखकारी मन वच काया करता शुद्ध।
लोभ कषाय नाश कर देता समकित होता परम विशुद्ध ॥
ऋद्धि सिद्धि का लोभ न किन्चित इसके कारण हो पाता।
जो सन्तोषामृत पीता है वही आत्मा को ध्याता ॥
शौच धर्म पावन मगलमय से हो जाता है निर्वाण।
उत्तम शौच धर्म ही जग मे करता है सबका कल्याण ॥४॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमशौचधर्मागार' अर्घ्यं नि स्वाहा।

५-उत्तम सत्य

उत्तम सत्य धर्म हितकारी निज स्वभाव शीतल पावन।
वचन गुप्ति की धारी मुनिवर ही पाते है मुक्ति सदन ॥
सब धर्मो में यह प्रधान है भव तम नाशक सूर्य समान।
सुगति प्रदायक भव सागर से पार उतरने को जलयान ॥
सत्य धर्म से अणुव्रत और महाव्रत होते है निर्दोष।
जय जय उत्तम सत्य धर्म त्रिभुवन मे गूज रहा जयघोष ॥५॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमसत्यधर्मागाय अर्घ्यं नि स्वाहा।

बार बार तू डूब रहा है बैठ उपल की नावो मे।
शिव सुख सुधा समुद्र स्वय मे, खोज रहा पर भावो मे ॥

६-उत्तम संयम

उत्तम संयम तीन लोक में दुर्लभ, सहज मनुज गति में।
दो क्षण को पाने की क्षमता, देवों में न सुरपति में ॥
पंचेन्द्रिय मन वश में करना, त्रस थावर रक्षा करना।
अनुकम्पा आस्तिक्य प्रशम संवेगधार मुनिपद धरना।
धन्य धन्य संयम की महिमा तीर्थंकर तक अपनाते।
उत्तम सयम धर्म जयति जय हम पूजन कर हर्षाते ॥६॥
ॐ ह्रीं श्री उत्तमसयमधर्मांगाय अर्घ्यं नि स्वाहा।

७-उत्तम तप

उत्तम तप है धर्म परम पावन स्वरूप का मनन जहाँ।
यही सुतप है अष्ट कर्म की होती है निर्जरा जहाँ ॥
पचेन्द्रिय का दमन सर्व इच्छाओ का निरोध करना।
सम्यक्तप धर निज स्वभाव से भाव शुभाशुभ को हरना।
धन्य धन्य बाह्यन्तर द्वादश तप विध धन्य धन्य मुनिराज।
उत्तम तप जो धारण करते हो जाते है श्री जिनराज ॥७॥
ॐ ह्रीं श्री उत्तमतपधर्मांगाय अर्घ्यं नि स्वाहा।

८-उत्तम त्याग

उत्तम त्याग धर्म है अनुपम पर पदार्थ का निश्चय त्याग।
अभय शास्त्र औषधि आहार है चारो दान सरल शुभ राग ॥
सरल भाव से प्रेम पूर्वक करते है जो चारो दान।
एक दिवस गृह त्याग साधु हो करते है निज का कल्याण ॥
अहो दान की महिमा तीर्थंकर प्रभु तक लेते है आहार।
उत्तम त्याग धर्म की जय जय जो है स्वर्ग मोक्ष दातार ॥८॥
ॐ ह्रीं श्री उत्तमत्यागधर्मांगाय अर्घ्यं नि स्वाहा।

९-उत्तम आकिंचन

उत्तम आकिचन है धर्म स्वरूप ममत्व भाव से दूर।
चौदह अतरग दश बाहर के हैं जहाँ परिग्रह चूर ॥

ज्ञानी स्वगुण चिन्तवन करता, अज्ञानी पर का चिन्तन।
ज्ञानी आत्म मनन करता है, अज्ञानी विभाव मथन ।।

तृष्णाओं को जीता पर द्रव्यों से राग नही किंचित।
सर्व परिग्रह त्याग मुनीश्वर विचरे वन में आत्माश्रित।
परम ज्ञानमय परमध्यानमय सिद्धस्वपद का दाता है।
उत्तम आकिंचन व्रत जग मे श्रेष्ठ धर्म विख्याता है।।९।।
ॐ ह्रीं श्री उत्तम आकिंचनधर्मांगाय अर्घ्यं नि स्वाहा।

१०-उत्तम ब्रह्मचर्य

उत्तम ब्रह्मचर्य दुर्धर व्रत है सर्वोत्कृष्ट जग में।
काम वासना नष्ट किये बिन नहीं सफलता शिवजग मे ।।
विषय भोग अभिलाषा तज जो आत्मध्यान मे रम जाते।
शील स्वभाव सजा दुर्मतिहर काम शत्रु पर जय पाते।।
परमशील की पवित्र महिमा ऋषि गणधर वर्णन करते।
उत्तम ब्रह्मचर्य के धारी ही भव सागर से तिरते ।।१०।।
ॐ ह्रीं श्री उत्तमब्रह्मचर्यधर्मांगाय अर्घ्यं नि स्वाहा।

जयमाला

उत्तम क्षमा धर्म को धारूँ क्रोध कषाय विनाश करूँ।
पर पदार्थ को इष्ट अनिष्ट न मानूँ आत्म प्रकाश करूँ ।।१।।

उत्तम मार्दव धर्म ग्रहण कर विनय स्वरूप विकास करूँ।
पर कर्त्तव्य मान्यता त्यागूँ अहकार का नाश करूँ ।।२।।

उत्तम आर्जव धर्मधार माया कषाय सहार करूँ।
कपट भाव से रहित शुद्ध आतम का सदा विचार करूँ ।।३।।

उत्तम शौच धर्म धारण कर लोभ कषाय विनष्ट करूँ।
शुचिमय चेतन से अशुद्ध ये चार घातिया कर्म हरूँ ।।४।।

उत्तम सत्य धर्म से निर्मल निज स्वरूप को सत्य करूँ।
हितमित प्रिय सचबोलूँ नित निज परिणति के सग नृत्य करूँ ।।५।।

उत्तम सयम धर्म सभी जीवो के प्रति करूणा धारूँ।
समितिगुप्ति व्रत पालन करके निज आतम गुण विस्तारूँ ।।६।।

मिथ्यात्व के जाए बिन, सच्ची सुख शान्ति नहीं होती।
सम्यक् दर्शन हो जाने पर, फिर भव भ्रान्ति नहीं होती॥

उत्तम तप धर शुक्ल ध्यान से आठों कर्मो को जारूँ।
अन्तरंग बहिरंग तपो से निज आतम को उजियारूँ॥७॥
उत्तम त्याग पांच पापों का सर्वदेश मैं त्याग करूँ।
योग्य पात्र को योग्य दान दे उर मे सहज विराग भरूँ॥८॥
उत्तम आकिंचन रागादिक भावो का परिहार करूँ।
सर्व परिग्रह से विमुक्त हो मुनिपद अंगीकार करूँ॥९॥
उत्तम ब्रह्मचर्य उर धारूँ आत्म ब्रह्म मे लीन रहूँ।
कामबाण विध्वस करूँ मै शील स्वभावाधीन रहूँ॥१०॥
दशलक्षणव्रत की महिमा का नित प्रति जयजयगान करूँ।
दश धर्मो का पालन करके महामोक्ष निर्वाण वरूँ॥११॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, सयम, तप, त्याग, आकिचन, ब्रह्मचर्य दशधर्मेभ्यो पूर्णार्घ्य नि स्वाहा।

श्री दशलक्षण धर्म की महिमा अगम अपार।
जो भी इसको धारते होते भव पार॥

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र – ॐ ह्रीं श्री उत्तम क्षमा मार्दव आर्जव शौच सत्य तप, त्याग, आकिचन, ब्रह्मचर्य धर्मागाय नम।

卐

श्री रत्नत्रयधर्म पूजन

जय जय सम्यक् दर्शन पावन मिथ्या भ्रम नाशक श्रद्धान।
जय जय सम्यक् ज्ञान तिमिर हर जय जय वीतराग विज्ञान॥
जय जय सम्यक् चारित निर्मल मोह क्षोभ हर महिमावान।
अनुपम रत्नत्रय धारण कर मोक्ष मार्ग पर करूँ प्रयाण॥

ॐ ह्रीं श्री सम्यक् रत्नत्रय धर्म अत्र अवतर अवतर सवौषट्, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

सम्यक् सरित सलिल जल द्वारा मिथ्याभ्रम प्रभु दूर हटाव।
जन्म मरण का क्षय कर डालूँ साम्य भाव रस मुझे पिलाव॥

सह अस्तित्व समन्वय होगा, सयममय अनुशासन से।
सत्य अहिंसा अपरिग्रह अस्तेय शील के शासन से ।।

दर्शन ज्ञान चरित्र साधना से पाऊँ निज शुद्ध स्वभाव।
रत्नत्रय की पूजन करके राग द्वेष का करूँ अभाव ।।१।।
ॐ ह्रीं श्री सम्यक् रत्नत्रय धर्माय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जल नि ।
शुभ भावों का चंदन घिस-घिस निज से किया सदा अलगाव।
भव ज्वाला शीतल हो जाये ऐसी आत्म प्रतीत जगाव ।।
दर्शन ज्ञान चरित्र साधना से पाऊँ निज शुद्ध स्वभाव।
रत्नत्रय की पूजन करके राग द्वेष का करूँ अभाव ।।२।।
ॐ ह्रीं श्री सम्यक् रत्नत्रय धर्माय ससारताप विनाशनाय चदन नि ।
भव समुद्र की भंवरों मे फंस टूटी अब तक मेरी नाव।
पुण्योदय से तुमसा नाविक पाया मुझको पार लगाव ।।दर्शन ।।३।।
ॐ ह्रीं श्री सम्यक् रत्नत्रय धर्माप अक्षयपद प्रामाय अक्षत नि ।
काम क्रोध मद मोह लोभ से मोहित हो करता पर भाव।
दृष्टि बदलजाये तो सृष्टि बदलजाये यह सुमतिजगाव ।।दर्शन।।४।।
ॐ ह्रीं श्री सम्यक् रत्नत्रय धर्माय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि ।
पुण्य भाव की रुचि मे रहता इच्छाओं का सदा कुभाव।
क्षुधारोग हरने को केवल निज की रुचि ही श्रेष्ट उपाव ।।दर्शन।।५।।
ॐ ह्रीं श्री सम्यक् रत्नत्रयधर्माय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य नि ।
ज्ञान ज्योति बिन अधकार मे किये अनेको विविध विभाव।
आत्मज्ञान की दिव्यविभा से मोहतिमिर का करूँ अभाव ।।दर्शन।।६।।
ॐ ह्रीं श्री सम्यक् रत्नत्रयधर्माय मोहान्धकारविनाशनाय दीप नि ।
घाति कर्म ज्ञानावरणादिक निज स्वरूप घातक दुर्भाव।
ध्रव स्वभावमय शुद्ध दृष्टि दो अष्टकर्म से मुझे बचाव ।।दर्शन ।।७।।
ॐ ह्रीं श्री सम्यक् रत्नत्रयधर्माय अष्टकर्म विध्वसनाय धूप नि ।
निज श्रद्धानज्ञान चारित्रमय निजपरिणति से पा निज ठॉव।
महामोक्ष फल देने वाले धर्म वृक्ष की पाऊँ छॉव ।।दर्शन ।।८।।
ॐ ह्रीं श्री सम्यक् रत्नत्रय धर्माय महा मोक्षफल प्रामाय फल नि ।
दुर्लभ नर तन फिर पाया है चूक न जाऊँ अन्तिम दाव।
निज अनर्घ पद पाकर नाश करूँगा मै अनादि का घाव ।।दर्शन।।९।।
ॐ ह्रीं श्री सम्यक् रत्नत्रयधर्माय अनर्घ पद प्रामाय अर्घ्य नि ।

कष्टो से भरपूर सर्वथा यह ससार असार है।
निज स्वभाव के द्वारा मिलता शिव सुख अपरंपार है ॥

१-सम्यक्दर्शन

आत्मतत्व की प्रतीत निश्चय सप्ततत्व श्रद्धा व्यवहार।
सम्यक्दर्शन से हो जाते भव्य जीव भव सागर पार ॥१॥
विपरीताभिनिवेश रहित अधिगमज निसर्गज समकित सार।
औपशमिक क्षायिक क्षयोपशम होता है यह तीन प्रकार ॥२॥
आर्ष, मार्ग, बीज, उपदेश, सूत्र, संक्षेप अर्थ विस्तार।
समकित है अवगाढ और परमावगाढ दश भेद प्रकार ॥३॥
जिन वर्णित तत्वो में शका लेश नहीं, निशकित अंग।
सुरपद या लौकिकसुख बाँछा लेश नहीं, नि·काक्षित अंग ॥४॥
अशुचि पदार्थों मे न ग्लानि हो शुचिमय निर्विचिकित्सा अग।
देव शास्त्र गुरु धर्मात्माओ में रुचि अमूढद्रष्टि सुअंग ॥५॥
पर दोषो को ढकना स्वगुण वृद्धि करना उपगूहन अंग।
धर्म मार्ग से विचलित को थिर रखना स्थितिकरणसुअग ॥६॥
साधर्मी में गौ बछडे सम पूर्ण प्रीति वात्सल्य सुअंग।
जिन पूजा तप दया दान मन से करना प्रभावना अंग ॥७॥
आठ अग पालन से होता है सम्यक्दर्शन निर्मल।
सम्यक्ज्ञान चरित्र उसी के कारण होता है उज्जवल ॥८॥
शंका काक्षा विचिकित्सा अरु मूढदृष्टि अनउपगूहन।
अस्थितिकरण अवात्सल्य अप्रभावना वसु दोष सघन ॥९॥
कुगुरुकुदेव कुशास्त्र और इनके सेवक छः अनायतन।
देव मूढ़ता गुरुमूढता लोक मूढता तीन जघन ॥१०॥
जाति रूप कुल ऋद्धि तपस्या पूजा बल, ज्ञान मद आठ।
मूल दोष सम्यक्दर्शन के यह पच्चीस तजो मद आठ ॥११॥
जय जय सम्यक् दर्शन आठो अग सहित अनुपम सुखकार।
यही धर्म का सुदृढ मूल है इसकी महिमा अपरम्पार ॥१२॥
ॐ ह्रीं श्री अष्टाग सम्यक्दर्शनाय अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं नि ।

भावलिंग बिन द्रव्यलिंग का तनिक नहीं कुछ मूल्य है।
अविरत चौथा गुणस्थान भी शिव पथ मे बहुमूल्य है ।।

२-सम्यक्ज्ञान

निज अभेद का ज्ञान सुनिश्चिय आठ भेद सब है व्यवहार।
सम्यक्ज्ञान परम हितकारी शिव सुखदाता मंगलकार ।।१।।
अक्षर पद वाक्यों का शुद्धोच्चारण है व्यंजनआचार।
शब्दों के यथार्थ अर्थ का अवधारण है अर्थाचार ।।२।।
शब्द अर्थ दोनो का सम्यक् जानपना है उभयाचार।
योग्यकाल मे जिनश्रुत का स्वाध्याय कहाता कालाचार ।।३।।
नम्र रूप रह लेश न उद्धत होना ही है विनयाचार।
सदा ज्ञान का आराधन, स्मरण सहित उपध्यानाचार ।।४।।
शास्त्रो के पाठी अरु श्रुत का आदर है बहुमानाचार।
नहीं छुपाना शास्त्र और गुरु नाम अनिन्हव है आचार ।।५।।
आठ अग है यही ज्ञान के इनसे दृढ हो सम्यक्ज्ञान।
पांच भेद हैं मति श्रुत अवधि मन पर्यय अरु केवलज्ञान ।।६।।
मति होता है इन्द्रिय मन से तीन शतक अरु छत्तीसभेद।
श्रुत के प्रथम करण चरण द्रव्य चउअनुयोग सु भेद ।।७।।
द्वादशांग चौदह पूरब परिकर्म चूलिका प्रकीर्णक।
अक्षर और अनक्षरात्मक भेद अनेकों हैं सम्यक् ।।८।।
अवधि ज्ञान त्रय देशावधि परमावधि सर्वावधि जानों।
भवप्रत्यय के तीन और गुणप्रत्यय के छह पहिचानों ।।९।।
मन पर्यय ऋजुमति विपुलमति उपचार अपेक्षा से जानो।
नय प्रमाण से जान ज्ञान प्रत्यक्ष परोक्ष पृथक मानों ।।१०।।
जय जय सम्यक्ज्ञान अष्ट अगो से युक्त मोक्ष सुखकार।
तीन लोक में विमल ज्ञान की गूजरही है जय जयकार ।।११।।
ॐ ह्री श्री अष्टविध सम्यक्ज्ञानाय अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं नि ।

3-सम्यकचारित्र

निज स्वरूप मे रमण सुनिश्चय दो प्रकारचारित व्यवहार।
श्रावक त्रेपन क्रिया साधु का तेरह विधि चारित्र अपार ।।१।।

पच उदम्बर त्रय मकार तज, जीवदया, निशि भोजन त्याग।
देववन्दना जल गालन निशिभोजन त्यागी श्रावक जान ।।२।।
दर्शन ज्ञान चरित्रमयी ये त्रेपन क्रिया सरल पहिचान।
पाक्षिक नैष्ठिक साधक तीनों श्रावक के हैं भेद प्रधान ।।३।।
परम अहिंसा षटकायक के जीवो की रक्षा करना।
परमसत्य है हितमित प्रिय वच सरलसत्य उर मे धरना ।।४।।
परम अचौर्य, बिना पूछे तृण तक भी नही ग्रहण करना।
पंच महाव्रत यही साधु के पूर्ण देश पालन करना ।।५।।
ईर्या समिति से प्रासुक भू पर चार हाथ भू लख चलना।
भाषा समिति चार विक्रथाओं से विहीन भाषण करना ।।६।।
श्रेष्ठ ऐषणा समिति अनुद्देषिक आहार शुद्धि करना।
है आदान निक्षेपण संयम के उपकरण देख धरना ।।७।।
प्रतिष्ठापना समिति देह के मल भू देख त्याग करना।
पच समिति पालन कर अपने राग द्वेष को क्षय करना ।।८।।
मनोगुप्ति है सब विभाव भावों का हो मन से परिहार।
वचनगुप्ति है आत्म चितवन ध्यान अध्ययन मौन सवार ।।९।।
काय गुप्ति है काय चेष्टा रहित भाव मय कायोत्सर्ग।
तीन गुप्ति धर साधु मुनीश्वर पाते हैं शिवमय अपवर्ग ।।१०।।
षट आवश्यक द्वादश तप पचेन्द्रिय का निरोध अनुपम।
पचाचार विनय आराधन द्वादश व्रत आदिक सुखतम ।।११।
अट्ठाईस मूलगुण धारण सप्त भयो से रहना दूर।
निजस्वभाव आश्रय से करना पर विभाव को चकनाचूर ।।१२।।
निरतिचार तेरह प्रकार का है चारित्र महान प्रधान।
इसके पालन से होता है सिद्ध स्वपद पावन निर्वाण ।।१३।।
श्रेष्ठधर्म है श्रेष्ठमार्ग है श्रेष्ठ साधु पद शिव सुखकार।
सम्यक्चारित्र बिना न कोई हो सकता भव सागर पार ।।१४।।
ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविधि सम्यकचारित्राय अनर्घ्यपद्व प्राप्ताय अर्घ्य नि।

केवल निज परमात्म तत्व की श्रद्धा ही कर्तव्य है।
आत्म तत्व श्रद्धानी का ही तो उज्ज्वल भवितव्य है ।।

जयमाला

अष्ट अंगयुत निर्मल सम्यक्दर्शन मैं धारण कर लूँ।
आठ अंगयुत निर्मल सम्यक्ज्ञान आत्मा में वरलूँ ।।१।।
तेरह विधि सम्यक् चारित्र के मुक्ति भवन मे पग धरलूँ।
श्री अरहंत सिद्ध पद पाऊँ सादि अनंत सौख्य भरलूँ ।।२।।
निज स्वभाव का साधन लेकर मोक्ष मार्ग पर आ जाऊँ।
निजस्वभाव धर भाव शुभाशुभ परिणामों पर जयपाऊँ ।।३।।
एक शुद्ध निज चेतन शाश्वत दर्शन ज्ञान स्वरूपी जान।
ध्रुव टंकोत्कीर्ण चिन्मय चित्चमत्कार चिद्रूपी मान।।४।।
इसका ही आश्रय लेकर मैं सदा इसी के गुण गाऊँ।
द्रव्यदृष्टि बन निजस्वरूप की महिमा से शिवसुखपाऊँ।।५।।
रत्नत्रय को वन्दन करके शुद्धात्मा का ध्यान करूँ।
सम्यक्दर्शन ज्ञान चरित से परम स्वपद निर्वाण वरूँ ।।६।।

ॐ ह्रीं सम्यकदर्शन, सम्यकज्ञान, सम्यकचारित्रमयी रत्नत्रय धर्मेभ्यो अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नत्रय व्रत श्रेष्ठ की महिमा अगम अपार।
जो व्रत को धारण करे हो जाये भव पार ।।

इत्याशीर्वाद

जाप्यमन्त्र - ॐ ह्रीं श्री सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो नम

जयबोलो सम्यक् दर्शन की

जयबोलो सम्यकदर्शन की रत्नत्रय के पावनधन की,
यह मोह ममत्व भगाता है, शिवपथ मे सहज लगाता है।
जय निज स्वभाव आनन्द घन की ।।जय बोलो ।।१।।
परिणाम सरल हो जाते है, सारे संकट टल जाते है।
जय सम्यक् ज्ञान परमधन की ।।जय बोलो ।।२।।
जप तप सयम फल देते हैं भव की बाधा हर लेते है।
जय सम्यक् चारित्र पावन की ।।जय बोलो ।।३।।
निज परिणति रूचि जुड जाती है कर्मो की रज उड जाती हैं।
जय जय जय मोक्ष निकेतन की ।। जय बोलो ।।४।।

वरतु त्रिकाली निरावरण निर्दोष सिद्ध सम शुद्ध है।
द्रव्य दृष्टि बनने वाला ही होता परम विशुद्ध है।

विशेष - पूजायें

जिनागम मे "जिनेन्द्र पूजन" पाँच प्रकार की बतायी है। इन्द्रो द्वारा की जाने वाली "इन्द्रध्वज पूजन" अष्टमद्वीप नन्दीश्वर मे इन्द्रो व देवो द्वारा की जाने वाली "अष्टान्हिका पूजन" चक्रवर्ती सम्राटो के द्वारा की जाने वाली "कल्पद्रुम पूजन", मुकुटबद्ध राजाओ द्वारा की जाने वाली "सर्वतोभद्र पूजन" व श्रावको द्वारा की जाने वाली "नित्यमह पूजन" है। इन पूजनो के अतिरिक्त इस सग्रह मे श्री तीर्थंकर पचकल्याणक, वाहुबली, गौतम-स्वामी, कुन्दकुन्दाचार्य, समयसार, जिनवाणी, जैसी उत्कृष्ट पूजने भी सम्मिलित है। इन पूजनो के माध्यम से सभी आत्मार्थी बन्धु मोक्षमार्ग के पथिक बनकर अजरअमर अविनाशी पद को प्राप्त करे। यही भावना है।

श्री तीर्थंकर पंचकल्याणक पूजन

चौबीसों जिन के पाँचों कल्याणक शुभ मंगलदायी।
गर्भ जन्म तप ज्ञान मोक्ष कल्याणक पूजूँ सुखदायी ॥
ऋषभ अजित संभव अभिनंदन सुमतिपद्म सुपार्श्व भगवंत।
चंद्र सुविधि शीतलश्रेयास जिन वासुपूज्यप्रभु विमल अनंत ॥
धर्म शाति प्रभु कुन्थुअरहजिन मल्लि मुनिसुव्रत नमि गुणवंत।
नेमि पार्श्व प्रभु महावीर के पाँचो मंगल जय जयवन्त ॥

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर पचकल्याणक समूह अत्र अवतर अवतर सवौषट्। ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर पचकल्याणक समूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ। ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर पचकल्याणक समूह अत्रमम् सन्निहितो भव भव वषट्।

शुभ्र नीर की तीन धार दे जन्म जरा मृतु हरण करूँ।
सम्यक्दर्शन की विभूति पा मोक्ष मार्ग को ग्रहण करूँ ॥
जिन तीर्थंकर के बतलाये रत्नत्रय को वरण करूँ।
गर्भ जन्म तप ज्ञान मोक्ष पांचों कल्याणक नमन करूँ ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर पचकल्याणकेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जल नि।

जो चारित्र भ्रष्ट है भव तो एक दिवस तर सकता है।
पर श्रद्धा से भ्रष्टकभी भव पार नही कर सकता है ।।

मलयगिरि चंदन अर्पित कर भव का आतप हरण करूँ ।
सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर मै भी मोक्ष मार्ग को ग्रहण करूँ ।।
जिन तीर्थकर के बतलाये रत्नत्रय को वरण करूँ ।
गर्भ जन्म तप ज्ञान मोक्ष पाचो कल्याणक नमन करूँ ।।२।।

ॐ ह्रीं श्रीतीर्थंकर पचकल्याणकेभ्यो ससारतापविनाशनाय चन्दन नि ।

अक्षत से अक्षत पद पाऊँभव सागर दुख हरण करूँ ।
सम्यक् चारित्र के प्रभाव से मोक्ष मार्ग को ग्रहण करूँ।। जिन.।।३।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर पचकल्याणकेभ्यो अक्षयपद प्राप्ताय अक्षत नि ।

सुन्दर पुष्प सुगन्धित लाकर काम शत्रु मद हरण करूँ ।
सम्यक् तप की महाशक्ति से मोक्षमार्ग को ग्रहण करूँ ।।जिन.।।४।।

ॐ ह्रीं श्री जिनेन्द्र पचकल्याणकेभ्यो कामबाणविध्वसनाय पुष्प नि ।

शुभ नैवेद्य भेंटकर स्वामी क्षुधा व्याधि को हरण करूँ ।
शुद्ध ध्यान निज के प्रताप से मोक्ष मार्ग को ग्रहण करूँ ।।जिन.।।५।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर पचकल्याणकेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य नि ।

तमका नाशक दीप जलाकर मोह तिमिर को हरण करूँ ।
निज अंतर आलोकित करके मोक्ष मार्ग को ग्रहण करूँ ।।जिन.।।६।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर पचकल्याणकेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीप नि ।

ध्यान अग्नि में धूप डालकर अष्ट कर्म को हरण करूँ।
शुक्ल ध्यान की प्राप्ति हेतु मैं मोक्षमार्ग को ग्रहण करूँ ।।जिन.।।७।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर पचकल्याणकेभ्यो अष्टकर्मविध्वसनाय धूप नि ।

शुद्ध भाव फल लेकर स्वामी पाप पुण्य को हरण करूँ ।
परम मोक्षपद पाने को मै मोक्ष मार्ग को ग्रहण करूँ ।।जिन ।।८।।

ॐ ह्रीं श्री जिनेन्द्र पचकल्याणकेभ्यो मोक्षफलप्राप्ताय फल नि ।

वसु विधि अर्घ चढाकर मै अष्टम वसुधा को वरण करूँ ।
निज अनर्घ पद प्राप्ति हेतु मै मोक्षमार्ग को ग्रहण करूँ ।।जिन.।।९।।

ॐ ह्रीं श्री जिनेन्द्र पचकल्याणकेभ्यो अनर्घपद प्राप्ताय अर्घ्य नि ।

चौरासी के चक्कर से बचना है तो निज ध्यान करो।
नव तत्वो की श्रद्धापूर्वक स्वपर भेद विज्ञान करो।।

१-श्री गर्भ कल्याणकअर्घ

श्री जिन गर्भ कल्याण की महिमा अपरम्पार।
रत्नों की बौछार हो घर घर मंगलचार।।
गर्भ पूर्व छह मास जन्म तक नित नूतन मंगल होते।
नव बारह योजन नगरी रच इन्द्र महा हर्षित होते।।
गर्भ दिवस जिन माता को दिखते है सोलह स्वप्न महान।
बैल, सिह, माला, लक्ष्मी, गज, रवि, शशि, सिहासन, छविमान।।
मीन, युगल, दोकलश, सरोवर, सुरविमान, नागेन्द्र, विमान।
रत्न राशि, निर्धूमअग्नि सागर लहराता अतुल महान।।
स्वप्न फलों को सुनकर हर्षित, होता है अनुपम आनन्द।
धन्य धर्म कल्याण देवियाँ सेवा करती है सानन्द।।१।।
ॐ ह्री श्री तीर्थकर गर्भ कल्याणकेभ्यो अर्घ्य नि स्वाहा।

२-श्री जन्म कल्याणकअर्घ

श्री जिन जन्म कल्याण की महिमा अपरम्पार।
रत्नों की बौछार हो घर घर मंगलचार।।
जन्म समय तीनों लोकों में होता है आनन्द अपार।
सभी जीव अन्तर्मुहूर्त को पाते अति साता सुखकार।।
इन्द्रशची ऐरावत पर चढ धूम मचाते आते हैं।
जिन प्रभु का अभिषेक मेरु पर्वत के शिखर रचाते हैं।।
क्षीरोदधि से एक सहस्त्र अरु अष्ट कलश सुर भरते है।
स्वर्ण कलश शुभ्र इन्द्रभाव से प्रभु मस्तक पर करते हैं।।
मात पिता को सौंप इन्द्र करता है नाटक नृत्य महान।
परम जन्म कल्याण महोत्सव पर होता है जय जयगान।।२।।
ॐ ह्रीं श्री तीर्थकर जन्मकल्याणकेभ्यो अर्घ्य नि स्वाहा।

३-श्री तप कल्याणकअर्घ

श्री जिन तप कल्याण की महिमा अपरम्पार।
रत्नों की बौछार हो घर घर मगलचार।।

भेदज्ञान के बिना न मिलता मिथ्या भ्रम का अत रे।
भेदज्ञान से सिद्ध हुए है जीव अनतानत रे ॥

कुछ निमित्त पा जब प्रभु के मन मे आता वैराग्य अपार।
भव्य भावना द्वादश भाते तजते राजपाट संसार।
लौकान्तिक ब्रह्मर्षि एक भव अवतारी होते पुलकित।
प्रभु वैराग्य सुदृढ करने को कहते धन्य धन्य हर्षित ॥
इन्द्रादिक प्रभु को शिविका पर ले जाते बाहर वन में।
महाव्रती हो केश लोंचकर लय होते निज चितन में ॥
इन केशों को इन्द्र प्रवाहित क्षीरोदधि मे करता है।
तप कल्याण महोत्सव तप की विमल भावना भरता है ॥३॥

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर तपकल्याणकेभ्यो अर्घ्यं नि स्वाहा।

४-श्री ज्ञान कल्याणकअर्घ

परम ज्ञान कल्याण की महिमा अपरम्पार।
स्वपर प्रकाशक आत्म में झलक रहा ससार ॥

क्षपक श्रेणी चढ शुक्ल ध्यान से गुणस्थान बारहवॉ पा।
चार घातिया कर्म नाशकर गुणस्थान तेरहवॉं पा ॥
केवल ज्ञान प्रकट होते ही होती परमौदारिक देह।
अष्टादश दोषो से विरहित छयालीस गुण मडित नेह ॥
समवशरण की रचना होती होते अतिशय देवोपम।
शत इन्द्रो के द्वारा वदित प्रभु की छवि अति सुन्दरतम ॥
दिव्य ध्वनि खिरती है सब जीवों का होता है कल्याण।
परम ज्ञान कल्याण महोत्सव पर जिन प्रभु का ही यश गान ॥४॥

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर ज्ञानकल्याणकेभ्यो अर्घ्यं नि स्वाहा।

५-श्री मोक्ष कल्याणकअर्घ

परममोक्षकल्याण की महिमा अपरम्पार।
अष्टकर्म को नाश कर नाथ हुए भवपार ॥

गुणस्थान चौदहवॉं पाकर योगो का निरोध करते।
अन्तिम शुक्ल ध्यान के द्वारा कर्म अघातिया भी हरते ॥
अ,इ,उ,ऋ,लृ उच्चारण मे लगता है जितना काल।

निज मे जागरुक रह पच प्रमादो पर तुम जय पाओ।
अप्रमत्त बन निज वैभव से सहज पूर्णता को लाओ ॥

तीन लोक के शीश विराजित ही जाते है प्रभु तत्काल ॥
तन कपूर वत उड जाता है नख अरु केश शेष रहते।
मायामयी शरीर देव रच अन्तिम क्रिया अग्नि दहते।
मंगल गीत नृत्य वाद्यो की ध्वनि से होता हर्ष अपार।
भव्य मोक्ष कल्याण मनाते सब जीवों को मंगलकार ॥५॥
ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर मोक्षकल्याणकेभ्यो अर्घ्यं नि स्वाहा।

जयमाला

जिनवर पंच कल्याणक की महिमा अगम अपार।
गर्भ जन्म तप ज्ञान सह महामोक्ष शिवकार ॥१॥
वृषभादिक चौबीस जिनेश्वर के गल कल्याण महान।
गर्भ जन्म तप ज्ञान मोक्ष पाचो कल्याणक महिमावान ॥२॥
श्री पचकल्याणक पूजन करके निज वैभव पाऊँ।
सोलहकारण भव्य भावना मै भी हे जिनवर भाऊँ॥३॥
जिनध्वनि सुनकर मेरे मन मे रहा नही प्रभु भय का लेश।
पूर्ण शुद्ध ज्ञायक स्वरुप मय एक मात्र है उज्जवल वेश ॥४॥
सयोगी भावो के कारण भटक रहा भव सागर मे।
जिन प्रभु का उपदेश सुना पर झिला नही निज सागर में ॥५॥
अवसर आज अपूर्व मिल गया प्रभु चरणो की पूजन का।
सम्यकदर्शन आज मिला है फल पाया नर जीवन का ॥६॥
हे प्रभु मुझे मार्ग दर्शन दो अब मै आगे बढ जाऊँ।
अणुव्रत धार महाव्रत धारूँ गुणस्थान भी चढ जाऊँ ॥७॥
परम पचकल्याण विभूषित जिन प्रभु की महिमा गाऊँ।
घाति अघाति कर्म सब क्षयकर शाश्वत सिद्ध स्वपद पाऊँ ॥८॥
ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर गर्भ जन्म, तप ज्ञान, मोक्ष पचकल्याणकेभ्यो पूर्णार्घ्यं नि।

तीर्थंकर जिन देव के पूज्य पच कल्याण।
भाव सहित जो पूजते पाते शाति महान ॥

इत्याशीर्वाद

जाप्यमन्त्र ॐ ह्री श्री जिन पचकल्याणकेभ्यो नम।

卐

जो निवृत्ति की परम भक्ति मे रहते है तल्लीन सदा।
सिद्ध वधू के दिव्य मुकुट पर होते है आसीन सदा।।

श्री णमोकारमंत्र पूजन

ॐ णमो अरिहंताणं जप अरिहंतो का ध्यान करूँ।
ॐ णमो सिद्धाणं जप कर सिद्धों का गुणगान करूँ।।
ॐ णमो आयरियाणं जप आचार्यो को नमन करूँ।
ॐ णमो उवज्झायाणं जप उपाध्याय को नमन करूँ।।
णमो लोए सव्वसाहूणं जप सर्व साधुओ को वन्दन।
णमोकार का महा मन्त्र जप मिथ्यातम को करूँ वमन।।
ऐसो पंच णमोयारो जप सर्व पाप अवसान करूँ।
सर्व मंगलो में पहिला मंगल पढ मगल गान करूँ।।
णमोकार का मन्त्र जपूं मैं णमोकार का ध्यान करूँ।
णमोकार की महाशक्ति से निज आतम कल्याण करूँ।।

ॐ ह्रीं श्री पचनमस्कारमन्त्र अत्र अवतर अवतर सवौषट् ॐ ह्रीं श्री पच नमस्कार मन्त्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ ॐ ह्रीं श्री पच नमस्कार मन्त्र अत्र अत्र मम सन्निहिता भवभव वषट्।

ज्ञानावरणी कर्मनाश हित मिथ्यातम का करूँ अभाव।
जन्म मरण दुख क्षयकर डालूँ प्राप्तकरूँ निज शुद्धस्वभाव।।
णमोकार का मन्त्र जपूँ मैं णमोकार का ध्यान करूँ।
णमोकार की महाशक्ति से नाथ आत्म कल्याण करूँ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री पचनमस्कार मत्राय ज्ञानावरणी कर्मविनाशनाय जल नि।

दर्शनआवरणी क्षय करने चिर अविरति का करूँ अभाव।
यह ससारताप क्षय करने प्राप्त करूँ निज शुद्ध स्वभाव।।णमो.।।२।।

ॐ ह्रीं श्री पचनमस्कार मत्राय ज्ञानावरणीकर्मविनाशनाय चन्दन नि।

वेदनीय की पीडा हरने कर लूँ पच प्रमाद अभाव।
अक्षय पद पाने को स्वामी प्राप्त करूँ निजशुद्ध स्वभाव।।णमो.।।३।।

ॐ ह्रीं श्री पचनमस्कार मत्राय ज्ञानावरणीकर्मविनाशनाय अक्षत नि।

मोहनीय का दर्प कुचलदूँ करलूँ पूर्ण कषाय अभाव।
कामबाण की व्याधि मिटाऊँ प्राप्त करूँ निज शुद्ध स्वभाव।।णमो.।।४।।

ॐ ह्रीं श्री पचनमस्कार मत्राय ज्ञानावरणीकर्मविनाशनाय पुष्प नि।

आयु कर्म के सर्वनाश हित शीघ्र करूँ त्रय रोग अभाव।
क्षुधा व्याधि का नाश करूँ मैं प्राप्त करूँ निज शुद्धस्वभाव ॥
णमोकार का मन्त्र जपूँ मै णमोकार का ध्यान करूँ।
णमोकार की महाशक्ति से नाथ आत्म कल्याण करूँ ॥५॥
ॐ ह्रीं श्री पचनमस्कार मत्राय आय कर्मविनाशनाय नैवेद्य नि ।
नाम कर्म का मूल मिटादूँ नष्ट करूँ मैं सब विभाव।
भ्रम अज्ञान विनाश करूँ मैं प्राप्त करूँ निज शुद्ध स्वभाव ॥णमो.॥६॥
ॐ ह्रीं श्री पचनमस्कार मत्राय नाम कर्मविनाशनाय दीप नि ।
गोत्रकर्म को दग्ध करूँ मैं कर्म प्रकृति सब करूँ अभाव।
अष्टकर्म विध्वंस करूँ मै प्राप्त करूँ निज शुद्ध स्वभाव ॥णमो.॥७॥
ॐ ह्रीं श्री पचनमस्कार मत्राय गोत्र कर्मविनाशनाय धूप नि ।
अन्तराय मूलोच्छेद कर सर्व बध का करूँ अभाव।
परममोक्ष फल पाऊँ स्वामी प्राप्त करूँ निज शुद्धस्वभाव ॥णमो.॥८॥
ॐ ह्रीं श्री पचजमस्कार मत्राय अन्तराय कर्मविनाशनाय फल नि ।
परमभेद विज्ञान प्राप्त कर करलूँ मैं संसार अभाव।
पद अनर्घ पाने को स्वामी प्राप्त करूँ निज शुद्ध स्वभाव ॥णमो.॥९॥
ॐ ह्रीं श्री पचनमस्कार मत्राय अष्ट कर्मविनाशनाय अर्घ्यं नि ।

जयमाला

णमोकार जिन मत्र का जाप करूँ दिन रात।
पाप पुण्य को नाश कर पाऊँ मोह प्रभात ॥

छयालीस गुणधारी स्वामी नमस्कार अरिहतो को।
अष्ट स्वगुणधारी अनन्तगुण मंडित वन्दू सिद्धो को ॥१॥
है छत्तीस गुणो से भूषित नमस्कार आचार्यो को।
है पच्चीस गुणो से शोभित नमस्कार उपाध्यायों को ॥२॥
अट्ठाईस मूल गुणधारी नमस्कार सब मुनियों को।
ॐ शब्द में गर्भित पाँचो परमेष्टी प्रभु गुणियों को ॥३॥
सर्व मगलों में सर्वोत्तम सर्वश्रेष्ठ मंगलदाता।
ह्री शब्द मे गर्भित चौबीसों तीर्थंकर विख्याता ॥४॥

निज स्वरुप मे थिर होना ही है सम्यक् चारित्र प्रधान।
परम ज्योति आनद पूर्णत है सम्यक् चारित्र महान॥

णमोकार पैतीस अक्षर का मंत्र पवित्र ध्यान कर लूँ ।
यह नवकार मंत्र अडसठ अक्षर से युक्त ज्ञान कर लूँ॥५॥
''अर्हत् सिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधु नम'' भज लूँ।
सोलह अक्षर का यह पावन मंत्र जपूँ दुष्कृत तज लूँ॥६॥
छह अक्षर का मत्र जपू ''अरहंत सिद्ध '' को नमन करूँ।
''अ सि आ उ सा'' पंचाक्षर का मंत्र जपूँ अघशमन करूँ॥७॥
अक्षर चार मंत्र जप लूं ''अरहंत''देव का ध्यान करूँ।
''अर्हम्'' अक्षर तीन, मत्र जप स्वपर भेद विज्ञान करूँ॥८॥
दो अक्षर का ''सिद्ध'' मंत्र जप सर्व सिद्धिया प्रकट करूँ।
अक्षर एक ''ॐ'' ही जपकर सब पापो को विघट करूँ॥९॥
सप्ताक्षर का मत्र ''णमो अरहताणं'' का मै जाप करूँ।
छह अक्षर का मत्र ''णमो सिद्धाणं'' जप भवताप हरूँ॥१०॥
सप्ताक्षर का मंत्र ''णमो आइरियाण'' जप हर्षाऊँ।
सप्ताक्षर का ''णमो उवज्झायाण'' जप कर मुस्काऊँ॥११॥
नौ अक्षर का मंत्र ''णमो लोए सव्वसाहूण'' ध्याऊँ।
''ऐसो पच णमोयारो'' जप सर्व पाप हर सुख पाऊँ।१२॥
नव पद या नवकार पॉच पद का मै णमोकार ध्याऊँ।
एक शतक सत्ताईस अक्षर का चत्तारि पाठ गाऊँ॥१३॥
''चत्तारि मंगलम्'' श्रेष्ठ मंगल है जग मे परम प्रधान।
''अरिहता मगलम्'' पाठ कर गाऊँ निज आतम के गान॥१४॥
''सिद्धामगलम्'' ''साहू मगलम्'' का मैं भाव हृदय भर लूँ।
''केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलम्'' स्वधर्म प्राप्त करलूँ॥१५॥
''चत्तारि लोगोत्तमा'' ही सर्वोत्तम है परम शरण।
''अरिहता लोगोत्तमा'' ही से होगा भव कष्ट हरण॥१६॥
''सिद्धा लोगोत्तमा'' सु ''साहू लोगोत्तमा'' परम पावन।
''केवलि पण्णतो धम्मो लोगोत्तमा'' मोक्ष साधन॥१७॥
''चत्तारि शरण पव्वज्जामि'' का गूंजे जय जय गान।
''अरिहतेशरण पव्वज्जामि'' का हो प्रभु लक्ष्य महान॥१८॥

जीव स्वय ही कर्म बाधता कर्म स्वय फल देता है।
जीव स्वय पुरुषार्थ शक्ति से कर्म बध हर लेता है ॥

''सिद्धेशरणं पव्वज्जामि'' मोक्ष सिद्धि को मैं पाऊँ।
''साहूशरणं पव्वज्जामि'' शुद्ध भावना ही भाऊँ ॥१९॥
''केवलि पण्णत्तो धम्मो शरणं पव्वज्जामि'' है ध्येय।
महामोक्ष मंगल शिवदाता पाँचों परमेष्ठी प्रभु श्रेय ॥२०॥
महामन्त्र निःकाक्षित होकर शुद्ध भाव से नित ध्याऊँ।
पंच परम परमेष्ठी का सम्यक् स्वरूप उर में लाऊँ ॥२१॥
णमोकार का मन्त्र जपू मैं णमोकार का ध्यान करूँ।
महामन्त्र की महाशक्ति पा नाथ आत्म कल्याण करूँ ॥२२॥
अर्हं अर्ह अर्ह जपकर निज शुद्धातम करलूँ भान।
नम सर्व सिद्धेभ्य- जपकर मोक्षमार्ग पर करूँ प्रयाण ॥२३॥

ॐ ह्रीं श्री पचनमस्कारमत्राय अर्घ्यं नि स्वाहा।

णमोकार के मन्त्र की महिमा अगम अपार।
भाव सहित जो ध्यावते हो जाते भव पार ॥

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्रीं श्री णमो अरहताण, णमो सिद्धाण, णमो आइरियाण
णमो उवज्झायाण णमो लोएसव्वसाहूण।

卐

श्री आदिनाथ भरत बाहुबली जिन पूजन

स्थापना

आदिनाथ प्रभु भरत बाहुबलि स्वामी को सादर वन्दन।
पिता पुत्र शिवपुरगामी तीनो का सविनय अभिनन्दन ॥
शुद्धज्ञान का आश्रय लेकर निजस्वभाव को किया नमन;
केवलज्ञान प्रगट कर पाया सहज भाव से मुक्ति सदन ॥
निज चैतन्य राज को ध्याया पापों का परिहार किया।
निज स्वभाव से मुक्त हुए प्रभु सबने जयजयकार किया ॥
आदिनाथ प्रभु भरत बाहुबलि की पूजन कर हर्षाऊँ।
निज स्वरूप की प्राप्ति करूँ मैं नित नूतन मंगल गाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ भरत बाहुबलि जिनेन्द्र अत्र अवतर सवौषट् ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ भरत बाहुबलि जिनेन्द्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ भरत बाहुबलिजिनेन्द्र अत्र मम हितो भवभव वषट्।

पुण्य मार्ग तो सदा बहिर्मुख धर्म मार्ग अंतर्मुख है।
पुण्यो का फल जगत भ्रमण दुख और धर्म फल शिव सुख है ।।

भेद ज्ञान की प्राप्ति हेतु मैं करूँ आत्मा का निर्णय ।
सम्यक जल की भेट चढाऊँ हो जाऊँ मैं अमर अभय ।।
आदिनाथ प्रभु भरत बाहुबलि की पूजन कर हर्षाऊँ ।
निज स्वरूप की प्राप्ति करूँ मैं नित नूतन मंगल गाऊँ ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ भरत बाहुबलि जिनेन्द्र जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जल नि ।

निज स्वभाव रस प्राप्ति हेतु मैं भेदज्ञान का लूँ आधार ।
सम्यक् चन्दन भेट चढाऊँ भव आताप सकल निर वार ।।आदिनाथ ।।२।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ भरत बाहुबलि जिनेन्द्राय ससारताप विनाशनाय चढन नि ।

स्वपर विवेक जगा अन्तर मे अक्षय पद को प्राप्त करूँ ।
सम्यक अक्षत भेंट चढाऊँ वेदनीय दुखत्वरित हरूँ ।।आदिनाथ।।३।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ भरत बाहुबलि जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्ताय अक्षत नि ।

कामभाव विध्वंस हेतु मै शील स्वभाव महान धरूँ ।
सम्यक पुष्प भेट कर स्वामी पर विभाव अवसान करूँ ।।आदिनाथ।।४।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ भरत बाहुबलि जिनेन्द्राय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि ।

क्षुधारहित मेरा स्वभाव है इसे नहीं जाना जिनराज ।
सम्यक चरु की भेट चढाऊँ पाऊँ स्वामी निजपद राज।।आदिनाथ।।५।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ भरत बाहुबलि जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय दीप नि ।

अष्टकर्म के बंधन में पड चारो गति मे भरमाया ।
सम्यक् धूप चढाऊँ इनके क्षय का अब अवसर आया।।आदिनाथ.।।७।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ भरत बाहुबलि जिनेन्द्राय आष्टकर्म दहनाय धूप नि ।

भवविषतरु फल खाए अब तक शाश्वत निज स्वभाव को भूल ।
सम्यक फल अर्पित करकेप्रभु हो जाऊ निज के अनुकूल ।।आदिनाथ।।८।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ भरत बाहुबलि जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्ताय फल नि ।

सम्यक अर्घ्य चढा कर स्वामी पद अनर्घ्य निश्चित पाऊँ ।
मेरी यही प्रार्थना है प्रभु फिर न लौट भव में आऊँ ।।आदिनाथ।।९।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ भरत बाहुबलि जिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्ताय अर्घ्य नि ।

सम्यक् दर्शन से विहीन है तो व्रत पालन में है कष्ट।
गज पर चढ़ ईंधन ढोने जैसा दुर्मति होता मति भ्रष्ट ॥

अर्घ्यावलि

आदिनाथ को नमन कर बन्दूँ भरत महेश ।
चरण बाहुबलि पूजकर वन्दूँ त्रय परमेश ॥
प्रथक प्रथक त्रय अर्घ्य विनय सहित अर्पण करूँ ।
सकल विकारीभावना नाशूँ शुद्ध स्वभाव से ॥

१- श्री आदिनाथ जी

ऋषभदेव को नमन करूँ मै नाभिरायनृप के नंदन ।
मरु देवी के राजदुलारे बारंबार तुमको वन्दन ॥१॥
तुम सर्वार्थ सिद्धि से आए नगर अयोध्या जन्म लिया ।
इन्द्रादिक सुरनर सबने मिल जन्मोत्सव सानंद किया ॥२॥
नंदा और सुनंदा से परिणय कर लौकिक सुख पाया ।
नंदा के सौ पुत्र सुनंदा ने सुत बाहुबली जाया ॥३॥
नीलान्जना मरण लख तुमने वन में जा वैराग्य लिया ।
ज्येष्ठ पुत्र थे भरत जिन्हें प्रभु तुमने राज्य प्रदान किया ॥४॥
औपाधिक सारे विकार हर कर्म घाति अवसान किया ।
एक सहस्त्र वर्ष तप करके तुमने केवलज्ञान लिया ॥५॥
भरत क्षेत्र के भव्य प्राणियों को निश्चय संदेश दिया ।
खुला मोक्ष पथ जो कि बन्द था आत्म तत्व उपदेश दिया ॥६॥
अखिल विश्व मे जल थल नभ में प्रभु का जय जयकार हुआ ।
कोटि कोटि जीवों का प्रभु के द्वारा परमोपकार हुआ ॥७॥
मुक्त हुए कैलाश शिखर से प्रतिमा योग किया धारण ।
अष्टकर्म हर शिवपुर पहुंचे जग के हुए तरणतारण ॥८॥
बार बार वन्दन करता हूँ बार बार मैं करूँ नमन ।
बार बार वन्दन करता हूँ तुमको आदिनाथ भगवन ॥९॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि ।

ज्ञानानन्द स्वरूप स्वरस ही पीने का करना पुरुषार्थ।
मुनिपद पाने का उद्यम करता है सफल सकल परमार्थ ॥

२- श्री भरत जी

भरत चक्रवर्ती की महिमा तीन लोक मे है न्यारी।
छह खण्डों के स्वामी होकर भी प्रभु रहे निर्विकारी ॥१॥
दर्श मोह तो जीत चुके थे पूर्व भवो में ही कर यत्न।
पर चरित्र मोह जय करने का ही किया महान प्रयत्न ॥२॥
अनुज बाहुबलि से हारे पर मन मे आया नहीं कुभाव।
वस्तु स्वरूप विचारा प्रभु ने मेरा तो है ज्ञान स्वभाव ॥३॥
नीरक्षीर का था विवेक जल कमल भांति वे रहते थे।
तेल तोय सम प्रथक प्रथक वे पर भावों से रहते थे ॥४॥
रागद्वेष को जय करने का सदा यत्न वे करते थे।
सम भावो से हर्ष विषादो को वे पल मे हरते थे ॥५॥
लाख तिरासी पूर्व आयु तक भोगे भोग ध्रौव्यविशाल।
किन्तु लक्ष्य मे शुद्ध आत्मा थी तो शाश्वत अटूट त्रिकाल ॥६॥
इसीलिए तो भरत चक्रवर्ती के मन मे था उत्साह।
पर मे रहकर पर से भिन्न रहे ऐसा था ज्ञान अथाह ॥७॥
पूर्व भवो मे भेद ज्ञान की कला रही थी उनके पास।
ज्ञाता दृष्टा बनकर भोगे भोग रहे स्वभाव के पास ॥८॥
निज स्वभाव मे आते आते ही वैराग्य महान हुआ।
ज्ञानपयो निधि रस पीते पीते ही केवल ज्ञान हुआ ॥९॥
यह सब कुछ अन्तमुहुर्त मे हुआ भरत जी को तत्काल।
आत्मज्ञान वैभव का महिमा दिया राग सब त्वरित निकाल ॥१०॥
उनकी ऐसी उत्तम परिणति के पीछे था ज्ञान महान।
इसीलिए अन्तमुहुर्त मे किए घातिया अरि अवसान ॥११॥
दे उपदेश भव्य जीवो को किया सर्व जग का कल्याण।
धन्य धन्य हे भरत महाप्रभु इन्द्रादिक गाते गुणगान ॥१२॥
निजानद रसलीन हुए फिर शेष कर्म भी कर अवसान।
पहुचे सिद्ध शिला पर स्वामी पाया सिद्ध स्वपद निर्वाण ॥१३॥

भव का पार बढ़ाने वाला निश्चय बिन है यह व्यवहार।
कितना भी सयम अंगीकृत कर ले होगा कभी न पार ॥

यही कला यदि आ जाए प्रभु इस जीवन में अब मेरे।
फिर न लगाना मुझे पडेगा इस जग के अनन्त फेरे ॥१४॥
ॐ ह्रीं श्री बाहुबली जिनेन्द्राय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि ।

३- श्री बाहुबली जी

बाहुबलि प्रभु के चरणों में नमन करूँ मैं बार बार।
राज्य संपदा को तज तप का अवसर पाया भली प्रकार ॥१॥
छह खण्डो के विजयी भरत चक्रवर्ती जीते क्षण में।
राज्य अखंड साधना करने जूझे कर्म रसे रण में ॥२॥
घोर तपस्या का व्रत लेकर निश्चय संयम उर में धार।
एक वर्ष तप करके तुमने किया निर्जरा का व्यापार ॥३॥
पहिलेघाति कर्म जय कर के केवलज्ञान लब्धि पाई।
फिर अघातिया जीते प्रभु ने मुक्तिरमा भी हर्षाई ॥४॥
पोदनपुर से मुक्त हुए प्रभु पाया शाश्वत पद निर्वाण।
इन्द्रादिक देवो ने आकर गाए प्रभु के जय जय गान ॥५॥
हे प्रभु मेरे सकट हरलो मै अनादि से हूँ दुख युक्त।
निज स्वभाव साधन की विधि दो हो जाऊँभव दुख से मुक्त ॥६॥
ॐ ह्रीं श्री बाहुबली जिनेन्द्राय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्य नि ।

जयमाला

जिन गुण वर्णन कर सकूँ शक्ति नही भगवान।
जिन गुण संपत्ति प्राप्ति हित करूँ स्वय का ध्यान ॥

छदताटक

ऋषभदेव जिनवर को वन्दूँ बार बार मै हर्षाकर।
ज्ञानभाव की प्राप्ति करूँ मै भेद ज्ञान रस वर्षा कर ॥१॥
भरत मोक्ष गामी को वन्दूँ पूजन करके अष्ट प्रकार।
भाव वन्दना द्रव्य वन्दना दोनों से कर लूँ सत्कार ॥२॥
श्री बाहुबलि को मैं वन्दू पर भावों का करूँ विनाश।
अथक अडिग तप करूँ निरतर ऐसा दो प्रभु ज्ञान प्रकाश ॥३॥

मुनिपद को निर्ग्रन्थ भावना का प्रतीक है शिव सुखकार।
अतरग मे तथा बाह्य मे नहीं परिग्रह का कुछ मार ॥

भव तन भोगों से विरक्त हो चलूँ आपके पथ पर नाथ।
मै अनाथ भी एक दिवस बन जाऊँगा तुव कृपा सनाथ ॥४॥
दृष्टि बदल जाते ही दिशा बदल जाती है सहज स्वयम्।
हो जाता पुरुषार्थ सफल मिट जाता है मिथ्या भ्रमतम ॥५॥
जब तक दृष्टि नहीं बदलेगी तब तक ही भव दुख होगा।
दृष्टि बदल जाएगी तो फिर अन्तर मे शिव सुख होगा ॥६॥
अब तक तो पर्याय दृष्टि रह यह ससार बढाया है।
द्रव्य दृष्टि से सदा दूर यह बंध मार्ग अपनाया है ॥७॥
अब तो द्रव्य दृष्टि बन हरलूँ यह अनादि यह मिथ्यातम।
निज स्वभाव साधन से पाऊँ अविचल सिद्ध स्वपद क्रमक्रम ॥८॥
नाथ आपकी भव्य मूर्ति के दर्शन से होकर पावन।
दो आशीर्वाद हे स्वामी पाऊँ निज स्वभाव साधन ॥९॥
जप तप व्रत सयम का वैभव मुझे प्राप्त हो जाए देव।
सम्यक दर्शन ज्ञान चरितमय पाऊँ मुक्ति मार्ग स्वयमेव ॥१०॥
निज चैतन्य राज पद पाऊँ ऐसी कृपा कोर कर दो।
सम्यक दर्शन प्रगटाऊँ मै ऐसी भव्य भोर कर दो ॥११॥
निश्चय संयम के प्रभाव से अष्ट कर्म अवसान करूँ।
शुक्ल ध्यान का संबल पाकर महामोक्ष निर्वाण वरूँ ॥१२॥
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ भरत बाहुबलि जिनेन्द्राय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि।
ऋषभ भरत श्री बाहुबलि चरण कमल उर धार।
मनवच तन जो पूजते हो जाते भव पार ॥

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ भरत बाहुबली जिनेन्द्राय नम।

श्री पंच बालयति जिन पूजन

जय प्रभु वासुपूज्य तीर्थंकर मल्लिनाथ प्रभु नेमि जिनेश।
जय श्री पार्श्वनाथ परमेश्वर जय जय महावीर योगेश ॥
राग द्वेष हर मोह क्षोभहर मंगलमय हे जिन तीर्थेश।
पंच बालयति परम पूज्य प्रभु बाल ब्रह्मचारी ब्रह्मेश ॥

ऐसे मुनियो को दर्शन कर हृदय कमल खिल जाता है।
जो अनादि से कभी न पाया वह शिव पथ मिल जाता है ॥

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर पच बालयति जिनेन्द्र अत्र अवतर-अवतर सवौषट् आह्वानन । ॐ ह्री श्री वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर पच बालयति जिनेन्द्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ स्थापन। ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर पच बालयति जिनेन्द्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

इस जल में इतनी शक्ति नहीं जो अंतरमल को धो डाले।
शुद्धातम का जो अनुभव ले वह पूर्ण शुद्धता को पा ले ॥
वासुपूज्य श्री मल्लि नेमि प्रभु पारस महावीर भगवान।
पाप ताप सताप विनाशक पंच बालयति पूज्य महान ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री पच बालयति जिनेन्द्रभ्यो जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जल नि ।

चन्दन में इतनी शक्ति नहीं जो अन्तर ज्वाला शान्त करे।
शुद्धातम का जो अनुभव ले वह भव की पीडा शान्त करे॥वासु.॥२॥

ॐ ह्रीं श्री पच बालयति जिनेन्द्रभ्यो भवताप विनाशनाय चन्दन नि ।

तन्दुल में इतनी शक्ति नही जो निज अखण्ड पद प्रगटाये।
शुद्धातम का जो अनुभव ले वह निश्चित अक्षय पद पाये ॥वासु.॥३॥

ॐ ह्रीं श्री पच बालयति जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्ताय अक्षत नि ।

पुष्पों में इतनी शक्ति नही जो शील स्वभाव प्रकाश करे।
शुद्धातम का जो अनुभव ले वह काम भाव नाश करे ॥वासु.॥४॥

ॐ ह्रीं श्री पच बालयति जिनेन्द्राय कामबाण विध्वन्सनाय पुष्प नि ।

ऐसा नैवेद्य नहीं जग में जो तृष्णा व्याधि मिटा डाले।
शुद्धातम का जो अनुभव ले तो क्षुधा अनादि हटा डाले ॥वासु.॥५॥

ॐ ह्रीं श्री पच बालयति जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि ।

ऐसा दीपक न कहीं जग में जो अन्तर के तम को हर ले।
शुद्धातम का जो अनुभव ले वह अन्तर आलोकित कर ले ॥वासु.॥६॥

ॐ ह्रीं श्री पच बालयति जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि ।

जड रूप धूप मे शक्ति नही जो कर्म शक्ति का हरण करे।
शुद्धातम का जो अनुभव ले वह निज स्वरूप का वरण करे॥वासु.॥७॥

ॐ ह्रीं श्री पच बालयति जिनेन्द्राय अष्ट कर्म दहनाय धूप नि ।

पच महाव्रत पच समिति त्रय गुप्ति सहित विचरण करते।
अटाईस मूल गुण पूरे निरतिचार धारण करते ॥

तरु फल में ऐसी शक्ति नहीं जो अन्तर पूर्ण शान्ति छाये।
शुद्धातम का जो अनुभव ले वह महामोक्ष फल को पाये ॥वासु.॥८॥

ॐ ह्रीं श्री पच बालयति जिनेन्द्राय मोक्ष फल प्राप्ताय फल नि।

यह अर्घ्य न ऐसा शक्तिवान् जो सिद्ध लोक तक पहुँचाये।
शुद्धातम का जो अनुभव ले वह निज अनर्घ पद को पाये ॥वासु.॥९॥

ॐ ह्रीं श्री पच बालयति जिनेन्द्राय अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्य नि।

अर्घ्यावलि १-श्री वासुपूज्य स्वामी

चम्पापुर राजा वसुपूज्य सुमाता विजया के नन्दन।
पन्द्रह मास रतन बरसाये सुरपति ने माँ के ऑगन ॥१॥
दिक्कुमारियों ने सेवा कर माँ का किया मनोरजन।
सोलह स्वप्न लखे माता ने निद्रा मे सोते इक दिन ॥२॥
जन्म लिया तुमने कुमार वय में ही की दीक्षा धारण।
चार घातिया कर्म नाश कर केवलज्ञान लिया पावन ॥३॥
भादव शुक्ल चतुर्दशी को चम्पापुर से मुक्त हुए।
परम पूज्य प्रभु हर अघातिया, मुक्ति रमा से युक्त हुए ॥४॥
महिष चिह्न चरणो में शोभित वासुपूज्य को करूँ नमन।
शुद्ध आत्मा की प्रतीति कर मैं भी पाऊँ मुक्ति सदन ॥५॥

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय गर्भजन्मतपज्ञानमोक्ष कल्याण प्राप्ताय अर्घ्य नि।

२-श्री मल्लिनाथ स्वामी

मिथिलापुर नगरी के अधिपति कुम्भराज गृह जन्म लिया।
माता प्रभावती हर्षायीं देवों ने आनन्द किया ॥१॥
ऐरावत गज पर ले जाकर गिरि सुमेरु अभिषेक किया।
मात-पिता को सौंप इन्द्र ने हर्षित नाटक नृत्य किया ॥२॥
लघु वय में ही दीक्षा धारी पच मुष्टि कच-लोच किया।
छह दिन ही छद्मस्थ रहे फिर तुमने केवलज्ञान लिया ॥३॥
सवल कूट शिखर सम्मेदाचल पर जय जय गान हुआ।
फागुन शुक्ल पंचमी के दिन महा मोक्ष कल्याण हुआ ॥४॥

मूर्च्छा भाव नहीं है मुझ मे सर्व शल्य से हू नि शल्य।
आत्म भावना के अतिरिक्त नहीं है मुझमे कोई शल्य ॥

कलश चिह्न चरणों मे शोभित मल्लिनाथ को करूँ नमन।
मन, वच, तन प्रभु के गुण गाऊँ मै भी पाऊ सिद्ध सदन ॥५॥
ॐ ह्रीं श्री मल्लिनाथ जिनेन्द्राय गर्भजन्मतपज्ञानमोक्ष पच कल्याण प्राप्ताय अर्घ्यं नि ।

३-श्री नेमिनाथ स्वामी

नृपति समुद्र विजय हर्षाये शिव देवी उर धन्य किया।
नेमिनाथ तीर्थकर तुमने शौर्यपुरी में जन्म लिया ॥१॥
नगर द्वारिका से विवाह हित जूनागढ को किया प्रयाण।
पशुओ की करुणा पुकार सुन उर छाया वैराग्य महान ॥२॥
भव मन भोगो से विरक्त हो पच महाव्रत ग्रहण किया।
शीघ्र अनन्त चतुष्टय प्रगटा, पर विभाव सब हरण किया ॥३॥
ले कैवल्य मोक्ष सुख पाया, पाया शिवपद अविकारी।
शुभ आषाढ शुक्ल अष्टम को धन्य हो गई गिरनारी ॥४॥
शख चिह्न चरणो मे शोभित नेमिनाथ को करूँ नमन।
निज स्वभाव के साधन द्वारा मै भी पाऊँ मुक्ति सदन ॥५॥
ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय गर्भजन्मतपज्ञानमोक्ष पच कल्याण प्राप्ताय अर्घ्यं नि ।

४-श्री पार्श्वनाथ स्वामी

वाराणसी नगर अति सुन्दर अश्वसेन नृप के नन्दन।
माता वामादेवी के सुत पार्श्वनाथ प्रभु जग वन्दन ॥१॥
तुम कुमार वय मे ही दीक्षित होकर निज मे हुए मगन।
कमठ शत्रु कर सका न कुछ भी यदपि किया उपसर्ग सघन ॥२॥
केवलज्ञान प्राप्त होते ही रचा इन्द्र ने समवशरण।
दे उपदेश भव्यजीवो की मुक्ति वधू का किया वरण ॥३॥
श्रावण शुक्ल सप्तमी के दिन अष्ट कर्म का किया हनन।
कूट स्वर्णभद्र सम्मेद शिखर से पाया सिद्ध सदन ॥४॥
सर्प चिन्ह चरणो मे शोभित पार्श्वनाथ को करूँ नमन।
त्रैकालिक ज्ञायक स्वभाव से मै भी पाऊँ मोक्ष भवन ॥५॥
ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय गर्भजन्मतपज्ञानमोक्ष पच कल्याणक प्राप्ताय अर्घ्यं नि ।

जिनके मन मे अभिलाषा है होती उनको सिद्धि नहीं।
अभिलाषा वाले की होती शुद्ध भाव की बुद्धि नहीं ॥

५-श्री महावीर स्वामी

कुण्डलपुर वैशाली नृप सिद्धार्थ पुत्र श्री वीर जिनेश।
प्रिय कारिणी मात त्रिशला के उर से जन्मे महा महेश ॥१॥
अविवाहित रह राजपाट सब ठुकराया मुनिव्रत धारे।
द्वादश वर्ष तपस्या करके कर्म शिथिल सब कर डारे ॥२॥
केवल लब्धि प्रगट कर स्वामी जगती को उपदेश दिया।
तीस वर्ष तक कर विहार प्रभु मोक्ष मार्ग संदेश दिया ॥३॥
कार्तिक कृष्ण अमावस्या को अष्ट कर्म अवसान किया।
पावापुर के महोद्यान से सिद्ध स्वपद निर्वाण लिया ॥४॥
सिह चिन्ह चरणो मे शोभित वर्धमान को करूँ नमन।
ध्रुव चैतन्य स्वरुप लक्ष्य मे ले मै भी पाऊँ मुक्ति भवन ॥५॥

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय गर्भजन्मतज्ञानमोक्ष पच कल्याणक प्राप्ताय अर्घ्यं नि।

जयमाला

जय प्रभु वासुपूज्य जिन स्वामी मल्लिनाथ जय नेमि महान।
जय श्री पार्श्वनाथ प्रभु जिनवर जय जय महावीर भगवान ॥१॥
पर परिणति तज निज परिणति से चारो गति हर हुए महान।
पाँचों तीर्थकर प्रभु तुमने पाई पंचम गति निर्वाण ॥२॥
अब वैराग्य जगे मन मेरे भव भोगो मे रमूँ नही।
भाव शुभाशुभ के प्रपच में और अधिक अब थमूँ नहीं ॥३॥
भक्ति भाव से यही विनय है निज अटूट बल दो स्वामी।
चितामणि रत्नत्रय पाकर बन जाऊँ शिव पथ गामी ॥४॥
मैं पांचो समवाय प्राप्त कर नित पाचों स्वाध्याय करूँ।
पचम करण लब्धि को पाकर भेदज्ञान पुरुषार्थ करूँ ॥५॥
वर्ण पच रस पच गध दो, स्पर्श अष्ट मुझमे न कही।
पाच वर्गणा पुद्गल की पर्यायो से सबध नही ॥६॥
पचभेद मिथ्यात्व त्यागकर समकित अगीकार करूँ।
पच ताप तज एकदेश पाचो अणुव्रत स्वीकार करूँ ॥७॥

इच्छा से चिन्ता होती है चिन्ता से होता है क्लेश
मुझे न कोई भी चिन्ता है मुझमे चिन्ता कहीं न लेश ।।

पचेन्द्रिय के पंच विषय तज पंच प्रमाद विनाश करूँ ।
पच महाव्रत पच समितिधर पंचाचार प्रकाश करूँ ।।८।।
पच प्रकार भाव आश्रव का बंध नही होने पाए ।
पचोत्तर के वैभव का भी लोभ नही उर में आए ।।९।।
सयम पाँच प्रकार ग्रहण कर मै पाचो चारित्र धरूँ ।
पंचम यथाख्यात चारित पा कर्मघातिया नाश करूँ ।।१०।।
पचम भाव पारिणामिक से पाऊँ स्वामी पचम ज्ञान ।
पंच परावर्तन अभाव कर पाऊँ पचम गति भगवान ।।११।।
पच बालयति तुम चरणो मे यही विनय है बारम्बार ।
सादि अनत सिद्ध पद पाऊँ नित्य निरजन शिवसुखकार ।।१२।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य मल्लिनाथ नेमिनाथ पार्श्वनाथ महावीर पच बालयति जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं नि ।

पच बालयति प्रभु चरण भाव सहित उर धार ।
मन वच तन जो पूजते वे होते भव पार ।।

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र – ॐ ह्रीं श्री पच बालयति जिनेन्द्राय नम ।

卐

श्री शान्ति कुन्थु अरनाथ जिन पूजन

जय शान्तिनाथ हे शान्तिमूर्ति जय कुन्थुनाथ आनन्द रूप ।
जय अरहनाथ अरि कर्मजयी तीनो तीर्थंकर विश्वभूप ।।
तुम कामदेव अतिशय महान सम्राट चक्रवर्ती अनूप ।
भव भोग देह से हो विरक्त पाया निज सिद्ध स्वपद स्वरूप ।।

ॐ ह्रीं श्री शातिकुन्थु अरनाथ जिनेन्द्र अत्र अवतर अवतर सवौषट् । ॐ ह्रीं श्री शातिकुन्थु अरनाथ जिनेन्द्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ । ॐ ह्रीं श्री शातिकुन्थु अरनाथ जिनेन्द्र अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट् ।

पावन निर्मल नीर समुज्ज्वल श्री चरणो मे अर्पित है।
जन्म मरण नाशो हे स्वामी सादर हृदय समर्पित है।।
शान्ति कुन्थु अरनाथ जिनेश्वर तीर्थंकर मगलकारी ।
कामदेव सम्राट चक्रवर्ती पद त्यागी बलिहारी ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री शाति कुन्थु अरनाथ जिनेन्द्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जल नि ।

पर से प्रथग्भूत होने पर ज्ञान भावना जाती है।
निज स्वभाव से सजी साधना देख कलुषता भगती है।।

तन का ताप विनाशक चन्दन श्री चरणो मे अर्पित है।
भव आताप मिटाओ स्वामी सादर हृदय समर्पित है।।
शान्ति कुन्थु अरनाथ जिनेश्वर तीर्थकर मगलकारी।
कामदेव सम्राट चक्रवर्ती पद त्यागी बलिहारी ।।२।।

ॐ ह्री श्री शाति कुन्थु अरनाथ जिनेन्द्राय ससारताप विनाशनाय चदन नि ।

अक्षय तन्दुल पुज मनोहर श्री चरणों में अर्पित है।
अनुपम अक्षय निज पद दो प्रभु सादर हृदय समर्पित है। शान्ति।।३।।

ॐ ह्रीं श्री शाति कुन्थु अरनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षत नि ।

अतिशय सुन्दर भाव पुष्प शुभ श्री चरणो मे अर्पित है।
कामरोग विध्वस करो प्रभु सादर हृदय समर्पित है।।शान्ति।।४।।

ॐ ह्रीं श्री शाति कुन्थु अरनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि ।

मन भावन नैवेद्य सुहावन श्री चरणो में अर्पित है।
क्षुधा व्याधि नाशो हे स्वामी सादर हृदय समर्पित है।। शान्ति ।।५।।

ॐ ह्रीं श्री शाति कुन्थु अरनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि ।

अन्धकार नाशक जडदीपक श्री चरणो मे अर्पित है।
मोह तिमिर हरलो हे स्वामी सादर हृदय समर्पित है।। शान्ति ।।६।।

ॐ ह्रीं श्री शाति कुन्थु अरनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म विध्वशनाय धूप नि ।

पुण्य भाव का सारा शुभफल श्री चरणो में अर्पित है।
परम मोक्ष फल दो हे स्वामी सादर हृदय समर्पित है।। शान्ति।।८।।

ॐ ह्रीं श्री शाति कुन्थु अरनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्ताय फल नि ।

अष्ट द्रव्य का अर्घ अष्ट विधि श्री चरणो मे अर्पित है।
निज अनर्घ पद दो हे स्वामी सादर हृदय समर्पित है।। शान्ति।९।।

ॐ ह्रीं श्री शाति कुन्थु अरनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्य नि ।

१-श्री शान्तिनाथ तीर्थंकर

नगर हस्तिनापुर के अधिपति विश्वसेन नृप परम उदार।
माता ऐरा देवी के सुत शान्तिनाथ मगल दातार ।।१।।
कामदेव बारहवे पचम चक्री सोलहवे तीर्थेश।
भरत क्षेत्र को पूर्ण विजयकर स्वामी आप हुए चक्रेश ।।२।।

नभ में नाशवान बादल लख उर मे जागा ज्ञान विशेष।
भव भोगो से उदासीन हो ले वैराग्य हुये परमेश॥३॥
निज आत्मानुभूति के द्वारा वीतराग अर्हन्त हुए।
मुक्त हुए सम्मेद शिखर से परम सिद्ध भगवन्त हुए॥४॥

ॐ ह्रीं श्री शातिनाथ जिनेन्द्राय गर्भजन्मतपज्ञाननिर्वाण पचकल्याण प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति।

२-श्री कुन्थुनाथ तीर्थंकर

नगर हस्तिनापुर के राजा सूर्य सेन के प्रिय नन्दन।
राजदुलारे श्रीमती देवी रानी के सुत वन्दन॥१॥
कामदेव तेरहवे तीर्थंकर सतरहवे कुन्थु महान।
छठे चक्रवर्ती बन पाई षट खण्डो पर विजय प्रधान॥२॥
भौतिक वैभव त्याग मुनीश्वर बन स्वरूप मे लीन हुये।
भाव शुभाशुभ का अभाव कर शुक्ल ध्यान तल्लीन हुए॥३॥
ध्यान अग्नि से कर्म दग्ध कर केवलज्ञान स्वरूप हुए।
सिद्ध हुए सम्मेद शिखर से तीन लोक के भूप हुए॥४॥

ॐ ह्रीं श्री कुन्थुनाथ जिनेन्द्राय गर्भजन्मतपज्ञाननिर्वाण पचकल्याणप्राप्ताय अर्घ्यं नि।

३-श्री अरनाथ तीर्थंकर

नगर हस्तिनापुर के पति नृपराज सुदर्शन पिता महान।
माता मित्रा देवी की आखो के तारे हे भगवान॥१॥
कामदेव चौदहवे सप्तम चक्री श्री अरनाथ जिनेश।
अष्टादशम तीर्थंकर जिन परम पूज्य जिनराज महेश॥२॥
छहखंडों पर शासन करते करते जग अनित्य पाया।
भव तन भोगो से विरक्तिमय उर वैराग्य उमड आया॥३॥
पच महाव्रत धारण करके निज स्वभाव में हुए मगन।
पा कैवल्य श्री सम्मेद शिखर से पाया मुक्ति गगन॥४॥

ॐ ह्रीं श्री अरनाथ जिनेन्द्राय गर्भ जन्मतपज्ञाननिर्वाण पचकल्याण प्राप्ताय अर्घ्यं नि।

निज अनुभव अभ्यास अध्ययन से होता है ज्ञान यथार्थ।
पर का अध्यवसान दुख मयी चारो गति दुख मयी परार्थ ॥

जयमाला

शान्ति कुन्थु अरनाथ जिनेश्वर के चरणो मे नित वन्दन।
विमल ज्ञान आशीर्वाद को काट सकूं मै भव बन्धन ॥१॥
सम्यक् दर्शन ज्ञान चरितमय लिया पथ निर्ग्रन्थ महान।
सोलह वर्ष रहे छद्मस्थ अवस्था मे तीनों भगवान ॥२॥
परम तपस्वी परम संयमी मौनी महाव्रती निजराज।
निज स्वभाव के साधन द्वारा पाया तुमने निज पद राज ॥३॥
शुक्ल ध्यान के द्वारा स्वामी पाया तुमने केवलज्ञान।
दे उपदेश भव्य जीवो को किया सकल जग का कल्याण ॥४॥
मैं अनादि से दुखिया व्याकुल मेरे संकट दूर करो।
पाप ताप सताप लोभ भय मोह क्षोभ चकचूर करो ॥५॥
सम्यक् दर्शन प्राप्त करूँ मै निज परिणति मे रमण करूँ।
रत्नत्रय का अवलम्बन ले मोक्ष मार्ग का ग्रहण करूँ ॥६॥
वीतराग विज्ञान ज्ञान की महिमा उर मे छा जाए।
भेद ज्ञान हो निज आश्रय से शुद्ध आत्मा दर्शाए ॥७॥
यही विनय है यही भावना विषय कषाय अभाव करूँ।
तुम समान मुनि बन हे स्वामी निज चैतन्य स्वभाव वरूँ ॥८॥
ॐ ह्रीं श्री शाति कुन्थु अरनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि स्वाहा।
मृग अज, मीन चिन्ह चरणो में प्रभु प्रतिमा जो करे नमन।
जन्म जन्म के पातक क्षय हो मिट जाता भव दुख क्रन्दन ॥
रोग शोक दारिद्र आदि पापो का होता शीघ्र शमन।
भव समुद्र से पार उतरते जो नित करते प्रभु पूजन ॥

इत्याशीर्वाद

जाप्य मत्र - ॐ ही श्री शाति कुन्थु अरनाथ जिनेन्द्राय नम ।

श्री समवशरण पूजन

तीर्थकर प्रभु मोह क्षीणकर जव प्रगटाते केवलज्ञान।
इन्द्र आज्ञा से कुबेर रचना करता स्वर्गो से आन ॥

जन्म जरा मरणादि व्याधि से रहित आत्मा ही अद्वैत।
परम भाव परिणामो से भी विरहत कहीं इसमे द्वैत ॥

बारह सभा जहाँ जुडती हैं होता है प्रभु का उपदेश।
ओंकारमय दिव्य ध्वनि से पाते सभी जीव संदेश ॥
पुण्योदय से समवशरण अरू जिन मंदिर मैंने पाया।
अष्ट द्रव्य ले विनय भाव से पूजन करने को आया ॥
श्री जिनवर के समवशरण को भाव सहित मैं करूँ प्रणाम।
वीतराग पावन मुद्रा दर्शनकर ध्याऊँ आठों याम ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरण मध्यविराजमान जिनेन्द्रदेव अत्र अवतर अवतर सवौषट। ॐ ह्रीं श्री समवशरण मध्यविराजमान जिनेन्द्रदेव अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ। ॐ ह्रीं श्री समवशरण मध्यविराजमान जिनेन्द्रदेव अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

अष्टादश दोषों से विरहित अरहंतों को नमन करूँ।
अनुभव रस अमृत जल पीकर त्रिविधताप को शमन करूँ ॥
जिन तीर्थंकर समवशरण को भाव सहित मै नमन करूँ।
पूर्ण शुद्ध ज्ञायक स्वरूप मै मोक्षमार्ग अनुसरण करूँ ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्य विराजमान तीर्थंकराय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल नि।

छ्यालीस गुण मडित प्रभुवर अर्हतो को नमन करूँ।
अनुभव रस चदन शीतल पा भव आतप का हरण करूँ ॥जिन ॥२॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमान तीर्थंकराय ससारतापविनाशनाय चदन नि।

चार अनत चतुष्टय धारी अर्हतो को नमन करूँ।
अनुभव रस मय अक्षत पाकर भवसमुद्र हरण करूँ ॥जिन.॥३॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्य विराजमान तीर्थंकराय अक्षयपद प्राप्ताय अक्षत नि।

जन्म समयदश ज्ञानसमय दश अतिशययुत प्रभु नमन करूँ।
अनुभव रस के पुष्प प्राप्तकर कामबाण का हनन करूँ ॥जिन.॥४॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्य विराजमान तीर्थंकराय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि।

देवोपम चौदह अतिशत संयुक्त देव को नमन करूँ।
अनुभव रस नैवेद्य प्राप्तकर क्षुधारोग का हरण करूँ ॥ जिन ॥५॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्य विराजमान तीर्थंकराय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि।

नए वर्ष का प्रथम दिवस ही नूतन दिन कहलाता है।
पर नूतन दिन वही कि जिस दिन तत्व बोध हो जाता है।।

अष्ट प्रातिहार्यो से शोभित अर्हतों को नमन करूँ।
अनुभव रसमय दीपज्योति पा मोहतिमिर को हनन करूँ ।।
जिन तीर्थंकर समवशरण को भाव सहित मैं नमन करूँ।
पूर्ण शुद्ध ज्ञायक स्वरूप मै मोक्षमार्ग अनुसरण करूँ ।।६।।

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्य विराजमान तीर्थंकराय मोहाधकार विनाशनाय दीप नि ।

नव क्षायिक लब्धियाँ प्राप्त जिनवर देवों को नमन करूँ।
अनुभव रस की धूप बनाकर अष्टकर्म को हरण करूँ ।।जिन ।।७।।

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्य विराजमान तीर्थंकराय अष्टकर्म विध्वसनाय धूप नि ।

वसु मंगल द्रव्यों से शोभित गंध कुटी को नमन करूँ।
अनुभव रस के फल मै पाऊँ मोक्षस्वपद का वरण करूँ।।जिन ।।८।।

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्य विराजमान तीर्थंकराय मोक्षफल प्राप्ताय फल नि ।

परमौदारिक देह प्राप्त श्री अर्हतों को नमन करूँ।
अनुभव रस के अर्घ बनाऊँ मैं अनर्घ पदवरण करूँ ।।जिन.।।९।।

ॐ ही श्री समवशरणमध्य विराजमान तीर्थंकराय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्य नि ।

जयमाला

समवशरण जिनराज का महापूज्य द्युतिवान।
भव्य जीव उपदेश सुन करते निज कल्याण ।।१।।
ऋषभ देव के समवशरण का बारह योजन का विस्तार।
अर्द्ध अर्द्ध घटते सन्मति तक रहा एक योजन विस्तार ।।२।।
शत इन्द्रो से वंदित श्री जिनवर का समवशरण सुन्दर।
तीन लोक का सारा वैभव प्रभुचरणो में न्यौछावर ।।३।।
सौ योजन तक नहीं कहीं दुर्भिक्ष दृष्टि मे आता।
भूमि स्वच्छ दर्पणवत होती गधोदक निज बरसाता ।।४।।
गोलाकार समवशरण रचना होती है उन्नत आकाश।
चारो दिशि में बीस सहस्त्र सीढियाँ होतीं भू आकाश ।।५।।

चार कोट अरूँ पाँच वेदि के बीच भूमि होती हैं आठ।
चारों ओर वीथियाँ होती गधकुटी तक अनुपम ठाठ ॥६॥
पार्श्व वीथियों में दो दो वेदी होती है रत्नमयी।
सभी भूमियों के पथ होते सुन्दर तोरण द्वार मयी ॥७॥
द्वारो पर नवनिधि व धूप घट मगल द्रव्य सजे होते।
साढे बारह कोटि वाद्य देवो द्वारा बजते होते ॥८॥
द्वार द्वार के दोनो बाजू एक एक नाटक शाला।
जहाँ देव कन्याएँ करती नृत्य हृदय हरने वाला ॥९॥
प्रथम कोट की चारों दिशि में धर्म चक्र होते हैं चार।
धूलि शाल है नाम मनोहर मानस्तभ बने है चार ॥१०॥
प्रथम भूमि चैत्यालय की है मन्दिर चारों ओर बने।
फिर वापिका बनी शुभ सुन्दर जो जल से परिपूर्ण घने ॥११॥
द्वितिय कोट फिर पुष्प वाटिकाओ की पंक्ति महान विशाल।
फिर वन भूमि अशोक आम्र चंपक अरु सप्त पर्ण तरु माल ॥१२॥
तृतिय कोटि मे कल्पभूमि वेदी अरु बनी नृत्यशाला।
भवन भूमि स्तूप मनोहर ध्वजा, पंक्तियों की माला ॥१३॥
यही महोदय मंडप अनुपम श्रुत केवलि करते व्याख्यान।
केवलज्ञानलब्धि के धारी भी देते उपदेश महान ॥१४॥
चौथा कोटि शाल अतिसुन्दर कल्पवासि द्वारा रक्षित।
आगे चलकर श्री मंडप है महाविभूतियों से भूषित ॥१५॥
भूमि आठवी गधकुटी है तीन पीठ पर सिंहासन।
तरु अशोक शिर तीन छत्र हैं भामडल द्युतिमय दर्पण ॥१६॥
चारों दिशि मे जिनप्रभु के मुख दिखते मानों मुख हों चार।
अंतरीक्ष जिनदेव विराजे खिरे दिव्य ध्वनि मंगलकार ॥१७॥
तीन लोक की सकल संपदा चरणों में करती वंदन।
इन्द्रादिक सुर नर मुनि पशु भी चरणों में होते अर्पण ॥१८॥
द्वादश सभा महान बनी हैं दिव्य ध्वनि का मोद अपार।
नभ से पुष्प वृष्टि सुर करते होता जय ध्वनि का उच्चार ।१९॥

पर कर्तव्य विकल्प त्याग कर, सकल्पो को दे तू त्याग।
सागर की चचल तरग सम तुझे डूबो देगी तू भाग ॥

द्वादश कोठे हैं पहिले में गणधर ऋषिमुनि रहे विराज ।
दूजे कल्पवासि देवियाँ तीजे रही आर्यिका साज ॥२०॥
चौथे मे ज्योतिषी देवियाँ पंचम व्यंतर देवि अमेव ।
षष्ठम भवनवासि की देवी सप्तम भवनवासि के देव ॥२१॥
अष्टम व्यतर देव बैठते नवम ज्योतिषी देव प्रसिद्ध ।
दसवे कल्पवासि सुर होते ग्यारहवे में मनुज प्रसिद्ध ॥२२॥
बारहवें कोठे में बैठे हैं तिर्यच जीव चुपचाप ।
तीर्थकर की ध्वनि सुन सब हर लेते है मन का संताप ॥२३॥
प्रभु महात्म्य से रोग मरण आपत्ति बैर तृष्णा न कहीं ।
काम क्षुधा मय पीडा दुख आतक यहाँ पर कही नही ॥२४॥
पचमेरु के क्षेत्र विदेहों मे है समवशरण प्रख्यात ।
विद्यमानतीर्थकर बीस विराजित है शाश्वत विख्यात ॥२५॥
प्रभु की अमृत वाणी सुनकर कर्ण तृप्त हो जाते है ।
जन्म जन्म के पातक क्षण मे शीघ्र विलय हो जाते हैं ॥२६॥
जब बिहार होता है प्रभु का सुर रचते है स्वर्ण कमल ।
जहाँ जहाँ प्रभु जाते होती समवशरण रचना अविकल ॥२७॥
समवशरण रचना का वर्णन करने की प्रभु शक्ति नही ।
सोलहकरण भव्यभावना भाए, बिन प्रभु भक्ति नहीं ॥२८॥
ऐसी निर्मल बुद्धि मुझे दो निज आतम का ज्ञान करूँ ।
समवशरण की पूजन करके शुद्धातम का ध्यान करूँ ॥२१॥
पाप पुण्य आश्रव विनाशकर रागद्वेष पर जय पाऊँ ।
कर्म प्रकृतियो पर जयपाकर सिद्धलोक मे आजाऊँ ॥३०॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरण मध्यविराजमान तीर्थकराय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्य

समवशरण दर्शन करूँगाऊँमगल चार ।
भेदज्ञान की शक्ति से हो जाऊँ भवपार ॥

इत्याशीर्वाद

जाप्यमन्त्र - ॐ ह्रीं श्री समवशरण मध्यविराजमान अर्हन्तदेवाय नम ।

卐

जो अकषय भाव के द्धारा सर्व कषाये लेगा तू जीत।
मुक्ति वधू उसका वरने आएगी उर मे धर कर प्रीत ।।

पुण्यों की जब तक मिठास है

पुण्यों की जब तक मिठास है वीतरागता नहीं सुहाती।
जड की रुचि में चिन्मूरति की रुचि कभी न भाती ।।१।।
चेतन के प्रति अकर्मण्य है और अचेतन के प्रति कर्मठ।
निजभावो से है विरक्त परभावों की चिरपरिचित हठ ।।२।।
इन्द्रिय सुख में अरे अतीन्द्रिय सुख की व्यर्थ कल्पना करता।
अनुभव गोचर वस्तु सहज है रागातीत विराग न वरता ।।३।।
सहजभाव संपदायुक्त है तो भी इस पर दृष्टि न जाती।
पुण्यो की जब तक मिठास है वीतरागता नही सुहाती ।।४।।
परमतत्व की मादकता से तत्वाभ्यास नही हो पाता।
पर मे जागरूक रहता है निज मे स्वयं नहीं खं। पाता ।।५।।
ज्ञायक होकर ज्ञान न जाना और ज्ञेय में ही उलझा है।
ध्याता ध्यान ध्येय ना समझा अत न अब तक यह सुलझा है ।।६।।
तर्क कुतर्क मान्यता मिथ्या भव भव मे है इसे रुलाती।
पुण्यो की जब तक मिठास है वीतरागता नही सुहाती ।।७।।
महावीर का अनुयायी है महावीर को कभी न माना।
रागवीर ने हेय बताया इसने उपादेय ही जाना ।।८।।
पाप हेय है यह तो कहना किन्तु पुण्य मे लाभ मानता।
मोक्षमार्ग मे दोनो बाधक यह सम्यक् निर्णय न जानता ।।९।।
मूल भूल ही इस चेतन को भव अटवी मे है अटकाती।
पुण्यो की जब तक मिठास है वीतरागता नही सुहाती ।।१०।।
साधक साध्य साधना साधन का विपरीत रूप है माना।
स्वय साध्य साधन सब कुछ है इसे भूल भटका अनजाना ।।११।
चिदानंद निर्द्वद निजातम का आश्रय ले अगर बढे यह।
तो निश्चय पुरुषार्थ सफल हो मुक्ति भवन सोपान चढे यह ।।१२।।
ज्ञान पृथक है राग पृथक है ऐसी निर्मल सुमति न आती।
पुण्यों की जब तक मिठास है वीतरागता नही सुहाती ।।१३।।
वीतराग विज्ञान ज्ञान का अनुभव ज्ञान चेतना लाता।

अंतरंग बहिरंग परिग्रह तजने का ही कर अभ्यास।
इसके बिना नहीं तू होगा साधु कभी भी कर विश्वास ।।

कर्म चेतना उड जाती है निज चैतन्य परम पद पाता ।।१४।।
वीतराग जिनमार्ग यही है केवल लो अपना अवलंबन।
रागमात्र को हेय जान निज भावो से काटो भवबंधन ।।१५।।
तत्वो की सम्यक् श्रद्धा से मोक्ष संपदा है मिल जाती।
पुण्यो की जब तक मिठास है वीतरागता नहीं सुहाती ।।१६।।

श्री बाहुबली स्वामी पूजन

जयति बाहुबलि स्वामी जय जय, करूँ वन्दना बारम्बार।
निज स्वरूप का आश्रय लेकर आप हुये भवसागर पार ।।
हे त्रैलोक्यनाथ, त्रिभुवन मे छाई महिमा अपरम्पार।
सिद्धस्वपद की प्राप्ति हो गई हुआ जगत मे जय जयकार ।।
पूजन करने मैं आया हूँ अष्ट द्रव्य का ले आधार।
यही विनय है चारों गति के दुख में मेरा हो उद्धार ।।

ॐ ह्रीं श्री जिन बाहुबलीस्वामिन् अत्र अवतर अवतर संवौषट्, ॐ ह्री श्री बाहुबलि जिन अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ , ॐ ह्री श्री बाहुबलि जिन अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

उज्जवल निर्मल जल प्रभु पद पकज मे आज चढाता हूँ।
जन्म मरण का नाश करूँ आनन्दकन्द गुण गाता हूँ ।।
श्री बाहुबलिस्वामी प्रभु चरणो में शीश झुकाता हूँ।
अविनश्वर शिव सुख पाने को नाथ शरण मे आता हूँ ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री जिनबाहुबलिस्वामिने जन्मजरामृत्युविनाशनाय जल नि ।

शीतल मलय सुगन्धित पावन चन्दन भेट चढाता हूँ।
भव आताप नाश हो मेरा ध्यान आपका ध्याता हूँ ।।श्रीबाहु ।।२।।

ॐ ह्रीं श्री जिनबाहुबलिस्वामिने जन्मजरामृत्युविनाशनाय चन्दन नि ।

उत्तम शुभ्र अखंडित तन्दुल हर्षित चरण चढाता हूँ।
अक्षयपद की सहजप्राप्ति हो यही भावना भाता हूँ ।।श्रीबाहु.।।३।।

ॐ ह्रीं श्री जिनबाहुबलिस्वामिने अक्षयपद प्राप्तये अक्षत नि ।

काम शत्रु की कारण अपना शील स्वभाव न पाता हूँ।
काम भाव का नाश करूँ मैं सुन्दर पुष्पचढाता हूँ ।।श्री बाहु.।।४।।

ॐ ह्रीं श्री जिनबाहुबलिस्वामिने कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि ।

सर्व चेष्टा रहित पूर्ण निष्क्रिम हो तू कर निज का ध्यान।
दृश्य जगत के भ्रम को तज दे पाएगा उत्तम निर्वाण ।।

तृष्णा की भीषण ज्वाला से प्रति पल जलता जाता हूँ।
क्षुधारोग से रहित बनूँ मैं शुभ नैवेद्य चढाता हूँ ।।
श्री बाहुबलिस्वामी प्रभु चरणो मे शीश झुकाता हूँ।
अविनश्वर शिव सुख पाने को नाथ शरण मे आता हूँ ।।५।।
ॐ ह्रीं श्री जिनबाहुबलिस्वामिने क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि ।
मोह ममत्व आदि के कारण सम्यकमार्ग न पाता हूँ।
यह मिथ्यात्वतिमिर मिट जाये मैं प्रभुवर दीप चढाता हूँ।।श्री बाहु.।।६।।
ॐ ह्रीं श्री जिनबाहुबलिस्वामिने मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि ।
है अनादि कर्मबन्ध दुखमय न पृथक् कर पाता हूँ।
अष्टकर्म विध्वस करूँ अतएव सु धूप चढाता हूँ।।श्री बाहु.।।७।।
ॐ ह्रीं श्री जिनबाहुबलिस्वामिने आष्टकर्म विनाशनाय धूप नि ।
सहज सम्पदा युक्त स्वय होकर भव दुख पाता हूँ।
परम मोक्षपद शीघ्रमिले उत्तमफल चरणचढाता हूँ ।।श्रीबाहु ।।८।।
ॐ ह्रीं श्री जिनबाहुबलिस्वामिने महामोक्षफल प्राप्तये फल नि ।
पुण्यपाप से स्वर्गादिक पद बार बार पा जाता हूँ।
निज अनर्घपद मिला न अबतक इससे अर्घचढाता हूँ।।श्री बाहु.।।९।।
ॐ ह्रीं श्री जिनबाहुबलिस्वामिने अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्य नि ।

जयमाला

आदिनाथ सुत बाहुबली प्रभु माता सुनन्दा के नन्दन।
चरम शरीरी कामदेव तुम पोदनपुर पति अभिनन्दन ।।१।।
छह खण्डो पर विजय प्राप्तकर भरत चढे वृषभाचल पर।
अगणितचक्री हुए नामलिखने को मिला न थल तिलभर ।।२।।
मै ही चक्री हुआ अह का मान ध्वस्त हो गया तभी।
एक प्रशस्ति मिटाकर अपनी लिखी प्रशस्ति स्वहस्त जभी ।।३।।
चले अयोध्या किन्तु नगर मे चक्र प्रवेश न कर पाया।
ज्ञात हुआ लघु भ्रात बाहुबलि सेवा मे न अभी आया ।।४।।
भरत चक्रवर्ती ने चाहा बाहुबली आधीन रहे।
ठुकराया आदेश भरत का तुम स्वतन्त्र स्वाधीन रहे ।।५।।

भीषण युद्ध छिडा दोनों भाई के मन मे सताप हुए।
दृष्टि, मल्ल, जल, युद्ध, भरत से करके विजयी आप हुए ॥६॥
क्रोधित होकर भरत चक्रवर्ती ने चक्र चलाया है।
तीन प्रदक्षिण देकर कर मे चक्र आपके आया है ॥७॥
विजय चक्रवर्ती पर पाकर उर वैराग्य जगा तत्क्षण।
राजपाट तज ऋषभदेव के समवशरण को किया गमन ॥८॥
धिक् - धिक यह ससार और इसकी असारता को धिक्कार।
तृष्णा की अनन्त ज्वाला मे जलता आया है ससार ॥९॥
जग की नश्वरता का तुमने किया चितवन बारम्बार।
देह भोग ससार आदि से हुई विरक्ति पूर्ण साकार ॥१०॥
आदिनाथ प्रभु से दीक्षा ले व्रत सयम को किया ग्रहण।
चले तपस्या करने वन मे रत्नत्रय को कर धारण ॥११॥
एक वर्ष तक किया कठिन तप कार्योत्सर्ग मौन पावन।
किंतु खटक थी एक हृदय मे भरत भूमि पर है आसन ॥१२॥
केवलज्ञान नही हो पाया अल्पराग ही के कारण।
परिषह शीत ग्रीष्म वर्षादिक जय करके भी अटका मन ॥१३॥
भरत चक्रवर्ती ने आकर श्री चरणो मे किया नमन।
कहा कि वसुधा नही किसी की भावत्याग दो हे भगवन् ॥१४॥
तत्क्षण भाव विलीन हुआ तुम शुक्ल ध्यान मे लीन हुए।
फिर अन्तरमुहूर्त में स्वामी मोह क्षीण स्वाधीन हुए ॥१५॥
चार घातिया कर्म नष्ट कर आप हुए केवलज्ञानी।
जय जयकार विश्व मे गूजा जगती सारी मुस्कानी ॥१६॥
झलका लोकालोक ज्ञान मे सर्व द्रव्य गुण पर्याये।
एक समय मे भूत भविष्यत् वर्तमान सब दर्शाये ॥१७॥
फिर अघातिया कर्म विनाशे सिद्ध लोक मे गमन किया।
पोदनपुर से मुक्ति हुई तीनो लोको ने नमन किया ॥१८॥
महामोक्ष फल पाया तुमने ले स्वभाव का अवलम्बन।
हे भगवान् बाहुबलि स्वामी कोटि कोटि शत् शत् वदन ॥१९॥

भौतिक सुख की चकाचौध मे जीवन बीत रहा है।
भावमरण प्रति समय हो रहा जीवन रीत रहा है ।।

आज आपका दर्शन करने चरणों मे आया हूँ।
शुद्ध स्वभाव प्राप्त हो मुझको यही भाव भर लाया हूँ ।।२०।।
भाव शुभाशुभ भव निर्माता शुद्ध भाव का दो प्रभु दान।
निज परिणति मे रमणकरूँ प्रभु हो जाऊँ मैं आप समान ।।२१।।
समकित दीप जले अन्तर में तो अनादि मिथ्यात्व गले।
रागद्वेष परणति हट जाये पुण्य पाप सन्ताप टले ।।२२।।
त्रैकालिक ज्ञायक स्वभाव का आश्रय लेकर बढ जाऊँ।
शुद्धात्मानुभूति के द्वारा मुक्ति शिखर पर चढ जाऊँ ।।२३।।
मोक्ष लक्ष्मी को पाकर भी निजानन्द रसलीन रहूँ।
सादि अनन्त सिद्ध पद पाऊँ सदा सुखी स्वाधीन रहूँ ।।२४।।
आज आपका रूप निरखकर निज स्वरूप का भान हुआ।
तुम सम बने भविष्यत् मेरा यह दृढ निश्चय ज्ञान हुआ ।।२५।।
हर्ष विभोर भक्ति से पुलकित होकर की है यह पूजन।
प्रभु पूजन का सम्यक् फल हो कटें हमारे भव बन्धन ।।२६।।
चक्रवर्ति इन्द्रादिक पद की नही कामना है स्वामी।
शुद्ध बुद्ध चैतन्य परम पद पाये है अन्तरयामी ।।२७।।
ॐ ह्री जिनबाहुबलीस्वामिने अनर्घपद प्राप्ताय अर्घ्य नि ।

घर घर मगल छाये जग में वस्तु स्वभाव धर्म जाने।
वीतराग विज्ञान ज्ञान से शुद्धातम को पहिचाने ।।

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्रीं श्री बाहुबली जिनाय नम ।

श्री गौतमस्वामी पूजन

जय जय इन्द्रभूमि गौतम गणधर स्वामी मुनिवर जय जय।
तीर्थंकर श्री महावीर के प्रथम मुख्य गणधर जय जय ।।
द्वादशाग श्रुत पूर्ण ज्ञानधारी गौतमस्वामी जय जय।
वीरप्रभु की दिव्यध्वनि जिनवाणी को सुन हुए अभय ।।
ऋद्धि सिद्धि मंगल के दाता मोक्ष प्रदाता गणधर देव।
मंगलमय शिव पथ पर चलकर मैं भी सिद्ध बनूँ स्वयमेव ।।१।।

जब तक मिथ्यात्व हृदय मे है ससार न पल भर कम होगा।
जब तक पर द्रव्यो से प्रतीति भव भार न तिल भर कम होगा॥

ॐ ह्री श्री गौतमगणधरस्वामिन् अत्र अवतर अवतर सवौषट, ॐ ह्रीं श्री गौतमगणधरस्वामिन् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ , ॐ ह्रीं श्री गौतमगणधरस्वामिन् अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

मैं मिथ्यात्व नष्ट करने को निर्मल जल की धार करूँ।
सम्यक् दर्शन पाऊँ जन्म मरण क्षय कर भव रोग हरूँ॥
गौतमगणधर स्वामी चरणों की मैं करता पूजन।
देव आपके द्वारा भाषित जिनवाणी को करूँ नमन॥१॥

ॐ ह्रीं श्री गौतमगणधरस्वामिने जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल नि।

पंच पाप अविरत को त्यागूँ शीतल चदन चरण धरूँ।
भव आताप नाश करके प्रभु मै अनादि भव रोग हरूँ॥गौतम॥२॥

ॐ ह्रीं श्री गौतमगणधरस्वामिने ससारताप विनाशनाय चदन नि।

पच प्रमाद नष्ट करने को उज्ज्वल अक्षत भेट करूँ।
अक्षयपद की प्राप्ति हेतु प्रभु मै अनादि भव रोग हरूँ॥गौतम॥३॥

ॐ ह्री श्री गौतमगणधरस्वामिने अक्षयपद प्राप्तय अक्षत नि।

चार कषाय अभाव हेतु मैं पुष्प मनोरम भेंट करूँ।
कामबाण विध्वन्स करूँ प्रभु मै अनादि भव रोग हरूँ॥गौतम॥४॥

ॐ ह्रीं श्री गौतमगणधरस्वामिने कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि।

मन वच काया योग सर्व हरने को प्रभु नैवेद्य धरूँ।
क्षुधा व्याधि का नाम मिटाऊ मै अनादि भव रोग हरूँ॥गौतम॥५॥

ॐ ह्री श्री गौतमगणधरस्वामिने क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि।

सम्यकज्ञान प्राप्त करने को अन्तर दीप प्रकाश करूँ।
चिर अज्ञान तिमिर को नाशू मै अनादि भव रोग हरूँ॥गौतम॥६॥

ॐ ह्रीं श्री गौतमगणधरस्वामिने मोहान्धकारविनाशनाय दीप नि।

मै सम्यक् चारित्र ग्रहण कर अन्तर तप की धूप वरूँ।
अष्टकर्म विध्वस करूँ प्रभु मै अनादि भव रोग हरूँ॥७॥

ॐ ह्री श्री गौतमगणधरस्वामिने अष्टकर्मविध्वसनाय धूप नि।

रत्नत्रय का परम मोक्षफल पाने को फल भेट करूँ।
शुद्ध स्वपद निर्वाण प्राप्तकर मै अनादि भव रोग हरूँ॥गौतम॥८॥

ॐ ह्रीं श्री गौतमगणधरस्वामिने महा मोक्षफल प्राप्ताय फल नि।

जल फलादि वसु द्रव्य अर्घ चरणो में सविनय भेंट करूँ।
पद अनर्घ सिद्धत्व प्राप्त कर मैं अनादि भव रोग हरूँ ।।
गौतमगणधर स्वामी चरणों की मैं करता पूजन ।
देव आपके द्वारा भाषित जिनवाणी को करूँ नमन ।।९।।
ॐ ह्रीं श्री गौतमगणधरस्वामिने अनर्घपद्व प्राप्ताय अर्घ्यं नि ।
श्रावण कृष्णा एकम् के दिन समवशरण मे तुम आये ।
मानस्तम्भ देखते ही तो मान, मोह अघ गल जाये ।
महावीर के दर्शन करते ही मिथ्यात्व हुया चकचूर ।
रत्नत्रय पाते ही दिव्यध्वनि का लाभ लिया भरपूर ।।१०।।
ॐ ह्रीं श्री गौतमगणधरस्वामिने दिव्यध्वनि पाप्ताय अर्घ्यं नि ।
विचरण करके दुखी जगत के जीवों का कल्याण किया ।
अन्तिम शुक्ल ध्यान के द्वारा योगो का अवसान किया ।
देव वानबे वर्ष अवस्था मे तुमने निर्वाण लिया ।
क्षेत्र गुणावा करके पावन सिद्ध स्वरूप महान किया ।।१२।।
ॐ ह्रीं श्री गौतमगणधरस्वामिने महामोक्षपद्वप्राप्ताय अर्घ्यं नि ।

जयमाला

मगध देश के गौतमपुर वासी वसुभूति ब्राह्मण पुत्र ।
माँ पृथ्वी के लाल लाडले इन्द्रभूति तुम ज्येष्ठ सुपुत्र ।।१।।
अग्निभूति अरु वायुभूति लघु भ्राता द्वय उत्तम विद्वान ।
शिष्य पाच सौ साथ आपके चौदह विद्या ज्ञान निधान ।।२।।
शुभ वैशाख शुक्ल दशमी को हुआ वीर को केवलज्ञान ।
समवशरण की रचना करके हुआ इन्द्र को हर्ष महान ।।३।।
बारह सभा बनी अति सुन्दर गन्धकुटी के बीच प्रधान ।
अन्तरीक्ष मे महावीर प्रभु बैठे पद्मासन निज ध्यान ।।४।।
छयासठ दिन हो गये दिव्य ध्वनि खिरी नहीं प्रभु की यह जान ।
अवधिज्ञान से लखा इन्द्र ने गणधर की है कमी प्रधान ।।५।।
इन्द्रभूति गौतम पहले गणधर होगे यह जान लिया ।
वृद्ध ब्राह्मण वेश बना, गौतम के घर प्रस्थान किया ।।६।।

पहुँच इन्द्र ने नमस्कार कर किया निवेदन विनयमयी।
मेरे गुरु श्लोक सुनाकर, मौन हो गये ज्ञानमयी ॥७॥
अर्थ भाव वे बता न पाये वही जानने आया हूँ।
आप श्रेष्ठ विद्वान जगत मे शरण आपकी आया हूँ ॥८॥
इन्द्रभूति गौतम श्लोक श्रवण कर मन मे चकराये।
झूठा अर्थ बताने के भी भाव नही उर मे आये ॥९॥
मन में सोचा तीन काल, छै द्रव्य, जीव, षट लेश्या क्या ?
नव पदार्थ, पचास्तिकाय, गति, समिति, ज्ञान, व्रत, चारित्र क्या ॥१०॥
बोले गुरु के पास चलो मै वही अर्थ बतलाऊँगा।
अगर हुआ तो शास्त्रार्थ कर उन पर भी जय पाऊँगा ॥११॥
अति हर्षित हो इन्द्र हृदय मे बोला स्वामी अभी चले।
शकाओ का समाधान कर मेरे मन की शल्य दले ॥१२॥
अग्निभूति अरु वायुभूति दोनो भ्राता सग लिए जभी।
शिष्य पाच सौ सग ले गौतम साभिमान चल दिये तभी ॥१३॥
समवशरण की सीमा मे जाते ही हुआ गलित अभिमान।
प्रभु दर्शन करते ही पाया सम्यकदर्शन सम्यकज्ञान ॥१४॥
तत्क्षणसम्यकचारित धारा मुनि बन गणधर पद पाया।
अष्ट ऋद्धियॉ प्रगट हो गई ज्ञान मन पर्यय पाया ॥१५॥
खिरने लगी दिव्य ध्वनि प्रभु की परमहर्ष उर मे छाया।
कर्म नाशकर मोक्ष प्राप्ति का यह अपूर्व अवसर पाया ॥१६॥
ओकार ध्वनि मेघ गर्जना सम होती है गुणशाली।
द्वादशाग वाणी तुमने अन्तर्मुहुर्त मे रच डाली ॥१७॥
दोनो भ्राता शिष्य पाच सो ने मिथ्यात्व तभी हरकर।
हर्षित हो जिन दीक्षा ले ली दोनो भ्रात हुए गणधर ॥१८॥
राजगृही के विपुलाचल पर प्रथम देशना मगलमय।
महावीर सन्देश विश्व ने सुना शाश्वत शिव सुखमय ॥१९॥
इन्द्रभूति, श्री अग्निभूति, श्री वायुभूति, शुचिदत्त महान।
श्री सुधर्म, मान्डव्य, मौर्यसुत, श्री अकम्प अति ही विद्वान ॥२०॥

अचल और मेदार्य, प्रभास यही ग्यारह गणधर गुणवान।
महावीर के प्रथम शिष्य तुम हुए मुख्य गणधर भगवान् ।।२१।।
छह छह घडी दिव्यध्वनिखिरती चारसमय नितमंगलमय।
वस्तु तत्व उपदेश प्राप्तकर भव्य जीव होते निजमय ।।२२।।
तीस वर्ष रह समवशरण मे गूथा श्री जिनवाणी को।
देश देश मे कर विहार फैलाया श्री जिनवाणी को ।।२३।।
कार्तिक कृष्ण अमावस प्रात महावीर निर्वाण हुआ।
सन्ध्याकाल तुम्हे भी पावापुर मे केवलज्ञान हुआ ।।२४।।
ज्ञान लक्ष्मी तुमने पाई और वीर प्रभु ने निर्वाण।
दीपमालिका पर्व विश्व मे तभी हुआ प्रारम्भ महान् ।।२५।।
आयु पूर्ण जब हुई आपकी योग नाश निर्वाण लिया।
धन्य हो गया क्षेत्र गुणावा देवो ने जयगान किया ।।२६।।
आज तुम्हारे चरण कमल के दर्शन पाकर हर्षाया।
रोम-रोम पुलकित है मेरे भव का अन्त निकट आया ।।२७।।
मुझको भी प्रज्ञा छैनी दो मै निज पर मे भेद करूँ।
भेद ज्ञान की महाशक्ति से दुखदायी भव खेद हरूँ ।।२८।।
पद सिद्धत्व प्राप्त करके मै पास तुम्हारे आ जाऊँ।
तुम समान बन शिव पद पाकर सदा सदा को मुस्काऊँ ।।२९।।
जय जय गौतम गणधरस्वामी अभिरामी अन्तर्यामी।
पाप पुण्य परभाव विनाशी मुक्ति निवासी सुखधामी ।।३०।।

ॐ ह्री श्री गौतमगणधरस्वामिने अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं नि।

गौतम स्वामी के वचन भाव सहित उर धार।
मन, वच, तन, जो पूजते वे होते भव पार।।

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्रीं श्री गौतमगणधराय नम ।

卐

जब तक निज पर भेद न जाना तब तक ही अज्ञानी।
जिस क्षण निज पर भेद जान ले उस क्षण ही तू ज्ञानी ॥

श्री सप्त ऋषि पूजन

जय जयति जय सुरमन्यु, जय श्रीमन्यु, निचय, मुनीश्वरम् ।
जय सर्वसुन्दर, पूज्य श्री जयवान, परम यतीश्वरम् ॥
जय विनयलालस और श्री जयमित्र, सुमुनि ऋषीश्वरम् ।
जय ध्यानपति, जय ज्ञान मति जिन साधु सप्त ऋषीश्वरम् ॥
जय ऋद्धि सिद्धि महान धारी, महामुनि जगदीश्वरम् ।
जय सकल जग कल्याणकारी, दयानिधि अवनीश्वरम् ॥

ॐ ह्रीं श्री सुरमन्यु, श्रीमन्यु निश्चय, सर्वसुन्दर, जयवान, विनय लालस, जयमित्र, सप्त ऋषिश्वरा अत्र अवतर अवतर सवौषट्, ॐ ह्रीं श्री सुरमन्यु, श्रीमन्यु निचय, सर्व सुन्दर, जयवान विनयलालस, जयमित्र सप्त ऋषिश्वरा अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ , ॐ ह्रीं श्री सुर मन्यु, श्रीमन्यु निचय, सर्व सुन्दर, जयवान, विनयलालस जयमित्र, सप्त ऋषिश्वरा अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट् ।

सप्त तत्व श्रद्धान पूर्वक आत्म प्रतीत वरूँ स्वामी ।
सप्त भयो से रहित बनूँ मै जन्म मरण नाशूँ स्वामी ॥
सुरमन्यु, श्रीमन्यु आदि जयमित्र सप्त ऋषिवर बन्दन ।
श्रद्धा ज्ञान चरित्र शक्ति से काटूँ भव भव के बन्धन ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री सुरमन्यु, श्रीमन्यु निचय, सर्वसुन्दर, जयवान, विनय लालस जयमित्र, सप्त ऋषिश्वर जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जल नि ।

सप्त दश नियम नित पालन कर सप्ताक्षरी मन्त्र ध्याऊँ ।
सप्त नरक, सुर, पशु, नर गतिमय भव आताप नशाऊँ ॥सुरमन्यु॥२॥

ॐ ह्रीं श्री सुरमन्यु श्रीमन्यु निचय, सर्वसुन्दर, जयवान, विनय लालस, जयमित्र सप्त ऋषिश्वर ससारताप विनाशनाय चन्दन नि ।

सप्त सुगुण दाता के पाऊँ सप्त स्थान दान दूँ नित्य ।
सप्त व्यसन तज निज आतम भज अक्षय पद पाऊँ निश्चय॥सुरमन्यु॥३॥

ॐ ह्रीं श्री सुरमन्यु श्रीमन्यु निचय, सर्वसुन्दर, जयवान, विनय लालस, जयमित्र सप्त ऋषिश्वर अक्षयपद प्राप्तये अक्षत नि ।

सप्त शुद्धिपूर्वक सामायिक करूँ त्रिकाल शुद्ध मन से ।
सप्त शील को पाल काम अरि नाश करूँ निज चिन्तन से ॥सुरमन्यु॥४॥

ॐ ह्रीं श्री सुरमन्यु, श्रीमन्यु निचय, सर्वसुन्दर, जयवान, विनय लालस, जयमित्र, सप्त ऋषिश्वर कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि ।

पुण्यो की जब तक मिठास है वीतरागता नहीं सुहाती।
जड़ की रुचि मे चिन्मूरति की रुचि कभी न भाती ॥

सप्त कुम्भ व्रत चार शतक छयानवे महा उपवास करूँ।
इनमे इकसठ करूँपारणा क्षुधारोग फिर नाश करूँ॥सुरमन्यु॥५॥
ॐ ह्रीं श्री सुरमन्यु, श्रीमन्यु निचय, सर्वसुन्दर, जयवान, विनय लालस, जयमित्र, सप्त ऋषिश्वर क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि।
सप्त नयो के द्वारा स्वामी वस्तु तत्व का करूँ विचार।
मोहनाश हित सात प्रतिक्रमण करके पालूँ ज्ञानाचार॥सुरमन्यु॥६॥
ॐ ह्री श्री सुरमन्यु, श्रीमन्यु निचय, सर्वसुन्दर, जयवान, विनय लालस, जयमित्र, सप्त ऋषिश्वर मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि।
सातभंगस्याद्वाद मयी जिनवाणी की छाया पाऊँ।
केवलज्ञान लब्धि को पाकर अष्ट कर्म पर जय पाऊँ॥सुरमन्यु॥७॥
ॐ ह्रीं श्री सुरमन्यु, श्रीमन्यु निचय, सर्वसुन्दर, जयवान, विनय लालस, जयमित्र, सप्त ऋषिश्वरेभ्यो अष्टकर्म विध्वसनाय धूप नि।
सप्त समुद्घातों मे स्वामी केवलि समुद्घात पाऊँ।
आठ समय पश्चात् मोक्ष पा पूर्ण शाश्वत सुख पाऊँ॥सुरमन्यु॥८॥
ॐ ह्रीं श्री सुरमन्यु, श्रीमन्यु निचय, सर्वसुन्दर, जयवान, विनय लालस, जयमित्र, सप्त ऋषिश्वरेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फल नि।
सप्त परम स्थानो मे निर्वाण स्थान शिवपुर जाऊँ।
पद अनर्घ से सादि अनन्त सिद्ध सुख पाऊँहर्षाऊँ॥सरमन्यु॥९॥
ॐ ह्रीं श्री सुरमन्यु, श्रीमन्यु निचय, सर्वसुन्दर, जयवान, विनय लालस, जयमित्र, सप्त ऋषिश्वरेभ्यो अनर्घ पद्ध प्राप्तये अर्घ्य नि।

जयमाला

महा पूज्य पावन परम श्री सप्त ऋषीराज।
आत्म धर्म रथ सारथी तारण तरण जहाज॥१॥
तीर्थंकर मुनि सुव्रत प्रभु का जब था शासन काल महान।
रामचन्द्र बलभद्र नृपति के गूजे थे जग मे यश गान॥२॥
धर्म भावना से करते थे अगणित जीव आत्म कल्याण।
चारण आदि ऋद्धियाँ पाकर पा लेते थे मुक्ति विहान॥३॥
नगर प्रभापुर के अधिपति थे श्री नन्दन नृप वैभववान।
उनके सात सुपुत्र हुए धरणी रानी से अति विद्वान॥४॥

वीतरागता विज्ञान ज्ञान का अनुभव ज्ञान चेतना लाता।
कर्म चेतना उड जाती है निज चैतन्य परम पद पाता ।।

सुरमन्यु, श्रीमन्यु, निचय, जयमित्र, सर्व सुन्दर जयवान ।
श्री विनयलालस गुणधारी, सत्यशील से शोभावान ।।५।।
लाड प्यार मे पले सर्व भौतिक सुख से भूषित सुकुमार।
राजकाज भी देखा करते थे सातो ही राजकुमार ।।६।।
नृप प्रीतिंकर मुनि बन घोर तपस्या मे रत हुए महान ।
शुक्ल ध्यान धर घाति कर्म हर पाया अनुपम केवलज्ञान ।।७।।
अगणित देवो ने स्वर्गो से आकर पाया जय जय गान ।
पिता सहित सातो पुत्रो को भी आया निज आतम भान ।।८।।
प्रतिबोधित हो दीक्षा मुनि पद अगीकार किया ।
अट्टाइस मूल गुण धारे मोक्ष मार्ग स्वीकार किया ।।९।।
श्री नन्दन ने केवल ज्ञान प्राप्त कर सिद्धालय पाया ।
सातो पुत्रो ने भी तप करके सप्त ऋषि नाम पाया ।।१०।।
ये सातो ही एक साथ तप करते थे भव भयहारी ।
महाशील का पालन करते अनुपम दान ब्रह्मचारी ।।११।।
कुछ दिन मे इन चारणादि ऋद्धियो के स्वामी ।
महा तपस्वी परम यशस्वी ऋद्धीश्वर जग मे नामी ।।१२।।
रामचन्द्र जी के लघु भ्राता करते थे मथुरा मे राज ।
न्यायपूर्वक प्रजा पालते थे शत्रुघ्न नृपति महाराजा ।।१३।।
मधु राजा को जीत राज्य मथुरा का इनने पाया था ।
मधु का मित्र असुरपति इक चमरेन्द्र यक्ष तब आया था ।।१४।।
अति क्रोधित हो रौद्र भावमय उसके मन मे बैर जगा ।
किया प्रकोप महामारी का मथुरा का सौभाग्य भगा ।।१५।।
ईति भीति फैलाई इतनी नगरी सूनी हुई अरे ।
जहाँ गीत मगल होते थे वहाँ शोक के मेघ घिरे ।।१६।।
हाहाकार मचा नगरी मे शून्य हुए गृह मनुजो से ।
पाप उदय हो तो क्या कोई पार पा सका दनुजो से ।।१७।।
पुण्योदय से इक दिन श्री सप्त ऋषि मथुरा में आये ।
गगन विहारी नभ से उतरे जन जन ने दर्शन पाये ।।१८।।

तत्क्षण रोग महामारी का नष्ट हुआ सब हर्षाये।
राजा प्रजा सभी ने अति हर्षित होकर मंगल गाये ॥१९॥
मुनि चरणों के शुभ प्रताप से सारी नगरी धन्य हुई।
सात महा ऋषियो के दर्शन करके पुरी अनन्य हुई ॥२०॥
जल थल नभ से पुत्र सप्त ऋषियो को गूँजी जय जयकार।
धन्य तपस्या धन्य महामुनि धन्य हुआ तुमसे ससार ॥२१॥
सीता जी ने नगर अयोध्या मे इनको आहार दिया।
विनय भाव से वन्दन करके अक्षय पुण्य अपार किया ॥२२॥
श्री सप्त ऋषि परम ध्यान धर हुए भवार्णव के उस पार।
परम मोक्ष मगल के स्वामी सकल लोक को मगलकार ॥२३॥
महा ऋद्धि धारी ऋषियों को सादर शीश झुकाऊँ मैं।
मन वच काय त्रियोगपूर्वक चरण शरण मे आऊँ मै ॥२४॥
ऐसा दिन कब आयेगा प्रभु जब जिन मुनि बन जाऊँगा।
निज स्वरूप का अवलम्बन ले आठो कर्म नशाऊँगा ॥२५॥
सप्त भूमि अथवा निगोद आदिक भव व्यथा मिटाऊँगा।
जिन गुण सम्पत्ति हेतु महाव्रत धार सब राग नशाऊँगा ॥२६॥
सप्तादश दोष मै टालूँ सात विषय करो नित नाश।
तजूँ सप्त पक्षामासो को पाऊँ सम्यक् ज्ञान प्रकाश ॥२७॥
सप्त रत्न का लोभ न जागे ना चौदह रत्नो का राग।
सप्तविशति अधिक शताक्षरि मन्त्र जपूँ कर निज अनुराग ॥२८॥
मनुज देव पशु नर्क निगोदादिक मे दुख ही दु ख पाया।
भव सन्ताप मिटाने का प्रभु आज स्वर्ण अवसर आया ॥२९॥
सप्त तपो ऋद्धियाँ प्राप्त कर वीतरागता उर लाऊँ।
पाप पुण्य पर भाव नाश हित श्री सप्त ऋषि को ध्याऊँ ॥३०॥
द्वादश तप की महिमा पाऊँ शुद्धातम के गुण गाऊँ।
ग्रीष्म शीत वर्षा ऋतु मे भी निज आत्म लख मुस्काऊँ ॥३१॥
विविध भाँति के व्रत मै पालूँ निरतिचार हो शल्य रहित।
प्रभो सिह निष्क्रीडित आदिक तप व्रत परिसख्यान सहित ॥३२॥
केवलज्ञान प्रगट कर स्वामी चार घातिया नाश करूँ।
सिद्ध शिला पर सदा विराजूँ आदिकाल मोक्ष प्रकाश वरूँ ॥३३॥

परिणाम बध का कारण है।
परिणाम मोक्ष का कारण है ।।

सप्त ईतियाँ और भीतियाँ पल मे हो जायें अवसान।
अखिल विश्व में मंगल छाये सभी सुखी हो समतावान ।।३४।।

ॐ ह्रीं श्री सुरमन्यु, श्रीमन्यु आदि सप्त ऋषीश्वरेभ्यो पूर्णार्घ्य नि ।

श्री सप्त ऋषीश्वर चरण जो लेते उर धार।
अष्ट ऋद्धियाँ प्राप्त कर हो जाते भव पार ।।३५।।

इत्याशीर्वाद

जाप्यमंत्र - ॐ ह्रीं श्री सुरमन्यु, श्रीमन्यु आदि सप्त ऋषीश्वरेभ्यो नम ।

卐

श्री कुन्द कुन्द आचार्य पूजन

कुन्द-कुन्द आचार्य देव के चरण कमल मे करूँ नमन।
कुन्द-कुन्द आचार्य देव की वाणी उर धरूँ सुमन ।।
कुन्द-कुन्द आचार्य देव की भाव सहित करके पूजन।
निजस्वभाव के साधन द्वारा मोक्षप्राप्ति का करूँयतन ।।
१''परिणामो बधो परिणामो मोक्खो'' करूँ आत्मदर्शन।
सिद्ध स्वपद की प्राप्ति हेतु मै निज स्वरूप मे करूरमन ।।

ॐ ह्रीं श्री कुन्द कुन्द आचार्यदेव चरणाग्रेषु पुष्पाजलि क्षिपामि ।

समयसार वैभव के जल से उर मे उज्ज्वलता लाऊँ।
२ ''दसण मूलोधम्मो'' सम्यकदर्शन निज मे प्रगटाऊँ ।।
कुन्द कुन्द आचार्य देव के चरण पूज निज को ध्याऊँ।
सब सिद्धो को वदनकर ध्रुव अचल सु अनुपमगति पाऊँ ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री कुन्द कुन्द आचार्यदेव जन्मजरामृत्युविनाशनाय जल नि ।

समयसार वैभव चन्दन से निज सुगन्ध को विकसाऊँ।
३''वत्थु सहावो धम्मो'' सम्यकज्ञान सूर्य को प्रगटाऊँ ।।कुन्द।।२।।

ॐ ह्रीं श्री कुन्द कुन्द आचार्यदेव ससारतापविनाशनाय चन्दन नि ।

समयसार वैभव के उत्तम अक्षत गुण निज मे लाऊँ।
४ ''चारित्त खलु धम्मो'' सम्यकचारित रथ पर चढ जाऊँ।।कुन्द ।।३।।

---

१ परिणामो से बन्ध परिणामो से मोक्ष होता है
२ धर्म का मूल सम्यकदर्शन है (अष्टपाहुड)
३ वस्तु स्वभाव ही धर्म है-
४ चारित्र ही धर्म है (प्रवचनसार गाथा७)

जीव शुद्ध है किन्तु विकारी है अजीव के सग पर्याय है।
जड पुद्गल कर्मों की छाया मे पाता भव दुख समुदाय ॥

ॐ ह्रीं श्री कुन्द कुन्द आचार्यदेव अक्षयपद प्राप्तये अक्षत नि ।

समयसार वैभव के पावन पुष्पों में मैं रम जाऊँ।
५''दाणं पूजा मुक्खयसावयधम्मो''शीलस्वगुण पाऊँ॥
कुन्द कुन्द आचार्य देव के चरण पूज निज को ध्याऊँ।
सब सिद्धो को वदनकर ध्रुव अचल सु अनुपमगति पाऊँ ॥४॥

ॐ ह्रीं श्री कुन्द कुन्द आचार्यदेवाय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि ।

समयसार वैभव के मनभावन नैवेद्य हृदय लाऊँ।
६ ''जो जाणदि अरिहंतं'' जिनज्ञायक स्वभाव आश्रय पाऊँ॥कुन्द.॥५॥

ॐ ह्रीं श्री कुन्द कुन्द आचार्यदेवाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य नि ।

समयसार वैभव के ज्योतिर्मय दीपक उर में लाऊँ।
७''दसण भट्टा-भट्टा'' मिथ्या मोह तिमिर हर सुख पाऊँ॥कुन्द॥६॥

ॐ ह्रीं श्री कुन्द कुन्द चार्यदेवाय-मोहान्धकाय विनाशनाय दीप नि ।

समयसार वैभव का शुचिमय ध्यान धूप उर मे ध्याऊँ।
८''ववहारोभ्भूयत्थो'' निश्चय आश्रित हो शिव पद पाऊँ॥कुन्द ॥७॥

ॐ ह्रीं श्री कुन्द कुन्द आचार्यदेवाय अष्टकर्मविध्वसनाय धूप नि ।

समयसार वैभव के भव्य अपूर्व मनोरम फल पाऊँ।
९''णियम मोक्ख उवायो'' द्वारा महामोक्ष पद प्रगटाऊँ॥कुन्द.॥८॥

ॐ ह्रीं श्री कुन्द कुन्द आचार्यदेवाय महामोक्षफल प्राप्ताय अर्घ्य नि ।

समयसार वैभव का निर्मल भाव अर्घ उर में लाऊँ।
१०''अहमिक्कोखलुसुद्धो चिंतनकर अनर्घपद को पाऊँ॥कन्द ॥९॥

ॐ ह्रीं श्री कुन्द कुन्द आचार्यदेवाय अनर्घ्यपद प्राप्ताय फल नि ।

जयमाला

मगलमय भगवान वीर प्रभु मगलमय गौतम गणधर।
मगलमय श्री कुन्द-कुन्द मुनि,मगल जैन धर्म सुखकर ॥१॥
कन्नड प्रांत बडा दक्षिण में कोण्ड कुण्ड था ग्राम अपूर्व।
कुन्दकुन्द ने जन्म लिया था दो सहस्त्र वर्षों के पूर्व ॥२॥

---

५ श्रावक धर्म मे दान पूजा मुख्य है (समयसार गाथा १०)
६ जो अरहन्तों को जानता है। (प्रवचन सार गाथा ८०)

यह निकृष्ट पर परिणति तुझको नर्क निगोद बताएगी।
सर्वोत्कृष्ट स्वय की परिणति तुझे मोक्ष ले जाएगी ॥

ग्यारह वर्ष आयु थी जब तुमने स्वामी वैराग्य लिया।
श्रेष्ठ महाव्रत धारण करके मुनिपद का सौभाग्य लिया ॥३॥
एक दिवस जगल मे बैठे घोर तपस्या मे थे लीन।
कचन सी काया तपती थी आतम ध्यान मे थे तल्लीन ॥४॥
उसी समय इक पूर्व जन्म का मित्र देव व्यन्तर आया।
देख तपरया रत भू पर आ श्रद्धा से मस्तक नाया ॥५॥
ध्यान पूर्ण होने पर मुनि ने जब अपनी आखे खोली।
देखा देव पास बैठा है वोले तब हित मित बोली ॥६॥
धर्म वृद्धि हो, धर्म वृद्धि हो, धर्म वृद्धि हो तुम हो कौन।
हर्षित पुलकित गद् गद् होकर तोडा तब व्यतर ने मौन ॥७॥
नमस्कार कर भक्ति भाव से पूर्व जन्म का दे परिचय।
पिछले भव मे परम मित्र थे क्षमा करे मेरी अविनय ॥८॥
सीमधर स्वामी के दर्शन को विदेह भू जाता हूँ।
यही प्रार्थना चले आप भी नम्र विनय मन लाता हूँ ॥९॥
चिर इच्छा साकर हुई मुनिवर ने स्वर्ण समय जाना।
बोले श्री जिनवाणी सुनकर मुझे लौट भारत आना ॥१०॥
मुनि को साथ लिया उसने आकाश मार्ग से गमन किया।
तीर्थकर सर्वज्ञ देव को जा विदेह मे नमन किया ॥११॥
सीमधर के समवशरण को देखा मन मे हर्षाये।
जन्म जन्म के पातक क्षय कर अनुपम ज्ञान रत्न पाये ॥१२॥
सीमधर प्रभु के चरणो मे झुककर किया विनय वन्दन।
प्रभु की शातमधुर छवि लखकर धन्य हुए भारत नन्दन ॥१३॥
प्रभु से प्रश्न हुआ लघु मुनिवर कौन कहाँ से आये है।
खिरी दिव्य ध्वनि कुन्द कुन्द मुनि भरत क्षेत्र से आये है ॥१४॥

---

७ जो पुरुष दर्शन से भ्रष्ट है वे भ्रष्ट है (अष्टपाहुड-३)
८ व्यवहारनय -अभूतार्थ है। (समयसार गाथा - ११)
९ नियम (रत्नत्रय रूप) मोक्ष का उपाय है। (नियमसार गाथा-४)
१० मै निश्चय से एक हूँ शुद्ध हूँ (समयसार गाथा १८ ७३)

मै निर्विकल्प हू शुद्ध बुद्ध, इतना ही अगीकार करो।
शुद्धपयोग मय परम पारिणामिक स्वभाव स्वीकार करो ॥

सीमधर ने दिव्य ध्वनि मे कुन्दकुन्द का नाम लिया।
भव भव के अघ नष्ट हो गये मुनि ने विनय प्रणाम किया ॥१५॥
विनयी होकर कुन्द कुन्द ने जिनवाणी का पान किया।
अष्ट दिवस रह समवशरण मे द्वादशाग का ज्ञान लिया ॥१६॥
अक्षय ज्ञान उदधि मन मे भर और हृदय मे प्रभु का नाम।
सीमंधर तीर्थकर प्रभु को करके बारम्बार प्रणाम ॥१७॥
फिर विदेह से चले और नभ पथ से भारत मे आये।
तीर्थकर वाणी का सागर मन मन्दिर मे लहराये ॥१८॥
जो सुनकर आये जिनवाणी फिर उसको लिपि रुप दिया।
जगत जीव कल्याण करे निज, ऐसा शास्त्र स्वरूप दिया ॥१९॥
राग मात्र को हेय बताया उपादेय निज शुद्धातम।
भाव शुभाशुभ का अभाव कर होता चेतन परमातम ॥२०॥
समयसार मे निश्चय नय का पावन मय सदेश भरा।
श्री पचास्तिकाय को रचकर द्रव्य तत्व उपदेश भरा ॥२१॥
प्रवचनसार बनाया तुमने भेदज्ञान को बतलाया।
मूलाचार लिखा मुनिजन हित साधु मार्ग को दर्शाया ॥२२॥
नियमसार को रचना अनुपम रयणसार गूथा चितलाय।
लघु सामाजिक पाठ बनाया लिखा सिद्धप्राभूत सुखदाय ॥२३॥
श्री अष्टपाहुड षट्प्राभूत द्वादशानुप्रेक्षा के बोल।
चौरासी पाहुड लिक्खे जो अज्ञात नही हमको अनमोल ॥२४॥
ताड पत्र पर लिखे ग्रथ तब सफल हुई चिर अभिलाषा।
जन जन की वाणी कल्याणी धन्य हुई प्राकृत भाषा ॥२५॥
जीवो को प्रति करुणा जागी मोक्ष मार्ग उपदेश दिया।
और तपस्या भूमि बनाकर गिरि कुन्द्रादि पवित्र किया ॥२६॥
अमृतचन्द्राचार्य देव की टीका आत्मख्याति विख्यात।
पद्मप्रभ मलधारि देव की टीका नियमसार प्रख्यात ॥२७॥
श्री जयसेनाचार्य रचित तात्पर्यवृत्ति टीका पावन।
श्री कानजी स्वामी के भी अनुपम समयसार प्रवचन ॥२८॥

जो स्वरूप वेत्ता होता है, वही भाव श्रुत जल पीता है।
सर्व द्रव्य गुण पर्यायो को, जान अमर जीवन जीता है ।।

पद्मनन्दि गुरु बक्रग्रीव मुनि एलाचार्य आपके नाम ।
गृद्धपिच्छ आचार्य यतीश्वर कुन्द कुन्द हे गुण के धाम ।।२९।।
हे आचार्य आपके गुण वर्णन करने की शक्ति नही ।
पथ पर चलें आपके ऐसी भी तो अभी विरक्ति नहीं ।।३०।।
भक्ति विनय के सुमन आपके चरणो मे अर्पित है देव ।
भव्य भावना यही एक दिन मैं सर्वज्ञ बनूँ स्वयमेव ।।३१।।
११"जीवादी सद्दहणं सम्पत्तं" पाऊँ प्रभु करूँ प्रणाम ।
इन चरणो की पूजन का फल पाऊँ सिद्धपुरी का धाम ।।३२।।

ॐ ह्रीं श्री कुन्दकुन्दआचार्यदेवाय अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं नि स्वाहा।

कुन्द कुन्द मुनि के वचन भाव सहित उरधार ।
जिन आतम जो ध्यावते पाते ज्ञान अपार ।।

इत्याशीर्वाद

जाप्यमन्त्र - ॐ ह्रीं श्री कुन्दकुन्दाचार्य देवाय नम ।

卐

श्री जिनवाणी पूजन

जय जय श्री जिनवाणी जय जग कल्याणी जय जय जय ।
तीर्थकर की दिव्यध्वनि जय, गुरु गणधर गुम्फित जय जय ।।
स्याद्वाद पीयूषमयी जय लोकालोक प्रकाशमयी ।
द्वादशाग श्रुत ज्ञानमयी जय वीतराग ज्ञानमयी ।।
श्री जिनवाणी के प्रताप से मै अनादि मिथ्यात्व हरूँ ।
श्री जिनवाणी मस्तक धारूँ बारम्बार प्रणाम करूँ ।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूत सरस्वती वाग्वादिनि अत्र अवतर अवतर संवौषट,
अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ अत्रमम् सन्निहितो भव भव वषट ।

मिथ्यात्वकलुषता के कारण पाया ना बिन्दु समताजल का ।
अपने ज्ञायकस्वभाव का भी अब तक प्रतिभास नही झलका ।।
मै श्री जिनवाणी चरणो मे मिथ्यातम हरने आया हूँ ।
श्री महावीर की दिव्यध्वनि हृदयगम करने आया हूँ ।।मै श्री ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री मुखोद्भव सरस्वतीदेव्यै जन्म जरा मृत्यु विनाशनाए जल नि ।

११ *जीवादि पदार्थों का श्रद्धान सम्यकदर्शन है (समयसार १५५)*

धर्मध्यान का किया आचरण, अगर प्रशसा के हित है।
तो अज्ञानी जन को ठगने, मे तू हुआ दत्त चित्त है ।।

श्रद्धा विपरीत रहो मेरी निज पर का ज्ञान नहीं आया ।
चन्दन सम शीतलता मय हूं इतना भी ध्यान नहीं आया ।।मैं श्री ।।२।।
ॐ ह्रीं श्री मुखोद्भूत सरस्वतीदेव्यै ससार ताप विनाशनाए चन्दन नि ।
यह आधि व्याधि पर की उपाधि भव भ्रमण बढाती आई है।
अक्षय अखड निज की समाधि अबतक न भी भी पाई है ।।
मै श्री जिनवाणी चरणो में मिथ्यातम हरने आया हूँ।
श्री महावीर की दिव्यध्वनि हृदयगम करने आया हूँ ।।३।।
ॐ ही श्री मुखोद्भूत सरस्वतीदेव्यै अक्षय पद प्राप्ताय अक्षत नि ।
एकत्व बुद्धि करके पर मे कर्त्तापन का अभियान किया ।
मै निज का कर्ता भोक्ता हूँ ऐसा न कभी भी मान किया ।।मै श्री ।।४।।
ॐ ह्रीं श्री मुखोद्भूत सरस्वतीदेव्यै कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि ।
यह माया अनन्तानुबन्धी प्रति समय जाल उलझाती है।
चारो कषाय की यह तृष्णा उलझन न कभी सुलझाती है ।।मै श्री।।५।।
ॐ ह्रीं श्री मुखोद्भूत सरस्वतीदेव्यै क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि ।
तत्वो के सम्यक् निर्णय बिन श्रद्धा की ज्योति न जल पाई ।
अज्ञान अधेरा हटा नही सन्मार्ग न देता दिखलाई ।।मै श्री ।।६।।
ॐ ह्रीं श्री मुखोद्भूत सरस्वतीदेव्यै मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि ।
होकर अनन्त गुण का स्वामी, पर का ही दास रहा अबतक ।
निजगुण की सुरभि नही भाई भवदधि में कष्टसहा अबतक।।मै श्री।।७।।
ॐ ह्री श्री मुखोद्भूत सरस्वतीदेव्यै अष्टकर्म विध्वन्सनाय धूप नि ।
मै तीन लोक का नाथ पुण्य धूल के पीछे पागल हूँ।
चिन्तामणि रत्न छोडकर मै रागो मे आकुल-व्याकुल हूँ।।मै श्री ।।८।।
ॐ ह्रीं श्री मुखोद्भूत सरस्वतीदेव्यै महा मोक्ष फल प्राप्तये फल नि ।
अब तक का जितना पुण्य शेष हर्षित हो अर्पण करता हूँ।
अनुपम अनर्घ पद पा जाऊ मैं यही भावना भरता हूँ ।।मै श्री ।।९।।
ॐ ह्रीं श्री मुखोद्भूत सरस्वतीदेव्यै अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्य नि ।

जयमाला

जय जय जयओकार दिव्यध्वनि योगीजननित करते ध्यान ।
मोहतिमिर मिथ्यात्व विनाशक ज्ञान प्रकाशक सूर्य समान ।।१।।

जीवन दृश्य बदल जाएगा, जब देखेगा निज की ओर।
अघ के बादल विघट जाएगे हो जाएगी समकित भोर ।।

वस्तु स्वरूप प्रकाशक निज पर भेद ज्ञान की ज्योति महान ।
सप्तभग, स्याद्वाद नयाश्रित द्वादशाग श्रुत ज्ञान प्रमाण ।।२।।
द्वादश अग पूर्व चौदह परिकर्म सूत्र से शोभित है।
पच चूलिका चौ अनुयोग प्रकीर्णक चौदह भूषित है ।।३।।
जय जय आचारग प्रथम जय सूत्रकृताग द्वितीय नमन ।
स्थानाग तृतीय नमन जय चौथा समवायाग नमन ।।४।।
जय व्याख्याप्रज्ञप्ति पाचवा षष्टम् ज्ञातृधर्मकथाग ।
उपासकाध्ययनाग सातवा अष्टम् अन्त कृतदशाग ।।५।।
अनुत्तरोत्पादकदशाग नौ प्रश्न व्याकरणअग दशम् ।
जय विपाकसूत्राग ग्यारहवा दृष्टिवाद द्वादशम् परम् ।।६।।
दृष्टिवाद के चौदह भेद रुप है चौदह पूर्व महान ।
ग्यारह अगपूर्व नौ तक का द्रव्यलिगि कर सकता ज्ञान ।।७।।
पहला है उत्पाद पूर्व दूजा अग्रायणीय जानो ।
तीजा है वीर्यानुवाद चौथा है अस्तिनास्ति मानो ।।८।।
पचम ज्ञानप्रवाद कि षष्टम सत्यप्रवाद पूर्व जानो ।
सप्तम् आत्मप्रवाद, आठवा कर्मप्रवाद पूर्व मानो ।।९।।
नवमा प्रत्याख्यानप्रवाद सु दशवा विद्यानुवाद जान ।
ग्यारहवा कल्याणवाद रहरवा प्राणानुवाद महान ।।१०।।
तेरहवा क्रियाविशाल चौदहवा लोकबिन्दु है सार ।
अग प्रविष्ट अरु अग बाह्य के भेद प्रभेद सदा सुखकार ।।११।।
दृष्टिवाद का भेद पॉचवा पच चूलिका नाम यथा ।
जलगत थलगत मायागत अरु रुपगता आकाशगता ।।१२।।
पाच भेद परिकर्म उपाग के प्रथम इन्द्र प्रज्ञप्ति महान ।
दूजा सूर्यप्रज्ञप्ति तीसरा जन्बूद्वीपप्रज्ञप्ति प्रधान ।।१३।।
चौथा द्वीप-समूह प्रज्ञप्ति पचम व्याख्या प्रज्ञप्ति जान ।
सूत्र आदि अनुयोग अनेको है उपाग धन धन श्रुत जान ।।१४।।
तत्वो के सम्यक् निर्णय से होता शुद्धातम का ज्ञान ।
सरस्वती मॉ के आश्रय से होता है शाश्वत कल्याण ।।१५।।

जिस दिन तू मिथ्यात्व भाव को कर देगा पूरा विध्वस।
प्रकट स्वरूपाचरण करेगा पाकर पूर्ण ज्ञान का अश ॥

इसीलिए जिनवाणी का अध्ययन चिंतवन मैं कर लूं।
काल लब्धि पाकर अनादि अज्ञान निविडतम को हरलूँ ॥१६॥
नव पदार्थ छद द्रव्य काल त्रय सात तत्व को मै जानूँ।
तीन लोक पचास्तिकाय छह लेश्याओ को पहचानूँ॥१७॥
षट्कायक का दया पालकर समिति गुप्तिव्रत को पालूँ।
द्रव्यभाव चारित्र धार कर तप सयम को अपना लूँ ॥१८॥
जिन स्वभाव मे लीन रहूँ मै निज स्वरूप में मुस्काऊँ।
क्रम-क्रम से मै चार घातिया नाश करूँ निज पद पाऊँ ॥१९॥
प्राप्त चतुर्दश गुणस्थान कर पूर्ण अयोगी बन जाऊँ।
निज सिद्धत्व प्रगट कर सिद्धशिला पर सिद्धस्वपद पाऊँ ॥२०॥
यह मानव पर्याय धन्य हो जाये माँ ऐसा बल दो।
सम्यकदर्शन ज्ञान चरित रत्नत्रय पावन निर्मल दो ॥२१॥
भव्य भावना जगा हृदय में जीवन मंगलमय कर दो।
हे जिनवाणी माता मेरा अन्तर ज्योतिर्मय कर दो ॥२२॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्‌भव सरस्वतीदेव्यै पूर्णार्घ्यं नि ।

जिनवाणी का सार भेद-ज्ञान सुखकार।
जो अन्तर मे धारते हो जाते भवपार ॥

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्‌भूत श्रुतज्ञानाय नम ।

卐

श्री समयसार पूजन

जय जय जय ग्रन्थाधिराज श्री समयसार जिन श्रुत बन्दन।
कुन्द कुन्द आचार्य रचित परमागम को सादर वन्दन ॥
द्वादशाग जिनवाणी का है इसमे सार परम पावन।
आत्म तत्व की सहज प्राप्ति का है अपूर्व अनुपम साधन ॥
सीमधर प्रभु को दिव्य ध्वनि इसमे गूंज रही प्रतिक्षण।
इसको हृदयगम करते ही हो जाता सम्यकदर्शन ॥
समयसार का सार प्राप्त कर सफल करूँ मानव जीवन।
सब सिद्धो का वन्दन करके करता विनय सहित पूजन ॥

ॐ ह्रीं श्री परमागमसमयसाराय पुष्पांजलि क्षिपामि ।

जिनमत की परिपाटी में पहले सम्यक्दर्शन होता।
फिर स्वशक्ति अनुसार जीव को व्रत सयम तप धन होता।।

जिन स्वरूप को भूल आज तक चारों गति में किया भ्रमण।
जन्म मरण क्षय करने को अब निज में करूँ रमण ।।
समयसार का करूँ अध्ययन समयसार का करूँ मनन।
कारण समयसार को ध्याऊँ समयसार को करूँ नमन ।।१।।
ॐ ह्रीं श्री परमागमसमयसाराय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जल नि ।
भव ज्वाला में प्रतिफल जल जल करता रहा करुण क्रन्दन।
निज स्वभाव ध्रुव का आश्रय लेकाटूँगा जग में बंधन ।।समय।।२।।
ॐ ह्रीं श्री परमागमसमयसाराय ससारतापविनाशनाय चन्दन नि ।
पुष्प पाप के मोह जाल मे बढी सदा भव की उलझन।
संवरभाव जगा उर मे तो, भव समुद्र का हुआ पतन ।।समय।।३।।
ॐ ह्रीं श्री परमागमसमयसाराय अक्षयपद प्राप्तये अक्षत नि ।
कामभोग बन्धन की कथनी सुनी अनन्तो बार सघन।
चिर परिचित जिनश्रुत अनुभूति न जागी मेरेअतर्मन ।।समय।।४।।
ॐ ह्रीं श्री परमागमसमयसाराय कामबाणविध्वशनाय पुष्प नि ।
क्षुधारोग की औषधि पाने का न किया है कभी जतन।
आत्मभान करते ही महका वीतरागता का उपवन ।।समय।।५।।
ॐ ह्रीं श्री परमागमसमयसाराय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य नि ।
भ्रम अज्ञान तिमिर के कारण पर मे माना अपनापन।
सत्यबोध होते ही पाई ज्ञान सूर्य की दिव्य किरण ।।समय।।६।।
ॐ ह्रीं श्री परमागमसमयसाराय मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि ।
आर्त रौद्रध्यानो मे पडकर पर भावो मे रहा मगन।
शुचितमय ध्यान धूप देखी तो धर्मध्यान की लगी लगन ।।समय।।७।।
ॐ ह्रीं श्री परमागमसमयसाराय अष्टकर्म विनाशनाय धूप नि ।
भव तरु के विषमय फल खाकर करता आया भाव मरण।
सिद्ध स्वपद की चाहजगी तो यह पर्याय हुई धन धन ।।समय।।८।।
ॐ ह्रीं श्री परमागमसमयसाराय महामोक्षफल प्राप्तये फल नि ।
आश्रव बधभाव का कारण मिटा राग का एक न कण।
द्रव्य दृष्टि बनते ही पाया निज अनर्घ पद का दर्शन ।।समय.।।९।।
ॐ ह्रीं श्री परमागमसमयसाराय अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्य नि स्वाहा।

दिव्य ध्वनि की अविच्छिन्न धारा मे आती है यह बात।
ध्रुव स्वभाव आश्रय से होता है प्रारम्भ नवीन प्रभात ॥

जयमाला

समयसार के ग्रन्थ की महिमा अगम अपार।
निश्चयनय भूतार्थ है अभूतार्थ व्यवहार ॥१॥

दुर्भय तिमिर निवारण कारण समयसार को करूँ प्रणाम।
हूँ अबद्धस्पृष्ट नियत अविशेष अनन्य मुक्ति का धाम ॥२॥
सप्त तत्व अरूँ नव पदार्थ का इसमें सुन्दर वर्णन है।
जो भूतार्थ आश्रय लेता पाता सम्यकदर्शन है॥३॥
जीव अजीव अधिकार प्रथम में भेदज्ञान की ज्योति प्रधान।
१"जो परस्सदि अप्पाण णियद", हो जाता सर्वज्ञ महान ॥४॥
कर्ता कर्म अधिकार समझकर कर्ता बुद्धि विनाश करूँ।
२"सम्मद्दसण णाणं एसो" निज शुद्धात्म प्रकाश करूँ ॥५॥
पुण्य पाप अधिकार जान दोनों से भेद नही मानूँ।
ये विभाव परिणति से है उत्पन्न बंधमय ही जानूँ ॥६॥
३"रत्तो बधदि कम्म", जानू उर विराग ले कर्म हरूँ।
राग शुभाशुभ का निषेध कर निज स्वरूप को प्राप्त करूँ ॥७॥
मै आश्रव अधिकार जानकर राग द्वेष अरु मोह हरूँ।
भिन्न द्रव्य आश्रव से होकर भावाश्रव को नष्ट करूँ ॥८॥
मै सवर अधिकार समझकर सवरमय ही भाव करूँ।
४"अप्पाण झायतो" दर्शन ज्ञानमयी निज भाव करूँ ॥९॥
मै अधिकार निर्जरा जानू पूर्ण निर्जरावन्त बनूँ।
पूर्व उदय से सम रहकर मै चेतन ज्ञायक मात्र वमू ॥१०॥
५"अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो" सारे कर्म झराऊँगा।
मै रतिवन्त ज्ञान मे होकर शाश्वत शिव सुख पाऊगा ॥११॥
बन्ध अधिकार बन्ध की हो तो सकल प्रक्रिया बतलाता।
बिन समकित जप तप व्रत समय बध मार्ग है कहलाता ॥१२॥

---

१ *अपनी आत्मा को-नियतदेखता है (समयसार गाथा १५)*
२ *सम्यकदर्शन ज्ञान ऐसी सज्ञा मिलती है। (स सा गाथा १४४)*
३ *रागी जीव कर्म बाधता है (स सा गाथा १५०)*
४ *आत्मा को ध्याता हुआ (स सा गाथा १८६)*
५ *अनिच्छुक को अपरिगृही कहा है (स सार गाथा २१०, २११, २१२, २१)*

जीवन तरु तो आयु कर्म के बल पर ही हरियाता है।
जब यह आयु पूर्ण होती है तो पल मे मुरझाता है ।।

राग द्वेष भावों से विरहित जीवबन्ध से रहता दूर।
६ ''णिच्छय णया सिदापुणमुणिणो'' अष्टकर्म करता चकचूर।।१३।।
जान मोक्ष अधिकार शीघ्र ही नष्ट करुवि षकुम्भवि भाव।
आत्म स्वरूप प्रकाशित करके प्रगटाऊ परिपूर्ण स्वभाव ।।१४।।
शुद्ध आत्म ग्रहण करूँ मैं सर्वबध का कर छेदन।
निशकित हो कर पाऊगा मुक्ति शिला का सिहासन ।।१५।।
सर्व विशुद्ध ज्ञान का है अधिकार अपूर्ण अमूल्य महान।
पर कर्त्तव्य नष्ट हो जाता होता शिव पथ पर अभियान ।।६।।
कर्म फलो को मूढ भोगता ज्ञानी उनका ज्ञाता है।
इसीलिए अज्ञानी दुख पाता ज्ञानी सुख पाता है ।।१७।।
भाव वासना नौ अधिकारो से कर निज मे वास करूँ।
७ ''मिच्छत्त अविरमण कसाय जोग'' की सत्ता नाशकरूँ ।।१८।।
कुन्दकुन्द ने समयसार मन्दिर का किया दिव्य निर्वाण।
वीतराग सर्वज्ञ देव की दिव्य ध्वनि का इसमे ज्ञान ।।१९।।
सर्व चार सौ पन्द्रह गाथाए प्राकृत भाषा मे जान।
सारभूत निज समयसार का ही अनुभव लू भव्य महान ।।२०।।
अमृतचन्द्राचार्य देव ने आत्मख्याति टीका लिखकर।
कलश चढाये दो सौ अठहत्तर स्वर्णिम अनुपम सुन्दर ।।२१।।
श्री जयसेनाचार्य स्वामी की तात्पर्यवृत्ति टीका।
ऋषि मुनि विद्वानो ने लिक्खा वर्णन समयसार जी का ।।२२।।
ज्ञानी ध्यानी मुनियो ने भी तोरण द्वार सजाये है।
समयसार के मधुर गीत गा वन्दनवार चढाये है।।२३।।
भिन्न भिन्न भाषाओ मे इसके अनुवाद हुए सुन्दर।
काव्य अनेको लिखे गये है समयसार जी पर मनहर ।।२४।।
श्री कानजीस्वामी ने भी करके समयसार प्रवचन।
समयसार मन्दिर पर सविनय हर्षित किया ध्वाजारोहण ।।२५।।

६ *निश्चय नयाश्रित मुनि मोक्ष प्राप्त करते है। (स सा गा २७२)*
७ *मिथ्यात्व अविरत कषाय योग ये आश्रव है। (स सा गाथा १६४)*

जब निज स्वभाव परिणति की धारा अजत्र बहती है।
अन्तर्मन मे सिद्धो की पावन गरिमा रहती है ।।

समयसार पढ सम्यकदर्शन ज्ञान चरित्र प्रगटाऊँगा ।
''तिव्व मंद सहावं'' क्षयकर-वीतराग पद पाऊँगा ।।२६।।
पंच परावर्तन अभाव कर सिद्ध लोक में जाऊँगा ।
काल लब्धि आई है मेरी परम मोक्ष पद पाऊँगा ।।२७।।
भक्ति भाव से समयसार की मैंने पूजन की है देव ।
कारण समयसार की महिमा उरमें जाग उठी स्वयमेव ।।२८।।
नम समयसाराय स्वानुभव ज्ञान चेतनामयी परम ।
एक शुद्ध टंकोत्कीर्ण, चिन्मात्र पूर्ण चिद्रूप स्वयम् ।।२९।।
नय पक्षो से रहित आत्मा ही है समयसार भगवान ।
समयसार ही सम्यकदर्शन समयसार ही सम्यकज्ञान ।।३०।।

ॐ ह्रीं श्री परमागम समयसाराय पूर्णार्घ्यं नि ।

समयसार के भाव को जो लेते उर धार ।
निज अनुभव को प्राप्तकर हो जाते भवपार ।।

इत्याशीर्वाद

जाप्यमंत्र - ॐ ह्रीं श्री परमागम समयसाराय नम ।

卐

श्री भक्तामरस्तोत्र पूजन

जय जयति जय स्तोत्र भक्तामर परम सुख कारणम्।
जय ऋषभदेव जिनेन्द्र जय जय जय भवोदधितारणम् ।।
जय वीतराग महान जिनपति विश्वबन्ध महेश्वरम् ।
जय आदिदेव सु महादेव सुपूज्य प्रभु परमेश्वरम् ।।
जय ज्ञान सूर्य अनन्त गुणपति आदिनाथ जिनेश्वरम् ।
जय मानतुग मुनीश पूजित प्रथम जिन तीर्थेश्वरम् ।।
मै भावपूर्वक करूँ पूजन स्वपद ज्ञान प्रकाशकम् ।
दो भेदज्ञान महान अनुपम अष्टकर्म विनाशनम् ।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथ जिनेन्द्र अत्र अवतर अवतर सवौषट्, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ । अत्रमम् सन्निहितो भव भव वषट् ।

इस मनुष्य भव रुपीनंदन वन मे रत्नत्रय के फूल।
पर अज्ञानी चुनता रहता है अधर्म के दुखमय शूल।।

जन्म मरण भयहारी स्वामी, आदिनाथ प्रभु को वंदन।
त्रिविध दोष ज्वर हरने को, चरणों में जल करता अर्पण।।
ऋषभदेव के चरणकमल में, मन वच काया सहित प्रणाम।
भक्तामर स्तोत्र पाठकर, मै पाऊँ निज में विश्राम।।१।।

ॐ हीं श्री वृषभनाथ जिनेन्द्र अत्र अवतर अवतर सवौषट्, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ। अत्रमम् सन्निहितो भव भव वषट।

जन्म मरण भयहारी स्वामी, आदिनाथ प्रभु को वदन।
त्रिविध दोष ज्वर हरने को, चरणो मे जल करता अर्पण।।

ॐ हीं श्री वृषभनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल नि।

भव आताप विनाशक स्वामी आदिनाथ प्रभु को वन्दन।
भवदावानल शीतल करने चन्दन करता हूँ अर्पण।।ऋषभ।।२।।

ॐ ही श्री वृषभनाथ जिनेन्द्राय ससारताप विनाशनाय चन्दन नि।

भव समुद्र उद्धारक स्वामी आदिनाथ प्रभु को वन्दन।
अक्षय पद की प्राप्ति हेतु प्रभुअक्षत करता हूँ अर्पण।।ऋषभ।।३।।

ॐ हीं श्री वृषभनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षत नि।

काम व्यथा सहारक स्वामी आदिनाथ प्रभु को वन्दन।
मै कन्दर्प दर्प हरने को सहज पुष्प करता अर्पण।।ऋषभ.।।४।।

ॐ हीं श्री वृषभनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि।

क्षुधा रोग के नाशक स्वामी आदिनाथ प्रभु को वन्दन।
अब अनादि क्षुधा मिटाऊँ प्रभु नैवेद्य करूँ अर्पण।।ऋषभ।।५।।

ॐ हीं श्री वृषभनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि।

स्वपर प्रकाशक ज्ञान ज्योतिमय आदिनाथ प्रभु को बदन।
मोह तिमिर अज्ञान हटाने दीपक चरणो मे अर्पण।।ऋषभ।।६।।

ॐ ही श्री वृषभनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीप नि।

कर्म व्यथा के नाशक स्वामी आदिनाथ प्रभु को वदन।
अष्ट कर्म विध्वस हेतु भावो की धूप करूँ अर्पण।।ऋषभ।।७।।

ॐ ही श्री वृषभनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूप नि।

नित्य निरंजन महामोक्ष पति आदिनाथ प्रभु को वदन।
मोक्ष सुफल पाने को स्वामी चरणो मे फल है अर्पण।।ऋषभ।।८।।

ॐ हीं श्री वृषभनाथ जिनेन्द्राय महा मोक्षफल प्राप्तये फल नि।

जल गधाक्षत पुष्प सुचरु दीप धूप फल अर्घ सुमन ।
पद अनर्घ पाने को स्वामी चरणो सादर अर्पण ॥
ऋषभदेव के चरणकमल मे, मन वच काया सहित प्रणाम ।
भक्तामर स्तोत्र पाठकर, मै पाऊँ निज में विश्राम ॥९॥
ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथ जिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं नि ।

जयमाला

वृषभाकित जिनराज पद वन्दू बारम्बार ।
वृषभदेव परमात्मा परम सौख्य आधार ॥१॥

भक्तामर की यशोपताका फहराते है साधु भक्त जन ।
भाव पूर्वक मात्र कट जाते सब सकट तत्क्षण ॥२॥
भक्तामर रच मानतुग ने निजपर का कल्याण किया था ।
अडतालीस काव्यरचनाकर शुभअमरत्व प्रदान किया था ॥३॥
नृपकारा से मुक्त हुए मुनि श्रुतउपदेश महान दिया था ।
आदिनाथ की स्तुति करके निजस्वरूप का ध्यान किया था॥४॥
मै भी प्रभु की महिमा गाकर भावपुष्प करता हूँ अर्पण ।
त्रैलोक्येश्वर महादेव जिन आदिदेव को सविनय वन्दन ॥५॥
नाभिराय मरुदेवी के सुत आदिनाथ तीर्थकर नामी ।
आज आपकी शरण प्राप्त अति हर्षित हूँ अन्तर्यामी ॥६॥
मैने कष्ट अनंतानन्त उठाये है अनादि से स्वामी ।
आत्मज्ञान बिन भटक रहा हूँ चारो गति में त्रिभुवननामी ॥७॥
नर सुर नारक पशुपर्यायो मे प्रभु मैने अति दुख पाये ।
जड पुद्गल तन अपना माना निजचैतन्य गीत ना गाये ॥८॥
कभी नर्क मे कभी स्वर्ग मे कभी निगोद आदि मे भटका ।
सुखाभास की आकाक्षा ले चार कषायो मे ही अटका ॥९॥
एक बार भी कभीभूलकर निजस्वरूप का किया न दर्शन ।
द्रव्यलिग भी धारा मैने किन्तु न भाया आत्म चिंतवन ॥१०॥

धर्म को आज तक हमने जाना नहीं। राग की रागिनी हम बजाते रहे।
अपनी शुद्धात्मा को तो माना नहीं॥ पुण्य के गीत ही गुनगुनाते रहे॥

आज सुअवसर मिला भाग्य से भक्तामर का पाठ सुनलिया।
शब्दअर्थ भावो को जाना निज चैतन्य स्वरूप गुन लिया॥११॥
अब मुझको विश्वास हो गया भव का अन्त निकट आया है।
भक्तामर का भाव हृदय में मेरे नाथ उमड आया है॥१२॥
भेद ज्ञान की निधि पाऊंगा स्वपर भेद विज्ञान करूँगा।
शुद्धात्मानुभूति के द्वारा अष्टकर्म अवसान करूँगा॥१३॥
इस पूजन का सम्यकफल प्रभु मुझको आप प्रदान करो अब।
केवलज्ञान सूर्य की पावन किरणो का प्रभु दान करो अब॥१४॥
क्रोधमान माया लोभादिक सर्व कषाय विनष्ट करूँ मैं।
वीतराग निज पद प्रगटाऊँ भव बन्धन के कष्ट हरूँ मै॥१५॥
स्वर्गादिक की नही कामना भौतिक सुख से नही प्रयोजन।
एक मात्र ज्ञायकस्वभाव निजका आश्रयलू हे भगवान॥१६॥
विषय भोग की अभिलाषाएँ पलक मारते चूर करूँ मै।
शाश्वत निज अखड पद पाऊँ पर भावो को दूर करूँ मै॥१७॥
मिथ्यात्वादिक पाप नष्ट कर सम्यकदर्शन को प्रगटाऊँ।
सम्यकज्ञान चरित्र शक्ति से घाति अघाति कर्म विघटाऊँ॥१८॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभदेवजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं नि स्वाहा।

भक्तामर स्तोत्र की महिमा अगम अपार।
भाव वासना जो करे हो जाएं भव पार॥

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्रीं श्री क्लीं अर्हं श्री वृषभनाथजिनेन्द्राय नम।

卐

श्री इन्द्रध्वज पूजन

मध्यलोक मे चार शतक अट्ठावन जिन चैत्यालय है।
तेरह द्वीपो मे अकृत्रिम पावन पूज्य जिनालय है॥
सर्व इन्द्र, इन्द्रध्वज पूजन करते बहु वैभव के साथ।
हर मन्दिर पर ध्वजा चढाते झुका त्रियोग पूर्वक माथ॥
मैं भी अष्ट द्रव्य ले स्वामी भक्ति सहित करता पूजन।
निज भावो की ध्वजा चढाऊँ मेटे पच परावर्तन॥

तन प्रमाण अपचार कथन है लोकप्रमाण कथल मूतार्थ।
जो मूतार्थ आश्रय लेता वह पाता शिवमय परमार्थ ॥

ॐ ह्री मध्यलोक तेरहद्वीपसम्बन्धी चारसौ अट्ठावन जिनालयस्थ शाश्वते जिनबिम्ब समूह अत्र अवतर अवतर स्वौषट् । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ अत्रमम् सन्निहितो भव भव वषट् ।

रत्न जडित कचन झारी में क्षीरोदधि का जल लाऊँ।
जन्म मरण भव रोग नशाऊ निज स्वभाव मे रमजाऊँ ॥
तेरह द्वीप चार सौ अट्ठावन जिन चैत्यालय बन्दूँ।
इन्द्रध्वज पूजन करके प्रभु शुद्धातम को अभिनन्दूँ ॥१॥

ॐ ह्रीं मध्यलोक तेरहद्वीपसम्बन्धी चारसौ अट्ठावन जिनालयस्थ शाश्वत् जिनबिम्बेभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल नि ।

मलयागिरि का बावन चंदन रजत कटोरी मे लाऊँ।
भव बाधा आताप नाश हित निज स्वभाव मे रमजाऊँ ॥तेरह.॥२॥

ॐ ह्री मध्यलोक तेरहद्वीपसम्बन्धी चारसौ अट्ठावन जिनालयस्थ शाश्वत जिनबिम्बेभ्यो ससारताप विनाशनाय चन्दन नि ।

उत्तम उज्ज्वल धवल अखण्डित तदुल चरणो मे लाऊँ।
अक्षय पद की प्राप्ति हेतु मैं निज स्वभाव मे रमजाऊँ ॥तेरह॥३॥

ॐ ह्रीं मध्यलोक तेरहद्वीपसम्बन्धी चारसौअट्ठावन जिनालयस्थ शाश्वत जिनबिम्बेभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षत नि ।

महा सुगन्धित शोभनीय बहु पीत पुष्प लेकर आऊ।
काम भाव पर जय पाने को निज स्वभाव मे रमजाऊ ॥तेरह ॥४॥

ॐ ह्री मध्यलोक तेरहद्वीपसम्बन्धी चारसौ अट्ठावन जिनालयस्थ शाश्वत् जिनबिम्बेभ्यो कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि ।

विविध भॉति के भाव पूर्ण नैवेद्य रम्य लेकर आऊ।
क्षुधा रोग का दोष मिटाने निज स्वभाव मे रमजाऊँ ॥तेरह ॥५॥

ॐ ह्री मध्यलोक तेरहद्वीपसम्बन्धी चारसौ अट्ठावन जिनालयस्थ शाश्वत् जिनबिम्बेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि ।

मोह तिमिर अज्ञान नाश करने को ज्ञान दीप लाऊँ।
मै अनादि मिथ्यात्व नष्टकर निज स्वभाव मे रमजाऊँ ॥तेरह॥६॥

ॐ ह्रीं मध्यलोक तेरहद्वीपसम्बन्धी चारसौ अट्ठावन जिनालयस्थ शाश्वत् जिनबिम्बेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि ।

क्रिया शुद्ध स्वानुभाव की हो तो प्रगटित होता सिद्ध स्वरूप।
दया दान पूजादि भाव की क्रिया मात्र ससार स्वरूप ॥

प्रकृति एक सौ अडतालीस कर्म की धूप बना लाऊ।
अष्टकर्म अरि क्षय करने को निज स्वभाव मे रमजाऊँ ॥
तेरह द्वीप चार सौ अट्ठावन जिन चैत्यालय बन्दूँ।
इन्द्रध्वज पूजन करके प्रभु शुद्धातम को अभिनन्दूँ ॥७॥

ॐ ह्रीं मध्यलोक तेरहद्धीपसम्बन्धी चारसौ अट्ठावन जिनालयस्थ शाश्वत जिनबिम्बेभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूप नि ।

रागद्वेष परिणति अभाव कर निजपरिणति के फलपाऊँ।
भव्य मोक्ष कल्याणक पाने निज स्वभाव में रमजाऊँ ॥तेरह॥८॥

ॐ ह्रीं मध्यलोक तेरहद्धीपसम्बन्धी चारसौ अट्ठावन जिनालयस्थ शाश्वत् जिनबिम्बेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फल नि ।

द्रव्यकर्म नोकर्म भावकर्मो को जीत अर्घ लाऊ।
देह मुक्त निज पद अनर्घ हित निज स्वभाव मे रम जाऊ ॥तेरह॥९॥

ॐ ह्रीं मध्यलोक तेरहद्धीपसम्बन्धी चारसौ अट्ठावन जिनालयस्थ शाश्वत जिनबिम्बेभ्यो अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्य नि ।

जयमाला

तेरह द्वीप महान के श्री जिन बिम्ब महान।
इन्द्रध्वज पूजन करूँ पाऊँ सुख निर्वाण ॥१॥

मेरु सुदर्शन, विजय, अचल, मंदिर, विद्यन्माली अभिराम।
भद्रशाल, सौमनस, पाडुक, नदनवन शोभित सुललाम ॥२॥

ढाई द्वीप मे पचमेरु के वन्दूअस्सी चैत्यालय।
विजयारध के एक शतक सत्तर वन्दू मै निज आलय ॥३॥

जम्बू वृक्ष पाच मै वन्दू शाल्मलि तरु के पॉच महान।
मानुषोत्तर चार और इष्वाकारो के चार प्रधान ॥४॥

वक्षारो के अस्सी वन्दू गजदन्तो के वन्दूँ बीस।
तीस कुलाचल के मै वन्दू श्रद्धा भाव सहित जगदीश ॥५॥
मनुज लोक के चार शतक मे दो कम चैत्यालय वन्दू।
ढाई द्वीप से आगे के द्वीपो मे साठ भवन वन्दू ॥६॥

इक शत त्रेसठ कोटिलाख चौरासी योजन नन्दीश्वर।
अष्टम द्वीप दिशा चारों में हैं कुल बावन जित मन्दिर ॥७॥
चारों दिशि में अंजनगिरि, दधिमुख, रतिकर, पर्वत सुन्दर।
देव सुरेन्द्र सदा पूजन वंदन करने आते सुखकर ॥८॥
कुण्डलगिरि है द्वीप तेरहवाँ चार चैत्यालय वन्दूँ।
द्वीप रुचकवर तेरहवें के चार जिनालय मै वन्दूँ ॥९॥
मध्यलोक तेरह द्वीपों में चार शतक अट्ठावन गृह।
एक-एक में एक शतक अरु आठ आठ प्रतिमा विग्रह ॥१०॥
अष्ट प्रतिहार्यो से शोभित रत्नमयी जिन बिम्ब प्रवर।
अष्ट-अष्ट मंगल द्रव्यो से है शोभायमान मनहर ॥११॥
उनन्चास सहस्त्र चार सौ चौंसठ जिन प्रतिमा पावन।
सभी अकृत्रिम है अनादि है परम पूज्य अति मन भावन ॥१२॥
एक शतक अरु अर्ध शतक योजन लम्बे चौडे जिन धाम।
पौन शतक योजन ऊँचे है भव्य गगनचुम्बी सुललाम ॥१३॥
उत्तम से आधे मध्यम इनसे आधे जघन्य विस्तार।
इन्द्र चढाते ध्वजा सुपूजन इन्द्रध्वज करते सुखकार ॥१४॥
उच्च शिखर पर दश चिन्हो के ध्वज फहराते है हर्षित।
अष्ट द्रव्य देवोपम चढाते है कर मस्तक नत ॥१५॥
माला, सिह, कमल, गज, अकुश, गरुड, मयूर, वृषभ के चित्र।
चकवा चकवी, हसचिन्ह, शोभित बहुरगी ध्वजापवित्र ॥१६॥
मेरु मन्दिरों पर माला का चिन्ह ध्वाजाओ मे होता।
विजयारध की सर्वध्वजाओ में तो वृषभ चिन्ह होता ॥१७॥
जंबूशाल्मलितरु के ध्वज पर अकुश चिन्ह सरल होते।
मानुषोत्तर इष्वाकारो के ध्वज गज शोभित होते ॥१८॥
वक्षारो के जिन मन्दिर पर गरुड चिन्ह के ध्वज होते।
गजदतो के चैत्यालय पर सिह विभूषित ध्वज होते ॥१९॥
सर्वकुलाचल के जिन गृह पर कमल चिन्ह के ध्वज होते।
नन्दीश्वर मे चकवा चकवी चिन्ह सुशोभित ध्वज होते ॥२०॥

कर्म विपाकोदय निमित्त पा होते रागद्धेष विभाव।
अज्ञानी उनमे रत होता मूल वीतरागी निज भाव ।।

कुण्डलवर गिरि मे मयूर के चिन्ह विभूषित ध्वज होते।
द्वीप रुचकवर गिरि मन्दिर पर हसचिन्ह के ध्वज होते ।।२१।।
महाध्वजा अरू क्षुद्र ध्वजाये पंचवर्ण की होती है।
जिन पूजन करने वालो के सर्व पाप मल धोती हैं।।२२।।
सुर सुरागना इन्द्र शची प्रभु गुण गाते हर्षाते है।
नाच नाचकर अरिहंतो के यश की गाथा गाते हैं।।२३।।
गीत नृत्य वाद्यो से झकृत हो जाते है तीनों लोक।
जय जयकार गूजता नभ मे पुलकित हो जाता सुरलोक ।।२४।।
इसीलिए इसको इन्द्रध्वज पूजन कहता है आगम।
पुण्य उदय जिनका हो वे ही प्रभु पूजन करते अनुपम ।।२५।।
इन्द्र महापूजा रचता है मध्यलोक में हितकारी।
अब मिथ्यात्व तिमिर हरने को मेरी है प्रभु तैयारी ।।२६।।
प्रभु दर्शन से निज आतम का जब दर्शन होगा स्वामी।
इस पूजा का सम्यक् फल तब मुझको भी होगा स्वामी ।।२७।।
एक दिवस ऐसा आयेगा शुद्ध भाव ही होगा पास।
पाप पुण्य परभाव नाश कर सिद्ध लोक में होगा बास ।।२८।।

ॐ ह्रीं मध्यलोक तेरहद्धीपसम्बन्धी चारसौअट्ठावन जिनालयस्थ शाश्वत जिनबिम्बेभ्यो पूर्णार्घ्य नि ।

भाव सहित जो इन्द्रध्वज की पूजन कर हर्षाते है।
निमिष मात्र मे उनके सकट सारे ही मिट जाते है ।।

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्रीं श्री मध्यलोक तेरह द्धीप सम्बन्धी चार सौ अन्ठावन जिनालयस्थ शाश्वत जिन बिम्बेम्यो नम ।

卐

श्री कल्पद्रुम पूजन

चक्रवर्ती सम्राट महा कल्पद्रुम पूजन करते है।
षटखण्डो के अधिपति श्री जिनवर का दर्शन करते है ।।
रत्नपुज प्रभु चरणाम्बुज मे वे न्यौछावर करते है।
दान किमिच्छक देकर जन-जन के कष्टो को हरते है ।।

पुण्य धूल के लिए बावरे हीरा जनम गवाता।
रत्न राख के लिए जलाता फिर भव भव पछताता ।।

वीतराग सर्वज्ञ जिनेश्वर के पद अर्चन करते हैं।
अनुपम पुण्य सातिशय का भंडार हृदय मे भरते हैं।।
साम्राज्य भर में देते याचक जन को मुँह मांगा दान।
जिन शासन की प्रभावना कर होता मन में हर्ष महान ।।
मै भी कल्पद्रुम पूजन करने चरणो में आया हूँ।
शुभ भावों की अष्ट द्रव्य अति हर्षित हे प्रभु लाया हूँ ।।
यही याचना है जिन स्वामी मेरे सकट नाश करो।
मोह तिमिर का सर्वनाश कर मुझमे ज्ञान प्रकाश भरो ।।

ॐ ह्रीं श्री वीतराग कल्पद्रुम जिनेश्वर अत्र अवतर अवतर सवौषट्, अत्र तिष्ठ ठ ठ अत्रमम् सन्निहितो भव भव वषट्।

सुस्थिर रूप सरोवर जल मे पडा रत्न ज्यो दिखलाता।
मन के मान सरोवर जल मे निज आतम त्यों दर्शाता ।।
जन्म मरण दुख सडन गलनमय जडपुद्गल का बना शरीर।
पच शरीरो से विमुक्त हो योगी हो जाता अशरीर ।।
कल्पद्रुप पूजन करके प्रभु जन्म मृत्यु का करूँ विनाश।
शुद्धभाव का अवलम्बन ले निज स्वभाव का करूँ प्रकाश ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री वीतराग सर्वत्र कल्पद्रुम जिनेश्वराय जन्मजरा मृत्यु विनाशनाय जल नि।

रागद्वेष से मलिन सलिल मन जब जब होता डावाडोल।
कर्माश्रव की इसमे उठती है तब-तब अगणित कल्लोल ।।
पाप कर्म मल रहित हृदय मे निस्तरंग निश्चल निर्भ्रान्त।
परम अतीन्द्रिय शुद्ध आत्मा अनुभव मे आता अतिशात ।।
कल्पद्रुप पूजन करके प्रभु भव आतम का करूँ विनाश ।।
शुद्धभाव का अवलम्बन ले निज स्वभाव का करूँ प्रकाश ।।२।।

ॐ ह्रीं श्री वीतराग सर्वज्ञ कल्पद्रुम जिनेश्वराय ससारतापविनाशनाय चदन नि।

वर्ण गध रस स्पर्श शब्द बिन इन्द्रिय विषयो से विरहित।
विमल स्वरूपी सहजानन्दी निर्मल दर्शन ज्ञान सहित ।।
पूर्वोपार्जित कर्म उदय मे साम्यभाव जिय जब धरता।
संचित कर्म विलय हो जाते, नूतन बन्ध नही करता ।।

देह अपावन जड़ पुद्गल है तू चेतन चिद्रूपी।
शुद्धबुद्ध अविरुद्ध निरजन नित्य अनूप अरुपी।।

कल्पद्रुप पूजन करके प्रभु पाऊँपद अखण्ड अविनाश ।।
शुद्धभाव का अवलम्बन ले निज स्वभाव का करूँ प्रकाश ।।३।।
ॐ ह्रीं श्री वीतराग सर्वज्ञ कल्पद्रुम जिनेश्वराय अक्षयपद प्राप्तय अक्षत नि ।
नही मार्गणा गुणस्थान है जीवस्थान नही इसमे।
क्रोध मान माया लोभादिक, लेश्यादिक न कहीं इसमें ।।
बंध कला संस्थान सहनन शुद्ध जीव को कभी नही।
ये सब कर्म जनित है इनसे रच मात्र सम्बन्ध नही ।।
कल्पद्रुप पूजन करके प्रभु काम भाव का करूँ विनाश ।।
शुद्धभाव का अवलम्बन ले निज स्वभाव का करूँ प्रकाश ।।४।।
ॐ ह्रीं श्री वीतराग सर्वज्ञकल्पद्रुमजिनेश्वराय कामबाणविध्वसनाय पुष्प नि ।
सम्यक्दर्शन ज्ञान चरित्री आत्म स्वरुप परम पावन।
इसकी दृढ प्रतीति होते ही हो जाता सम्यक्दर्शन ।।
अणुभर भी यदि राग शेष तो परमानन्द नही होता।
कर्माश्रव का द्वार पूर्णत. तब तक बन्द नही होता ।।
कल्पद्रुम पूजन करके प्रभु क्षुधारोग का करूँ विनाश ।।
शुद्धभाव का अवलम्बन ले निज स्वभाव का करूँ प्रकाश ।।५।।
ॐ ह्रीं श्री वीतराग सर्वज्ञकल्पद्रुमजिनेश्वराय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि ।
यह क्षयोपशम लब्धि विशुद्धि देशना अरु प्रायोग्य सुचार।
भव्य अभव्यो को समान है पाई सदा अनन्तोवार ।।
करणलब्धि भव्यो को होती इसके बिन चारो बेकार।
पचम लब्धि मिले तो होता समकित ज्ञान चरित्र अपार ।।
कल्पद्रुम पूजन करके प्रभु मोह तिमिर का करूँ विनाश ।।
शुद्धभाव का अवलम्बन ले निज स्वभाव का करूँ प्रकाश ।।६।।
ॐ ह्रीं श्री वीतराग सर्वज्ञ कल्पद्रुम जिनेश्वराय मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि ।
शुद्ध आत्मा निश्चयनय से उपादेय है सर्व प्रकार।
देवशास्त्र गुरु पच परमपरमेष्टी की श्रद्धा व्यवहार ।।
द्रव्यकर्म ज्ञानावरणादिक भावकर्म रागादिक विभाव।
देहादिकनोकर्म रहित है शुद्ध जीव का नित्य स्वभाव ।।

सम्यक दर्शन ज्ञान चरित रत्नत्रय अपना लो।
अष्टम वसुधा पचम गति मे सिद्ध स्वपद पा लो॥

कल्पद्रुम पूजन करके प्रभु अष्ट कर्म का करूँ विनाश॥
शुद्धभाव का अवलम्बन ले निज स्वभाव का करूँ प्रकाश॥७॥
ॐ ह्रीं श्री वीतराग सर्वज्ञकल्पद्रुमजिनेश्वराय अष्टकर्म विध्वसनाय धूप नि।

निज स्वभाव से कट जाना है कर्मघातिया का जंजाल।
केवलज्ञानादिक नवलब्धि प्रकट हो जाती है तत्काल॥
फिर अघातिया स्वयं भागते देख जीव की अतुलित शक्ति।
यहाँ पूर्ण हो जाती है प्रभु निश्चय रत्नत्रय की भक्ति॥
कल्पद्रुम पूजन करके प्रभु पाऊँ मोक्ष सुफल अविनाश।
शुद्धभाव का अवलंबन ले निजस्वभाव का करूँ प्रकाश॥८॥
ॐ ह्रीं श्री वीतराग सर्वज्ञ कल्पद्रुम जिनेश्वराय मोक्षफल प्राप्ताय फल नि।

ज्यों डठल से फल झड जाता फिर न कभी जुड सकता।
कर्म प्रथक होते ही भव की ओर न जिय मुड सकता है॥
परम शुक्लमय ध्यान अग्नि मे कर्मदग्ध करके अमलान।
होता महाविशुद्ध ज्ञान यति परम ध्यानपति सिद्ध महान॥
कल्पद्रुम पूजन करके प्रभु पाऊँ पद अनर्घ्य अविनाश॥शुद्ध.॥९॥
ॐ ह्रीं श्री वीतराग सर्वज्ञ कल्पद्रुम जिनेश्वराय अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्य नि।

जयमाला

कल्पद्रुम पूजन करूँ विनय भक्ति से आज।
शुद्ध भाव की शक्ति से बन जाऊँ जिनराज॥

वीतराग सर्वज्ञ देव का शरण भाग्य से अब पाया।
इस ससार समुद्र तीर के मैं समीपवर्ती आया॥१॥
अभ्ररहित नभ से प्रदीप्त ज्यों किरणों वाला रवि ज्योतित।
घातिकर्म हर रत्नत्रय के दिव्य तेज से प्रभु शोभित॥२॥
मनुज प्रकृति का किया अतिक्रमण देवों के भी देव हुए।
रागद्वेष का कर सर्वनाश अरहंत देव स्वयमेव हुए॥३॥
महा विषम संसार उदधि को तुमने पार किया भगवान।
नय पक्षातिक्रान्त हो स्वामी तुमने पाया पद निर्वाण॥४॥

इस भव वन मे उलझे रहते तो जिनवर अरहत न होते।
ज्ञाता दृष्टा शुद्ध स्वरूपी मुक्तिकत भगवत न होते ॥

मणि रत्नों से दिव्य आरती मैंने की है बारम्बार।
कल्पवृक्ष के पुष्पों से भी पूजन की है अगणित बार ॥५॥
पर सत्यार्थ स्वभाव द्रव्य को मैंने किया नहीं स्वीकार।
कभी नही भूतार्थ सुहाया, भाया अभूतार्थ व्यवहार ॥६॥
कर्म काड शुभ राग भाव से सदा बढाया है ससार।
ज्ञान काड का लक्ष्य न साधा क्रियाकांड का कर व्यापार ॥७॥
मिथ्यादर्शन ज्ञान चरित इनके आराधक अनायतन।
इनमे ही रत रहकर मैंने नष्ट किये अनन्त जीवन ॥८॥
देव मूढता साधु मूढता लोक मूढता, वसु अभियान।
जाति ज्ञान कुल रुप ऋद्धि बल पूजा तप मद का हो अवसान ॥९॥
मिथ्यादर्शन अविरत पंच प्रमाद कषाय योग दुर्बन्ध।
सम्यक्दर्शन हो जाये तो मै भी हो जाऊँ निर्बन्ध ॥१०॥
परमानन्द स्वरूप अतीन्द्रिय सुख का धाम एक चिन्मात्र।
ज्ञानानद स्वभावी चिद्धन जलहलज्योति मुक्त का पात्र ॥११॥
परम ज्योति अतिशय प्रकाशमय, कर्मो से है अच्छादित।
पूर्ण त्रिकाली ध्रुव के आश्रय से होता है कर्म रहित ॥१२॥
श्रद्धा ज्ञान सिद्धि होते ही होता है चारित्र विकास।
तभी सर्व सकल्प विकल्पों का होता है पूर्ण विनाश ॥१३॥
पर्यायो से दृष्टि हटाकर निज अखड पर ही दू दृष्टि।
परम शुद्ध पर्याय प्रगट हो सिद्ध स्वपद की होगी सृष्टि ॥१४॥
भव्य जीव भी जब तक पर द्रव्यों मे ही रहता आशक्त।
तब तक मोक्ष नहीं पाता है चाहे जितना रहे विरक्त ॥१५॥
साम्य समाधि योग अथवा शुद्धोपयोग का चिन्त निरोध।
आर्तरौद्र दुर्ध्यान छोड हो धर्म शुक्ल भावना प्रमोद ॥१६॥
जीवकर्म सबध दूध अरु पानी के समान सहजात।
दोनो प्रथक प्रथक पहचानूँ भेद ज्ञान का पाऊँ प्रात ॥१७॥
सेना स्वयं नष्ट हो जाती जब राजा मारा जाता।
मोह राज का नाश हुआ तो घातिकर्म भी क्षय पाता ॥१८॥

जिनवाणी मे निश्चय नये भूतार्थ बताया।
अभूतार्थ व्यवहार कथन उपचार जताया ॥

परगत ध्यान पंचपरमेष्ठी स्वगत ध्यान निज आतम का।
कहा रूपस्थ ध्यान है उत्तम वीतराग परमातम का ॥१९॥
परगत तत्व पंचपरमेष्ठी प्रभु का ध्यान देव सविकल्प।
स्वगत तत्व निज शुद्ध आत्मा रुपातीतध्यान अविकल्प ॥२०॥
जब तक योगी पर द्रव्यों में रहता है सलग्न विकल्प।
उग्र तपस्या करके भी पा सकता नही मोक्ष अविकल ॥२१॥
अगर राग परमाणु मात्र भी विद्यमान हैं अन्तर में।
जिन आगम का वेत्ता होकर भी बहता भवसागर में ॥२२॥
दर्शन ज्ञान चरित्र सदा ही है सेवन करने के योग्य।
सर्व शुभाशुभ भाव अचेतन तो सेवन के सदा अयोग्य ॥२३॥
मनवच काया की प्रवृत्ति रुकने पर होता है सवर।
आश्रव रुकता कर्म निर्जरित होते चिर सचित जर्जर ॥२४॥
नाथ अचेतन पुद्गल ही तो सदा दिखाई देता है।
जीव चेतनमयी अद्दश है नही दिखाई देता है ॥२५॥
प्रकट स्व संवेदन से होता देह प्रमाण विनाश रहित।
लोकालोक देखने वाला दर्श ज्ञान सुख वीर्य सहित ॥२६॥
राग द्वेष की कल्लोलो से न हो मनोबल डाँवाडोल।
आत्मतत्व को ही मै देखूं बना रहू प्रभु पूर्ण अडोल ॥२७॥
ब्राह्यान्तर द्वादश प्रकार का दुर्धरतपोभार स्वीकार।
मोक्ष मार्ग पर बढ़ूं निरतर करूँ सिद्ध पद आविष्कार ॥२८॥
लोक प्रमाण असंख्यात् संकल्प विकल्पात्मक पर भाव।
इनका तिरस्कार कर स्वामी राग द्वेष का करूँ अभाव ॥२९॥
मैं अटूट वैभव का स्वामी हू चैतन्य चक्रवर्ती।
निज अखड साधना न साधी ध्यान किया प्रभु परवर्ती ॥३०॥
पुण्यो के समग्र वैभव हो होम आज मै करता हूँ।
जिन पूजन के महा यज्ञ में सर्वस्व अर्पण करता हूँ ॥३१॥
मुक्ति प्राप्ति की जगी भावना भव वांछा का नाम नहीं।
ज्ञाता दृष्टा होऊँ सयोगी भावों का काम नही ॥३२॥

निश्चयनय भूतार्थ आश्रय उपादेय है।
अभूतार्थ व्यवहार कथन तो अरे हेय है ।।

तुम प्रभु साक्षात् कल्पद्रुम देते मुँह माँगा वरदान।
महामोक्ष मंगल के दाता वीतराग अर्हन्त महान ।।३३।।
कल्पद्रुम पूजन महान का है उद्देश्य यही भगवान।
पर भावों का सर्वनाश कर पाऊँ सिद्ध स्वपद निर्वाण ।।३४।।

ॐ ह्रीं श्री वीतराग सर्वज्ञ कल्पद्रुम जिनेश्वरायपूर्णार्घ्यं नि स्वाहा।

शुद्ध भाव से कल्पद्रुम पूजन जो करते सुख पाते।
निज स्वरूप का आश्रय लेकर सिद्धलोक में ही जाते ।।३५।।

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्रीं श्री वीतराग सर्वज्ञ कल्पद्रुम जिनेश्वराय नम।

卐

श्री सर्वतोभद्र पूजन

सर्वतोभद्र पूजन करने का भाव हृदय मे आया है।
चारों दिशि में जिनराज चतुर्मुख दर्शनकर सुख पाया है।
यह पूजन मुकुटबद्ध राजाओ के द्वारा की जाती है।
अत्यन्त महावैभव पूर्वक वसुद्रव्य चढाई जाती है।।
अतिभव्य चर्तुमुख मंडप का करते निर्माण भक्ति पूर्वक।
अरहन्त चतुर्मुख जिन प्रतिमा पधराते परम विनयपूर्वक ।।
मै मुकुटबद्ध तो नहीं किन्तु शुभ भावबद्ध हूँ याचक हूँ।
शिव सुख की आकांक्षा मन मे भोगो से दूर अयाचक हूँ ।।
मै यथा शक्ति निज भावो की वसुद्रव्य सजाकर लाया हूँ।
सर्वतोभद्र पूजन करने जिन देव शरण मे आया हूँ ।।

ॐ ही सर्वतोभद्र चतुर्मुखजिन अत्र अवतर अवतर सवौषट अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ अत्रमम् सन्निहितो भव भव वषट्।

मै एक शुद्ध हूँ चेतन हूँ सवीज्यमान गुणशाली हूँ।
प्रभु जन्म मरण के नाश हेतु लाया पूजन की थाली हूँ ।।
सर्वतोभद्र पूजन करके यह जीवन सफल बनाऊँगा।
जिनराज चतुर्मुख दर्शन कर मैं सम्यक्दर्शन पाऊँगा।।१।।

ॐ ह्रीं सर्वतोभद्र चतुर्मुखजिनेभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल नि।

मिथ्यात्व जगत मे भ्रमण कराता है।
सम्यक्त्व मुक्ति से रमण कराता है॥

मै निर्विकल्प हूँ शीतल हूँ मैं परम शांत गुणाशाली हूँ।
संसार ताप क्षय करने को लाया पूजन की थाली हूँ॥
सर्वतोभद्र पूजन करके यह जीवन सफल बनाऊँगा।
जिनराज चतुर्मुख दर्शन कर मै सम्यक्दर्शन पाऊँगा॥२॥

ॐ ह्रीं सर्वतोभद्र चतुर्मुखजिनेभ्यो ससारतापविनाशनायचन्दन नि।

मैं अविनश्वर हूँ अविकल हूँ अक्षय अनन्त गुण शाली हूँ।
अक्षय पद प्राप्ति हेतु स्वामी लाया पूजन की थाली हूँ॥सर्वतोभद्र॥३॥

ॐ ह्रीं सर्वतोभद्र चतुर्मुखजिनेभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षत नि।

मैं हूँ स्वतन्त्र निष्काम पूर्ण सिद्धों सम वैभवशाली हूँ।
इस काम शत्रु के नाश हेतु लाया पूजन की थाली हूँ॥सर्वतोभद्र.॥४॥

ॐ ह्रीं सर्वतोभद्र चतुर्मुखजिनेभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षत नि

मै परम तृप्त मै परम शक्ति सम्पन्न परम गुणशाली हूँ।
अब क्षुधारोग के नाश हेतु लाया पूजन की थाली हूँ॥सर्वतोभद्र.॥५॥

ॐ ह्रीं सर्वतोभद्र चतुर्मुखजिनेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य नि।

मै स्वपर प्रकाशक ज्योति पुज मै परमज्ञान गुणशाली हूँ।
मोहांधकार भ्रमनाश हेतु लाया पूजन की थाली हूँ॥सर्वतोभद्र.॥६॥

ॐ ह्रीं सर्वतोभद्र चतुर्मुखजिनेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि।

मै नित्य निरन्जन चिन्मय हूँ चिद्रूप चन्द्र गुणकारी है।
मै अष्ट कर्म के नाश हेतु लाया पूजन की थाली हूँ॥सर्वतोभद्र.॥७॥

ॐ ह्रीं सर्वतोभद्र चतुर्मुखजिनेभ्यो अष्टकर्मविध्वसनाय धूप नि।

मै चित्स्वरूप चिच्चमत्कार चैतन्यसूर्य गुणशाली हूँ।
मै महामोक्ष फल पाने को लाया पूजन की थाली हूँ॥सर्वतोभद्र॥८॥

ॐ ह्रीं सर्वतोभद्र चतुर्मुखजिनेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फल नि।

मै द्रव्य कर्म अरु भाव कर्म नोकर्म रहित गुणशाली हूँ।
अनुपम अनर्घ्य पद पाने को लाया पूजन की थाली हूँ॥सर्वतोभद्र.॥९॥

ॐ ह्रीं सर्वतोभद्र चतुर्मुखजिनेभ्यो अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्य नि।

जयमाला

सर्वतोभद्र पूजन करके जिन प्रभु की महिमा गाता हूँ।
चारों दिशि में अरहत चतुर्मुख वंदन कर हर्षाता हूँ॥१॥

आत्मज्ञान वैभव यदि हो तो सदाचार शोभा पाता है।
पचारावर्तन अभाव कर चेतन मुक्ति गीत गाता है ॥

प्रभु समवशरण मे अतरीक्ष है रत्नमयी सिहासन पर।
त्रयछत्रशीश अतिशुभ्र धवल भामण्डल द्युति रवि से बढकर ॥२॥
है तरु अशोक शोभायमान हर लेता सर्व शोक गिन गिन।
देवोपम दुन्दुभियां बजती सुर पुष्प वृष्टि होती छिन-छिन ॥३॥
मिलयक्षचमर चौंसठ ढोरें प्रभु द्रिव्य ध्वनि खिरती अनुपम।
वसु प्रातिहार्य से भूषित जिनवर छवि सुन्दर पावनतम ॥४॥
वसु मगल द्रव्यो की शोभा जन जन का मन करती हर्षित।
सम्यक्त्य उन्हे मिलता जिनके मन मे होती जिन छवि अंकित ॥५॥
है परमौदारिक देह अनन्त चतुष्टय से तुम भूषित हो।
सर्वज्ञ वीतरागी महान निजध्यानलीन प्रभु शोभित हो ॥६॥
जिन मन्दिर समवशरण का ही पावन प्रतीक कहलाता है।
वेदी पर गधकुटी का ही उत्तम स्वरूप झलकाता है ॥७॥
मै यही कल्पना कर मन मे जिनवर को वंदन करता हूँ।
भावों की भेट चढा करके भव-भव के पातक हरता हूँ ॥८॥
जो मुकुटबद्ध नृप होते वे, यह पूजन महा रचाते हैं।
अपने राज्यो में दान किमिच्छक देते अति हर्षाते हैं ॥९॥
इसीलिए आजनिज वैभव से है प्रभु मैंने की है पूजन।
शुभ-अशुभ विभाव नाश हो प्रभु कटजाये सभी कर्म बधन ॥१०॥
सर्वतोभद्र तप मुनि करते उपवास पिछतर होते है।
बेला तेला चौला पंचौला, उपवासादिक होते हैं ॥११॥
पारणा बीच मे होती है पच्चीस पुण्य बहु होते है।
सर्वतोभद्र निज आतम के ही गीत हृदय में होते है ॥१२॥
प्रभु मै ऐसा दिन कब पाऊँ मुनि बनकर निज आतम ध्याऊँ।
ज्ञानावरणादिक अष्ट कर्म हर नित्य निरन्जन पद पाऊँ ॥१३॥
चऊघाति कर्म को क्षय करके अब निज स्वरूप में जाऊँगा।
सर्वतोभद्र पूजन का फल अरहत देव बन जाऊँगा ॥१४॥
फिर मै अघातिया कर्म नाश प्रभु सिद्ध लोक मे जाऊँगा।
परिपूर्ण शुद्ध सिद्धत्व प्रगट कर सदा-सदा मुस्काऊँगा ॥१५॥

ॐ ह्रीं श्री सर्वतोभद्र चतुर्मुखजिनेभ्यो पूर्णार्घ्यं नि।

सर्वतोभद्र पूजन महान जो करते है निज भावो से।
भव सागर पार उतरते है बचते है सदा विभावों से ॥

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्रीं श्री सर्वतोभद्र चतुर्मुखजिनाय नम

देह तो अपनी नही है देह तो फिर मोह कैसा।
जड़ अचेतन रुप पुद्गल द्रव्य से व्यामोह कैसा ।।

श्री नित्यमह पूजन

अरिहतो को नमस्कार कर सब सिद्धों को नमन करूँ ।
आचार्यो को नमस्कार कर उपाध्याय को नमन करूँ ।।
और लोक के सर्व साधुओ को मैं सविनय नमन करूँ ।
नित प्रात सामायिक करके तत्व ज्ञान का यतन करूँ ।।

भाव द्रव्य ले भक्तिभाव से मैं श्री जिन मन्दिर जाऊँ ।
जिन प्रभु का प्रक्षाल करूँ मैं श्री जिनवर के गुण गाऊँ ।।
शुद्ध भाव से णमोकार जप सहस्त्रनाम पढ हर्षाऊँ ।
श्री जिनदेव नित्यमह पूजन करके नाचूँ सुख पाऊँ ।।

शाति पाठ पढ क्षमा याचना कर शुद्धातम को ध्याऊँ ।
वीतराग जिन चरणों मे निज प्रभु की परम शरण पाऊँ ।।
ॐ ह्रीं श्री नित्यमह समुच्चयजिन अत्र अवतर अवतर सवौषट् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ अत्रमम् सन्निहितो भव भव वषट् ।

निज भावो का प्रभु फल ले, पाँचो परमेष्ठी उर लाऊँ ।
जन्म मरण का नाश करूँ मै देव शास्त्र गुरु गुण गाऊँ ।।
तीस चौबीसी बीस जिनेश्वर कृत्रिम-अकृत्रिम जिनध्याऊँ ।
सर्व सिद्ध प्रभु पचमेरू नन्दीश्वर गणधर ऋषि भाऊँ ।।
सोलहकारण दशलक्षण रत्नत्रय नव सुदेव ध्याऊँ ।
चौबीसो जिन ढाई द्वीप अतिशय निर्वाण क्षेत्र ध्याऊँ ।।१।।
ॐ ह्रीं श्री नित्यमह समुच्चयजिनेभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल नि ।

निज भावो का चन्दन लेपांचों परमेष्ठी उर लाऊँ ।
भव ज्वाला की तपन मिटाऊँदेव शास्त्र गुण गाऊँ ।।तीसचौबीसी।।२।।
ॐ ह्रीं श्री नित्यमह समुच्चयजिनेभ्यो ससारतापविनाशनाय चन्दन नि ।

निज भावों का चन्दन ले पाचों परमेष्ठी उर लाऊँ ।
पद अखड अक्षय प्रगटाऊँ देव शास्त्र गुरु गुण गाऊँ ।।

राग आग मे जल जल तूने कष्ट अनत उठाए है।
भाव शुभाशुभ के बधन मे आसू सदा बहाए है ॥

सोलहकारण दशलक्षण रत्नत्रय नव सुदेव ध्याऊँ।
चौबीसों जिन ढाई द्वीप अतिशय निर्वाण क्षेत्र ध्याऊँ ॥३॥
ॐ ह्रीं श्री नित्यमह समुच्चयजिनेभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षत नि।

निज भावो के पुष्प सजा पॉचो परमेष्ठी उर लाऊँ।
काम क्रोध लोभादि मिटाऊँदेवशास्त्र गुरु गुण गाऊँ॥तीसचौबीसी ॥४॥
ॐ ह्रीं श्री नित्यमह समुच्चयजिनेभ्यो कामबाणविध्वसनाय पुष्प नि।

जिन भावो के प्रभु चरु ले पाचो परमेष्ठी उर लाऊँ।
क्षुधा रोग की ज्वाल बुझाऊँदेवशास्त्र गुरु गुणगाऊँ॥तीसचौबीसी.॥५॥
ॐ ह्रीं श्री नित्यमह समुच्चयजिनेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य नि।

निज भावो के दीप उजा पॉचो परमेष्ठी उर लाऊँ।
मोह तिमिर अज्ञान नशाऊँ देव शास्त्र गुरु गुणगाऊँ॥तीसचौबीसी॥६॥
ॐ ह्रीं श्री नित्यमह समुच्चयजिनेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि।

निज भावो की धूप चढा पॉचों परमेष्ठी उर लाऊँ।
अष्ट कर्म को नष्ट करूँ मै देव शास्त्र गुरु गुण गाऊँ॥तीसचौबीसी॥७॥
ॐ ह्रीं श्री नित्यमह समुच्चयजिनेभ्यो अष्टकर्मविध्वन्सनाय धूप नि।

निज भावो के फल लेकर पाचो परमेष्ठी उर लाऊँ।
उत्तम महामोक्ष फल पाऊँ देवशास्त्र गुरु गुण गाऊँ॥तीसचौबीसी॥८॥
ॐ ह्रीं श्री नित्यमह समुच्चयजिनेभ्यो महामोक्षफल प्राप्ताय फल नि।

निज भावो के अर्घ बना पाचो परमेष्ठी उर लाऊँ।
अविनाशी अनर्घ पद पाऊँ देव शास्त्र गुरु गुण गाऊँ॥तीसचौबीसी॥९॥
ॐ ह्रीं श्री नित्यमह समुच्चयजिनेभ्यो अनर्घपद प्राप्ताय अर्घ्य नि।

जयमाला

प्रभु पूजन जिन देव की नित नव मगल होय।
तीन लोक की सपदा भी चरणो को धोय ॥१॥
श्री अरिहत सिद्ध आचार्योपाध्याय मुनिवर वदन।
देवशास्त्र गुरु के चरणो मे सविनय बार-बार नमन ॥२॥

आत्म स्वरूप अनूठ अनूठा इसकी महिमा अपरम्पार।
इसका अवलबन लेते ही मिट जाता अनंत ससार॥

भरतैरावत ढाई द्वीप की तीस चौबीसी का अर्चन।
विद्यमान जिन बीस विदेही सीमधर आदिक वन्दन॥३॥
तीन लोक के कृत्रिम अकृत्रिम जिनगृह आदिक वन्दन।
सर्व सिद्धि मंगल के दाता तब सिद्धों को करूँ नमन॥४॥
श्री जिन सहस्त्रनाम को ध्याऊँ जिनवाणी को करूँ नमन।
पचमेरु के अस्सी जिन चैत्यालय को सादर वन्दन॥५॥
अष्टम द्वीप श्री नन्दीश्वर बावन चैत्यालय वन्दन।
भव्यभावना सोलहकारण भाऊं ऐसा करूँ यतन॥६॥
उत्तम क्षमा आदि दशलक्षणधर्म सदा ही करूँ नमन।
सम्यक्दर्शन ज्ञान चरितमय रत्नत्रय व्रत करूँ ग्रहण॥७॥
वृषभादिक श्री वीरजिनेश्वर के चरणों का नित अर्चन।
गणधर वृषभसेन गौतम को विध्नविनाश हेतु वन्दन॥८॥
बाहुबली जी भरत चक्रवर्ती अनन्तवीर्य वन्दन।
पच बालयति शान्ति कुन्थु अर चक्रेश्वर जिनवरवदन॥९॥
भूत भविष्यत वर्तमान की तीनो चौबीसी वन्दन।
सहस्त्रकूट चैत्यालय वन्दू मानस्तम्भ जिन समवशरण॥१०॥
गर्भजन्मतप ज्ञान मोक्ष पॉचो कल्याणक को वदन।
तीर्थकर की जन्म भूमियो को मै सादर करूँ नमन॥११॥
तीर्थ अयोध्या श्रावस्ती कौशाम्बीपुर काशी वन्दन।
चन्द्रपुरी काकदी भद्दिलपुर हस्तिनापुरी वन्दन॥१२॥
सिहपुरी कपिला रत्नपुरि मिथिला शौर्यपुरी वन्दन।
राजगृही चम्पापुर कुण्डलपुर वैशाली करूँ नमन॥१३॥
जिन प्रभु समवशरण, पच कल्याणक, अतिशय क्षेत्रनमन।
वीतराग निर्ग्रन्थ मुनीश्वर श्री जिनवाणी को वदन॥१४॥
तीर्थकर निर्वाण क्षेत्र अरु सिद्ध क्षेत्र को वन्दन।
चम्पा पावा उर्जयंत सम्मेदशिखर कैलाश नमन॥१५॥
शंत्रुजय पावागढ तारगागिरि तुगीगिरि वन्दन।
कुन्थलगिरि गजपथ चूलगिरि सोनागिरि को करूँ नमन॥१६॥

मोह कर्म का जब उपशम हो भेद ज्ञान कर लो।
भाव शुभाशुभ हेय जानकर संवर आदर लो ॥

कोटिशिला रेवातट पावागिरि द्रोणागिरि को वन्दन।
रेशंदीगिरि कुण्डलगिरि मंदारगिरि पटना वन्दन ॥१७॥
श्री सिद्धवरकूट गुणावा मथुरा राजगृही वन्दन।
मुक्तागिरि पोदनपुर आदि सिद्ध क्षेत्रो को वन्दन ॥१८॥
विपुलाचल वैभार स्वर्णगिरि उदयरत्नगिरि को वन्दन।
अहिच्छेत्र की ज्ञान भूमि को ज्ञानप्राप्ति हित करूँ नमन ॥१९॥
ढाई द्वीप के सिद्ध क्षेत्र अरु अतिशय क्षेत्रो को वन्दन।
मन वचन काया शुद्धि पूर्वक तब तीर्थो को करूँ नमन ॥२०॥
कल्पद्रुम सर्वतोभद्र इन्द्रध्वज नित्यमह महापूजन।
अष्टान्हिका, आदिपर्वो पर विविध विधान महा पूजन ॥२१॥
मध्यलोक के चार शतक अट्ठावन जिन मन्दिर वदन।
अधो लोक के सात करोड बहात्तर लाख भवन वन्दन ॥२२॥
उर्ध्व लाख चौरासी, सतानवै सहस तेईस वन्दन।
ज्योतिष व्यतर भवन असख्यो जिन प्रतिमाये करूँ नमन ॥२३॥
गौतम गणधर स्वामि सुधर्मा जम्बूस्वामी श्रीधर धन।
श्री देशभूषण कुलभूषण इन्द्रजीत अरु कुम्भकरण ॥२४॥
रामचन्द्र हनुमान नील महानील गवय गवाक्ष्य वन्दन।
मुनि सुडील सुग्रीव आदि रावण के सुत मुनिवर वन्दन ॥२५॥
वरदत्तराय अरु सागरदत्त श्री गुरुदत्तादि वन्दन।
अर्जुन भीम युधिष्टिर पाडव द्रविड देश के नृप वन्दन ॥२६॥
पचमहा ऋषिवरत्तादिक कनग अनगकुमार नमन।
स्वर्णभद्र आदिक मुनि चारो सेठ सुदर्शन को वन्दन ॥२७॥
शम्बु प्रद्युम्नकुमार और अनिरुद्धकुमार आदि वन्दन।
रामचन्द्र सुत लव मदनाकुश लाड देश के नृप वदन ॥२८॥
पचशतक सुत दशरथ नृप के देश कलिग नृपति वदन।
बालि महाबलि मुनिस्वामी नागकुमार आदि वन्दन ॥२९॥
कामदेव बलभद्र चक्रवर्ती जो मोक्ष गए वन्दन।
भरत क्षेत्र से मुनि अनत निर्वाण गए सबको वन्दन ॥३०॥

निज तत्वोपलब्धि के बिन सम्यक्त्व नहीं होता।
सम्यक्त्वोपलब्धि के बिन सिद्धत्व नहीं होता॥

नव देवो को वन्दन कर शुद्धातम को करूँ नमन।
मोह राग रुष का अभाव कर वीतरागता करूँ ग्रहण ॥३१॥
प्रभो नित्यमह पूजन करके निज स्वभाव मे आ जाऊँ।
तीन समय सामायिक साधू निज स्वरूप मे रम जाऊँ ॥३२॥
श्री जिन पूजन का उत्तम फल सम्यक्दर्शन प्रगटाऊँ।
ग्यारह प्रतिमा पाल साधु पद लेकर निजआतम ध्याऊँ ॥३॥
प्रायश्चित विनय वैय्यावृत आलोचना हृदय लाऊँ।
प्रतिक्रमणव्युत्सर्ग करूँ मै दोष नाश शिवपद पाऊँ ॥३४॥
उपसर्गो से ही नही डिगू परिषह जय कर समता लाऊँ।
गुणस्थान आरोहण क्रम से श्रेणी चढ़ूँ मोक्ष पाऊँ ॥३५॥
निज स्वभाव साधन के द्वारा वीतराग निज पद पाऊँ।
श्री जिन शासन के प्रभुत्व से मोक्ष मार्ग पर चढ़ू जाऊँ ॥३६॥

ॐ ह्री श्री नित्यमह समुच्चय जिनेभ्यो अनर्घपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं नि।

अनुपम पूजा नित्यमह, स्वर्ग मोह दातार।
निज आतम जो ध्यावते, हो जाते भव पार॥

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्रीं श्री नित्यमह समुच्चय सर्व जिनेभ्यो नम ।

विशेष पर्व पूजन

जैन आगम मे इन पर्वो का विशेष महत्व है। इन पर्वों के महत्व को दर्शाने वाली पैराणिक कथाये इनसे जुडी है। ये पर्व हमे सासारिक प्रयोजनो से हटाकर धर्म आराधना के लिए प्रेरणा देते है। इन पूजनो मे महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रत्येक पूजनो मे चारो अनुयोगो के सारभूत तत्व गर्भित है। अत प्रत्येक आत्मार्थी बन्धु इन पर्वो पर इन पूजनो के माध्यम से धर्म आराधना करके अनत सुख को प्राप्त करे। यही कामना है।

श्री क्षमावाणी पूजन

क्षमावाणी का पर्व सुपावन देता जीवों को सदेश।
उत्तम क्षमाधर्म को धारो जो अतिभव्य जीव का वेश॥
मोह नीद से जागो चेतन अब त्यागो मिथ्याभिवेश।
द्रव्य दृष्टि बन निजस्वभाव से चलो शीघ्र सिद्धो के देश॥

जड़ को जड़ समझे बिन चेतन ज्ञान नहीं होता।
पूर्ण शुद्धता हुए बिना कल्याण नहीं होता॥

क्षमा, मार्दव, आर्जव, संयम, शौच, सत्य को अपनाओ।
त्याग, तपस्या, आकिंचन, व्रत ब्रह्मचर्य मय हो जाओ॥
एक धर्म का सार यही है समता मय ही बन जाओ।
सब जीवो पर क्षमा भाव रख स्वयं क्षमा मय हो जाओ॥
क्षमा धर्म की महिमा अनुपम क्षमा धर्म ही जग मे सार।
तीन लोक मे गूंज रही है क्षमावाणी की जय जयकार॥
ज्ञाता दृष्टा हो समग्र को देखो उत्तम निर्मल भेष।
रागो से विरक्त हो जाओ, रहे न दुख का किंचित लेश॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमा धर्म अत्र अवतर-अवतर सवौषट्, अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठ ठ अत्रमम् सन्निहितो भव भव वषट्।

जीवादिक नव तत्वो का श्रद्धान यही सम्यक्त्व प्रथम।
इनका ज्ञान ज्ञान है, रागादिक का त्याग चरित्र परम॥
१"सते पुव्वणिबद्ध जाणदि" वह अबंध का ज्ञाता है।
सम्यक्दृष्टि सुजीव आश्रव बध रहित हो जाता है
उत्तम क्षमा धर्म उर धारूँ जन्म मरण क्षय कर मानूँ।
पर द्रव्यो से दृष्टि हटाऊँ निज स्वभाव को पहचानूँ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमा धर्मागाय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल नि।

सप्त भयो से रहित निशकित निजस्वभाव मे सम्यक् दृष्टि।
मिथ्यात्वादिक भावो मे जो रहता वह है मिथ्यादृष्टि॥
तीन मूढता छह अनायतन तीन शल्य का नाम नहीं।
आठ दोष समकित के अरु आठोमद का कुछकाम नही॥उत्तम.॥२॥

ॐ ह्री श्री उत्तमक्षमा धर्मागाय ससारताप विनाशनाय चन्दन नि।

अशुभ कर्म जाना कुशील शुभ को सुशील मानता अरे।
जो ससार बध का कारण वह कुशील मानता नरे॥
कर्म फलो के प्रति जिनका आकाक्षा उर मे रही नही।
वह निकांक्षित सम्यक् दृष्टि भव की बाछा रही नही॥उत्तम॥३॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमा धर्मागाय अक्षयपद प्राप्ताय अक्षत नि।

राग शुभाशुभ दोनो ही ससार भ्रमण का कारण है।
शुद्ध भाव ही एकमात्र परमार्थ भवोदधि तारण है॥

१ (सम्यकदृष्टि) सत्ता मे मौजूद पूर्वबद्ध कर्मो को जानता है।

ज्ञायक स्वभाव के सन्मुख हो पुरुषार्थ जीव जब करता है।
जड़ कर्मो की छाया तक को अतमुहुर्त मे हरता है ।।

वस्तु स्वभाव धर्म के प्रति जो लेश जुगुप्सा करे नहीं।
निर्विचिकित्सक जीव वही है निश्चय सम्यक्दृष्टि वहीं ।।
उत्तम क्षमा धर्म उर धारूँ जन्म मरण क्षय कर मानूँ।
पर द्रव्यों से दृष्टि हटाऊँ निज स्वभाव को पहचानूँ ।।४।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमा धर्मांगाय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि ।

शुद्ध आत्मा जो ध्याता वह पूर्ण शुद्धता पाता है।
जो अशुद्ध को ध्याता है वह ही अशुद्धता पाता है।।
पर भावो मे जो न मूढ है दृष्टि यथार्थ सदा जिसकी।
वह मूढदृष्टि का धारी सम्यक्दृष्टि सदा उसकी ।।उत्तम.।।५।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमा धर्मांगाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि ।

राग द्वेष मोहादि आश्रव ज्ञानी को होते न कभी।
ज्ञाता दृष्टा को ही होते उत्तम सवर भाव सभी ।।
शुद्धात्मा की भक्ति सहित जो पर भावो से नही जुडा।
उपगूहन का अधिकारी है सम्यकदृष्टि महान बडा ।।उत्तम ।।६।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमा धर्मांगाय मोहान्धकारविनाशनाय दीप नि ।

कर्म बध के चारो कारण मिथ्या अविरति योग कषाय।
चेतयिता इनका छेदन कर, करता है निर्वाण उपाय।।
जोउन्मार्ग छोडकर निज को निज मे सुस्थापित करता।
स्थिति करणयुक्त होता वह सम्यक दृष्टिस्वहित करता ।।उत्तम।।७।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमा धर्मांगाय अष्टकर्मविध्वसनाय धूप नि ।

पुण्यपाप मय सभी शुभाशुभ योगो से रहता दूर।
सर्व सग से रहित हुआ वह दर्शन ज्ञानमयी सुख पूर।।
सम्यक्दर्शन ज्ञान चरितधारी के प्रति गौ वत्सल भाव।
वात्सल्य का धारी सम्यक्दृष्टि मिटाता पूर्ण विभाव ।।उत्तम।।८।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमा धर्मांगाय मोक्षफल प्राप्ताय फल नि ।

ज्ञान विहीन कभी भी पलभर ज्ञान स्वरूप नही होता।
बिना ज्ञान के ग्रहण किए कर्मो से मुक्त नही होता ।।
विद्यारुपी रथ पर चढ जो ज्ञान रूप रथ चल वाता।
वह जिन शासन की प्रभावना करता शिवपथदर्शाता ।।उत्तम।।९।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमा धर्मांगाय अनर्घ पद प्राप्ताय अर्घ्य नि ।

कर्म बध का रुप जानकर शुद्धातम का ज्ञान करो।
पाप पुण्य की प्रकृति विनाशी निज स्वरूप का ध्यान करो ।।

जयमाला

उत्तम क्षमा स्वधर्म को वन्दन करूँ त्रिकाल ।
नाश दोष पच्चीस कर काटूँ भव जजाल ।।१।।
सोलहकारण पुष्पांजलि दशलक्षण रत्नत्रय व्रतपूर्ण ।
इनके सम्यक् पालन से हो जाते है वसुकर्म विचूर्ण ।।२।।
भाद्रमास मे सोलहकारण तीस दिवस तक होते है ।
शुक्ल पक्ष मे दशलक्षण पंचम से दस दिन होते है।।३।।
पुष्पांजलि दिन पाँच पंचमी से नवमी तक होते है।
पावन रत्नत्रय व्रत अन्तिम तीन दिवस के होते है।।४।।
आश्विन कृष्णा एकम् उत्सव क्षमावाणी का होता है ।
उत्तमक्षमा धार उर श्रावक मोक्ष मार्ग को जोता है।।५।।
भाद्रमास अरु माघ मास अरु चैत्र मास मे आते है ।
तीन बार आ पर्वराज जिनवर सदेश सुनाते है।।६।।
[१] ''जीवे कम्म बद्ध पुट्ठ'' यह तो है व्यवहार कथन ।
है अबद्ध अरपृष्ट कर्म से निश्चय नय का सही कथन ।।७।।
जीव देह को एक बताना यह है नय व्यवहार अरे ।
जीव देह तो पृथक पृथक है निश्चय नय कह रहा अरे ।।८।।
निश्चय नय का विषय छोड व्यवहार माँहि करते वर्तन ।
उनको मोक्ष नही हो सकता और नही सम्यक्दर्शन ।।९।।
[२] ''दोण्हविणयाण भणिय जाणई'' जो पक्षातिक्रात होता ।
चित्स्वरूप का अनुभव करता सकलकर्म मल को खोता ।।१०।।
ज्ञानी ज्ञानस्वरूप छोडकर जब अज्ञान रूप होता ।
तब अज्ञानी कहलाता है पुद्गल बन्ध रूप होता ।।११।।
[३] ''जह विस भुव भुज्जतोवेज्जो '' मरण नही पा सकता है।
ज्ञानी पुद्गल कर्म उदय को भोगे बन्ध न करता है।।१२।।

---

(१) जीव कर्म को बाधता है तथा स्पर्शित है (समयसारगाथा१४१)
(२) दोनो ही नयो के कथन को मात्र जानता है (समयसार गाथा-१४३)
(३) जिस पकार वैद्य पुरुष विष को भोगता खाता हुआ भी (स सा गाथा १७५)

मुनि अथवा गृहस्थ कोई भी मोक्ष मार्ग है कभी नहीं।
सम्यक्दर्शन ज्ञान चरित ही मोक्ष मार्ग है सही-सही ॥१३॥
मुनि अथवा गृहस्थ के लिंगो में जो ममता करता है।
मोक्षमार्ग तो बहुत दूर भव अटवी में ही भ्रमता है॥१४॥
प्रतिक्रमण प्रतिसरण आदि आठोंप्रकार के है विष कुम्भ।
इनसे जो विपरीत वही है मोक्षमार्ग के अमृत कुम्भ ॥१५॥
पुण्य भाव की भी तो इच्छा ज्ञानी कभी नही करता।
परभावो से अरति सदा है निज का ही कर्ता धर्ता ॥६॥
कोई कर्म किसी का भी नहीं सुख-दुख का निर्माता है स्वयं समर्थ।
जीव स्वय ही अपने सुख-दुख का निर्माता स्वय समर्थ ॥१७॥
क्रोध, मान, माया, लोभादिक नही जीव के किंचित मात्र।
रुप, गध, रस, स्पर्श शब्द भी नही जीव के किंचित् मात्र ॥१८॥
देह संहनन सस्थान भी नही जीव के किंचित मात्र
राग द्वेष मोहादि भाव भी नही जीव के किचित मात्र ॥१९॥
सर्वभाव से भिन्न त्रिकाली पूर्ण ज्ञानमय ज्ञायक मात्र।
नित्य, धौव्य, चिद्रूप, निरजन, दर्शनज्ञानमयी चिन्मात्र ॥२०॥
वाक् जाल मे जो उलझे वह कभी सुलझ न पायेगे।
निज अनुभव रस पान किये बिन नही मोक्ष वे पायेंगे ॥२१॥
अनुभव ही तो शिवसमुद्र है अनुभव शाश्वत सुख का स्त्रोत।
अनुभव परमसत्य शिव सुन्दर अनुभवशिव से ओतप्रोत ॥२२॥
निज स्वभाव के सम्मुख होजा पर से दृष्टिहटा भगवान।
पूर्ण सिद्ध पर्याय प्रकट कर आज अभी पा ले निर्वाण ॥२३॥
ज्ञान चेतना सिधु स्वयं तू स्वयं अनन्त गुणो का भूप।
त्रिभुवन पति सर्वज्ञ ज्योतिमय चितामणि चेतन चिद्रूप ॥२४॥
यह उपदेश श्रवण कर हे प्रभु मैत्री हृदय धारूँ।
जो विपरीत वृत्तिवाले है उन पर मै समता धारूँ ॥२५॥
धीरे धीरे पाप, पुण्य शुभ अशुभ आश्रव संहारूँ।
भव तन भोगो से विरक्त हो निजस्वभाव को स्वीकारूँ ॥२६॥

रुचि विपरीत नाश करने मे अब प्रतिकूल दृष्टि से ऊब।
निज अखण्ड ज्ञायक स्वभाव समशिव सुख सागर मे ही डूब॥

दशधर्मो को पढ सुनकर अन्तर मे आये परिवर्तन।
व्रत उपवास तपादिक द्वारा करूँ सदा ही निज चिंतन॥२७॥
राग द्वेष अभिमान पाप हर काम क्रोध को चूर करूँ।
जो संकल्प विकल्प उठे प्रभु उनको क्षण-क्षण दूर करूँ॥२८॥
अणु भर भी यदि राग रहेगा नही मोक्ष पद पाऊँगा।
तीन लोक मे काल अनता राग लिए भरमाऊँगा॥२९॥
राग शुभाशुभ के विनाश से वीतराग बन जाऊँगा।
शुद्धात्मानुभूति के द्वारा स्वय सिद्ध पद पाऊँगा॥३०॥
पर्यूषण मे दूषण त्यागू बाह्य क्रिया मे रमे न मन।
शिव पथ का अनुसरण करूँ मै बन के नाथ सिद्ध नन्दन॥३१॥
जीव मात्र पर क्षमा भाव रख मै व्यवहार धर्म पालूँ।
निज शुद्धातम पर करुणा कर निश्चय धर्म सहज पालूँ॥३२॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमाधर्मागाय पूर्णार्घ्यं निवपामीति स्वाहा।

मोक्ष मार्ग दर्शा रहा क्षमावाणी का पर्व।
क्षमाभाव धारण करो राग द्वेष हर सर्व॥

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्रीं श्री उत्तम क्षमा धर्मागाय नम।

卐

श्री दीपमालिका पूजन

महावीर निर्वाण दिवस पर महावीर पूजन कर लूँ।
वर्धमान अतिवीर वीर सन्मति प्रभु को वन्दन कर लूँ॥
पावापुर से मोक्ष गये प्रभु निजवर पद अर्चन कर लूँ।
जगमग जगमग दिव्यज्योति से धन्य मनुज जीवन कर लूँ॥
कार्तिक कृष्ण अमावस्या को शुद्ध भाव मन से भर लूँ।
दीपमालिका पर्व मनाऊँ भव भव के बन्धन हर लूँ॥
ज्ञान सूर्य का चिर प्रकाश ले रत्नत्रय पथ पर बढ लूँ।
पर भावो का राग तोडकर निज स्वभाव मे मै अडलूँ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्ण अमावस्याया मोक्ष मगल प्राप्त श्री वर्धमान जिनेन्द्र अत्र अवतर अवतर संवौषट् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ, अत्रमम सन्निहितो भव भवप वषट्।

जिसे सम्यक्त्व होता है उसे ही ज्ञान होता है।
उसे चारित्र होता है उसे निर्वाण होता है ॥

चिदानन्द चैतन्य अनाकुल निज स्वभाव मय जल भरलूँ।
जन्म मरण का चक्र मिटाऊँ भव भव की पीडा हरलूँ॥
दीपावलि के पुण्य दिवस पर वर्धमान पूजना कर लूँ।
महावीर अतिवीर वीर सन्मति प्रभु को वन्दन कर लूँ॥१॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्ण अमावस्या मोक्ष मगल प्राप्त श्री वर्धमान जिनेन्द्र जन्मजरा मृत्युविनाशनाय जल।

अमल अखंड अतुल अविनाशी निज चन्दन उर मे धरलूँ।
चारो गति का ताप मिटाऊँ निज पचमगति आदर लूँ॥दीपा.॥२॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्ण अमावस्या मोक्ष मगल प्राप्त श्री वर्धमान जिनेन्द्राय ससारताप विनाशनाय चदन नि।

अजर अमर अक्षय अविकल अनुपम अक्षत पद उरमे धरलूँ।
भवसागर तक मुक्तिवधू से मै पावन परिणय कर लूँ॥दीपा.॥३॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्ण अमावस्या मोक्ष मगल प्राप्त श्री वर्धमान जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्ताय अक्षत नि।

रूप गध रस स्पर्श रहित निज शुद्ध पुष्प मन मे भर लूँ।
कामबाण की व्यथा नाशकर मैं निष्काम रूप धरलूँ॥दीपा॥४॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्ण अमावस्या मोक्ष मगल प्राप्त श्री वर्धमान जिनेन्द्राय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि।

आत्म शक्ति परिपूर्ण शुद्ध नेवेद्य भाव उर मे धर लूँ।
चिर अतृप्ति का रागनाशकरसहज तृप्तनिजपदवरलूँ॥दीपा.॥५॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्ण अमावस्या मोक्ष मगल प्राप्त श्री वर्धमान जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि।

पूर्ण ज्ञान कैवल्य प्राप्ति हित ज्ञान दीप ज्योतित कर लूँ।
मिथ्या भ्रमतम मोह नाश कर निजसम्यक्त्व प्राप्त कर लूँ॥दीपा.॥६॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्ण अमावस्या मोक्ष मगल प्राप्त श्री वर्धमान जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि।

पुण्य भाव को धूप जलाकर घाति अघाति कर्म हर लूँ।
क्रोधमान माया लोभादिक मोहदोष सब क्षय कर लूँ॥दीपा॥७॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्ण अमावस्या मोक्ष मगल प्राप्त श्री वर्धमान जिनेन्द्र ाय अष्टकर्म विनाशनाय धूप नि।

पराए द्रव्य को अपना समझ कर दुख उठाता है।
जगत की मोह ममता मे स्वय को भूल जाता है ।।

अमिट अनन्त अचल अविनश्वर श्रेष्ठ मोक्षपद उर धर लूँ।
अष्ट स्वगुण से युक्त सिद्ध गति पा सिद्धत्व प्राप्त कर लूँ ।।
दीपावलि के पुण्य दिवस पर वर्धमान पूजना कर लूँ।
महावीर अतिवीर वीर सन्मति प्रभु को वन्दन कर लूँ ।।८।।
ॐ ह्रीं कार्तिककृष्ण अमावस्या मोक्ष मगल प्राप्त श्री वर्धमान जिनेन्द्राय महामोक्षफल प्राप्ताय फल नि ।
गुण अनन्त प्रगटाऊँ अपने निज अनर्घ पद को वर लूँ।
शुद्ध स्वाभावी ज्ञान प्रभावी निज सौन्दर्य प्रगट कर लूँ।।दीपा.।।९।।
ॐ ह्रीं कार्तिककृष्ण अमावस्या मोक्ष मगल प्राप्त श्री वर्धमान जिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्य नि ।

श्री पंचकल्याणक

शुभ अषाढ शुक्ल षष्ठी को पुष्पोत्तर तज प्रभु आये।
माता त्रिशला धन्य हो गई सोलह सपने दरशाये ।।
पन्द्रह मास रत्न बरसे कुण्डलपुर मे आनन्द हुआ।
वर्धमान के गर्भोत्सव पर दूर शोक दुख द्वन्द हुआ ।।१।।
ॐ ह्रीं आषाढ शुक्ल षष्ठया गर्भमगलप्राप्त श्री वर्धमान जिनेन्द्राय अर्घ्य नि ।
चैत्र शुक्ल की त्रयोदशी को सारी जगती धन्य हुई।
नृप सिद्धार्थराज हर्षाये कुण्डलपुरी अनन्य हुई ।।
मेरु सुदर्शन पाण्डुक वन मे सुरपति ने कर प्रभु अभिषेक।
नृत्य वाद्य मगल गीतो के द्वारा किया हर्ष अतिरेक ।।२।।
ॐ ह्रीं चैत्र शुक्ल त्रयोदश्या जन्ममगलप्राप्त श्री वर्धमान जिनेन्द्राय अर्घ्य नि ।
मगसिर कृष्णा दशमी को उर मे छाया वैराग्य अपार।
लौकान्तिक देवो के द्वारा, किया धन्य धन्य प्रभु जय जयकार ।।
बाल ब्रह्मचारी गुणधारी वीर प्रभु ने किया प्रयाण।
बन मे जाकर दीक्षाधारी निज मे लीन हुये भगवान ।।३।।
ॐ ह्रीं मगसिर कृष्ण दशम्या तपोमगल प्राप्त श्री वर्धमान जिनेन्द्राय अर्घ्य नि ।
द्वादश वर्ष तपस्या करके पाया तुमने केवलज्ञान।
कर वैशाख शुक्ल दशमी को त्रेसठ कर्म प्रकृति अवसान ।।

पुण्य से ही निर्जरा होती अगर तो।
हो गया होता अभी तक मोक्ष कबका ।।

सर्व द्रव्य गुण पर्यायो को युगपत एक समय में जान ।
वर्धमान सर्वज्ञ हुए प्रभु वीतराग अरिहन्त महान ।।४।।
ॐ ह्रीं वैशाख शुक्ल दशम्या केवलज्ञान प्राप्त श्रीवर्धमान जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।
कार्तिक कृष्ण अमावस्या को वर्धमान प्रभु मुक्त हुए ।
सादि अनन्त समाधि प्राप्त कर मुक्ति रमा मे युक्त हुए ।।
अन्तिम शुक्ल ध्यान के द्वारा कर अघातिया का अवसान ।
शेष प्रकृति पच्चासी को भी क्षय करके पाया निर्वाण ।।५।।
ॐ ह्री कार्तिक कृष्ण अमावस्याया मोक्ष मगलप्राप्त श्री वर्धमान जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

जयमाला

महावीर ने पावापुर से मोक्ष लक्ष्मी पाई थी ।
इन्द्रसुरो ने हर्षित होकर दीपावली मनाई थी ।।१।।
केवलज्ञान प्राप्त होने पर तीस वर्ष तक किया विहार ।
कोटि कोटि जीवो का प्रभु ने दे उपदेश किया उपकार ।।२।।
पावापुर उद्यान पधारे योग निरोध किया साकार ।
गुणस्थान चौदह को तज कर पहुँचे भव समुद्र के पार ।।३।।
सिद्धशिला पर हुए विराजित मिली मोक्षलक्ष्मी सुखकार ।
जल थल नभ मे देवो द्वारा गूंज उठी प्रभु की जयकार ।।४।।
इन्द्रादिक सुर आये हर्षित मन मे धारे मोद अपार ।
महामोक्ष कल्याण मनाया अखिल विश्व ने मगलकार ।।५।।
अष्टादश गणराज्यो ने राजाओं ने जयगान किया ।
नत मस्तक होकर जन जन ने महावीर का गुणगान किया ।।६।।
तन कपूरवत उडा शेष नख केश रहे इस भूतल पर ।
मायामयी शरीर रचादेवो ने क्षण भर के भीतर ।।७।।
अग्निकुमार सुरो ने झुक मुकुटानल से तन भस्म किया ।
सर्व उपस्थित जन समूह सुरगण ने पुण्य अपार लिया ।।८।।
कार्तिक कृष्ण अमावस्या का दिवस मनोहर सुखकर था ।
उषाकाल का उजियारा कुछ तम मिश्रित अति मनहर था ।।९।।

पुण्य से सवर अगर होता तनिक भी।
तो भ्रमण का कष्ट फिर मिलता न भव का ।।

रत्न ज्योतियो का प्रकाश कर देवो ने मगल गाये।
रत्नदीप की आवलियो से पर्व दीपमाला लाये ।।१०।।
सबने शीश चढाई भस्मी पद्म सरोवर बना वहाँ।
वही भूमि है अनुपम सुन्दर जल मन्दिर है बना जहाँ ।।११।।
इसी दिवस गौतमस्वामी को सन्ध्या केवलज्ञान हुआ।
केवलज्ञान लक्ष्मी पाई पद सर्वज्ञ महान हुआ ।।१२।।
प्रभु के ग्यारह गणधर मे थे प्रमुख श्री गौतमस्वामी।
क्षपक श्रेणि चढ शुक्ल ध्यान से हुए देव अन्तर्यामी ।।१३।।
देवो ने अति हर्षित होकर रत्न ज्योति का किया प्रकाश।
हुई दीपमाला द्विगणित आनन्द हुआ छाया उल्लास ।।१४।।
प्रभु के चरणाम्बुज दर्शन कर हो जाता मन अति पावन।
परम पूज्य निर्वाण भूमि शुभ पावापुर है मन भावन ।।१५।।
अखिल जगत मे दीपावलि त्यौहार मनाया जाता है।
महावीर निर्वाण महोत्सव धूम मचाता आता है ।।१६।।
हे प्रभु महावीर जिन स्वामी गुण अनन्त के हो धामी।
भरत क्षेत्र के अन्तिम तीर्थकर जिनराज विश्वनामी ।।१७।।
मेरी केवल एक विनय है मोक्ष लक्ष्मी मुझे मिले।
भौतिक लक्ष्मी के चक्कर मे मेरी श्रद्धा नही हिले ।।१८।।
भव भव जन्म मरण के चक्कर मैने पाये है इतने।
जितने रजकण इस भूतल पर पाये है प्रभु दुख उतने ।।१९।।
अवसर आज अपूर्व मिला है शरण आपकी पाई है।
भेद ज्ञान की बात सुनी है तो निज की सुधि आई है।।२०।।
अब मै कही नही जाऊँगा जब तक मोक्ष नही पाऊँ।
दो आशीर्वाद हे स्वामी नित्य मगल गाऊँ ।।२१।।

ॐ ह्री कार्तिक कृष्ण अमावस्या निर्वाण कल्याणक प्राप्ताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय अर्घ्य नि ।

दीपमालिका पर्व पर महावीर उर धार।
भाव सहित जो पूजते पाते सौख्य अपार ।।

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्रीं श्री वर्धमान जिनेन्द्राय नम ।

समकित का दीप जला अंधियारा दूर हुआ।
अज्ञान तिमिर नाश भ्रम तम चकचूर हुआ॥

श्री ऋषभजयन्ती पूजन

जम्बूद्वीप सुभरत क्षेत्र मे है उत्तरप्रदेश शुभ नाम।
सरयूतट पर नगर अयोध्या प्रभु की जन्मभूमि अभिराम॥
कर्मभूमि के प्रथम जिनेश्वर आदिनाथ मंगलदाता।
जो शरण आपकी आता सम्यकदर्शन प्रगटाता॥
वर्तमान चौबीसी के तीर्थंकर आदीश्वर भगवान।
विनयसहित पूजनकरता हूँ निजस्वभाव को लूँ पहचान॥
ऋषभदेव के जन्मदिवस पर वृषभनाथ प्रभु को ध्याऊँ।
आदिब्रह्म वृषभेश्वर जिनप्रभु महादेव के गुण गाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री ऋषभदेव जिनेन्द्र अत्र अवतर अवतर सवौषट् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्।

शुद्धनीर प्रभु चरण चढाऊँ जन्म जरादिक विनशाऊँ।
वीतराग विज्ञान ज्ञानघन निजस्वभाव में आ जाऊँ॥ऋषभ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री ऋषभदेव जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल नि।

सहज सुगन्धित चदन लाऊ भवाताप सब विनशाऊँ।
वीतराग विज्ञान ज्ञानघन निजस्वभाव मे आजाऊँ॥ऋषभ॥२॥

ॐ ह्रीं श्री ऋषभदेव जिनेन्द्राय ससारताप विनाशनाय चन्दन नि।

सर्वोत्तम भावो के अक्षत लाऊँ अक्षय पद पाऊँ।
वीतराग विज्ञान ज्ञानघन निजस्वभाव में आजाऊँ॥ऋषभ.॥३॥

ॐ ह्रीं श्री ऋषभदेव जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्ताय अक्षत नि।

सुरतरु पुष्प सुवासित लाऊँ कामव्याधि सब विनशाऊँ।
वीतराग विज्ञान ज्ञानघन निज स्वभाव में आ जाऊँ॥ ऋषभ.॥४॥

ॐ ह्रीं श्री ऋषभदेव जिनेन्द्राय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि।

पुण्यभाव नैवद्य त्यागकर क्षुधारोग पर जय पाऊँ।
वीतराग विज्ञान ज्ञानघन निज स्वभाव मे आ जाऊँ॥ऋषभ.॥५॥

ॐ ह्रीं श्री ऋषभदेव जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय दीप नि।

अष्टकर्म की धूप जलाऊँ शुक्ल ध्यान अनुपम ध्याऊँ।
वीतराग विज्ञान ज्ञानघन निजस्वभाव मे आ जाऊँ॥ऋषभ.॥६॥

निज तब तक उलझेगा ससार विजल्पो मे ।
कितने भव बीत चुके सकल्प विकल्पो मे ॥

ॐ ह्रीं श्री ऋषभदेव जिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय धूप नि ।

महामोक्ष फल प्राप्त करूँ निश्चय रत्नत्रय उर लाऊँ ।
वीतराग विज्ञान ज्ञानघन निज स्वभाव में आ जाऊँ ॥ऋषभ.॥७॥

ॐ ह्रीं श्री ऋषभदेव जिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वसनाय धूप नि ।

महामोक्ष फल प्राप्त करूँ निश्चय रत्नत्रय उर लाऊँ ।
वीतराग विज्ञान ज्ञानघन निज स्वभाव मे आ जाऊँ ॥ऋषभ.॥८॥

ॐ ह्रीं श्री ऋषभदेव जिनेन्द्राय महा मोक्षफलप्राप्तये फल नि ।

शुद्धभाव का अर्घ्य बनाऊँ पद अनर्घ्य अविचल पाऊँ ।
वीतराग विज्ञान ज्ञानघन निजस्वभाव मे आ जाऊँ ॥ऋषभ ॥९॥

ॐ ह्रीं श्री ऋषभदेव जिनेन्द्राय अनर्घ पद प्राप्ताय अर्घ्य नि ।

जयमाला

ऋषभ देव जिनराज को नित प्रति करूँ प्रणाम ।
भाव सहित पूजन करू पाऊ निज ध्रुवधाम ॥१॥
भोग भूमि का अन्त हुआ जब कल्पवृक्ष सब हुए विलीन ।
ज्योति मंद होते ही नभ मे दृष्टित रवि शशि हुए प्रवीण ॥२॥
चौदह कुलकर हुए जिन्हो से कर्म भूमि प्रारम्भ हुई ।
अन्तिम कुलकर नाभिराय से नई दिशा आरम्भ हुई ॥३॥
तृतीय काल के अन्त समय मे भरत क्षेत्र को धन्य किया ।
सर्वार्थसिद्धि से चयकर तुमने मरुदेवी उरवास लिया ॥४॥
चैत्र कृष्ण नवमी को प्रात नगर अयोध्या जन्म लिया ।
तब स्वर्गो मे बजी बधाई जग ने जय जय गान किया ॥५॥
सुरपति ने स्वर्णिम सुमेरु पर क्षीरोदधि अभिषेक किया ।
पग मे वृषभ चिन्ह लखते ही वृषभनाथ यह नाम दिया ॥६॥
लक्ष चुरासी वर्षो का होता पूर्वाग एक जानो ।
लक्ष चुरासी पूर्वाग का होता एक पूर्व जानो ॥७॥
लाख चुरासी पूर्व आयु थी धनुष पाच सौ पाया तन ।
लाख तिरासी पूर्व राज्य कर हुए जगत से उदास मन ॥८॥
नीलांजना मरण लखते ही भव तन भोग उदास हुए ।
कर चिन्तवन भावना द्वादश जिन स्वभाव के पास हुए ॥९॥

पर द्रव्यो मे कही न सुख है तज इनमे सुख की आशा।
धन शरीर परिवार बधु सब ही दुख है परिभाषा॥

मात पिता से आज्ञा लेकर पुत्र भरत को राज्य दिया।
बाहुबली ने प्रभु आज्ञा से पोदनपुर का राज्य लिया॥१०॥
लौकातिक सुर साधुवाद देने प्रभु चरणो में आये।
तपकल्याण मनाने को इन्द्रादिक सुर आ हर्षाये॥११॥
अन्य नृपति भी दीक्षित होने प्रभु के साथ गए वनवास।
वन मे जाकर प्रभु ने दीक्षाधारी निज मे कियानिवास॥१२॥
एक सहस्त्र वर्ष तप करके निज स्वभाव का ध्यान किया।
पाप पुण्य परभाव नाशकर अद्भुत केवलज्ञान लिया॥१३॥
समवशरण रच इन्द्रसुरो ने किया अपूर्व ज्ञानकल्याण।
मोक्षमार्ग संदेश आपने दिया जगत को श्रेष्ठ प्रधान॥१४॥
भरत क्षेत्र मे बन्द मोक्ष का मार्ग पुन प्रारम्भ किया।
पुत्र अनन्तवीर्य ने शिव पद पा यह क्रम आरम्भ किया॥१५॥
प्रभु ने एक लाख पूरब तक भरत क्षेत्र मे किया विहार।
अष्टापद कैलाश शिखर से आप हुए भव सागर पार॥१६॥
योग निरोध पूर्ण करके प्रभु ने पाया पद निर्वाण।
सिद्ध स्वपद सिहासन पाया वसु कर्मो का कर अवसान॥१७॥
वृषभसेन गणधर चौरासी गणधर में थे मुख्य प्रधान।
कर रचना अन्तमुहर्त मे द्वादशाग की हुए महान॥१८॥
नाथ तत्व उपदेश आपका हम भी हृदयगंभ कर ले।
आत्मतत्व निज की प्रतीति कर हम सब मिथ्यातम हरले॥१९॥
तज पर्याय दृष्टि दुखदायी द्रव्य दृष्टि ही बन जाये।
ध्रुव स्वरूप का अवलबन ले सादि अनत स्वपद पाये॥२०॥
अपने अपने परिणामों के द्वारा पाये आत्म प्रकाश।
वीतराग निर्ग्रन्थ मार्ग का जागा है उर मे विश्वास॥२१॥
प्रभु की जन्म जयन्ती के अवसर पर तत्व विचार करे
निश्चय समकित की औषधिया भव के सर्व विकार हरे॥२२॥

ॐ ह्रीं श्री ऋषभनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्य नि।

ऋषभ जयन्ती पर्व की गूज रही जयकार।
वीतराग जिनमार्ग ही एक जगत मे सार॥

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्रीं श्री ऋषभनाथ जिनेन्द्राय नम।

श्री महावीर जयन्ती पूजन

महावीर को जन्म जयन्ती का दिन जग में है विख्यात।
चैत्र शुक्ल की त्रयोदशी को हुआ विश्व में नवल प्रभात ॥
कुण्डलपुर वैशाली नृप सिद्धार्थराज गृह जन्म लिया।
माता त्रिशला धन्य हो गई वर्धमान रवि उदय हुआ ॥
इन्द्रादिक ने मंगल गाये गिरि सुमेरु पर कर नर्तन।
एक सहस्त्र आठ कलशों से क्षीरोदधि से किया न्हवन ॥
तीन लोक में आनन्द छाया घर-घर मंगलाचार हुआ।
दशों दिशायें हुई सुगन्धित प्रभु का जय जयकार हुआ ॥
दुखी जगत के जीवो का प्रभु के द्वारा उपकार हुआ।
निज स्वभाव जप मोक्ष गये प्रभु सिद्ध स्वपद साकार हुआ ॥
मै भी प्रभु के जन्म महोत्सव पर पुलकित हो गुण गाऊँ।
अष्ट द्रव्य से प्रभु चरणों की पूजन करके हर्षाऊँ ॥

ॐ ह्रीं चैत्र शुक्ल त्रयोदश्या जन्ममगलप्राप्त श्री महावीर जिनेन्द्र अत्र अवतर अवतर सवौषट, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट।

क्षीरोदधि का क्षीर वर्ण समय भाव नीर लेकर आऊँ।
प्रभु चरणो मे भेट चढाऊँ परम शात जीवन पाऊँ ॥
महावीर के जन्म दिवस पर महावीर प्रभु को ध्याऊँ।
महावीर के पथ पर चल कर महावीर सम बन जाऊँ ॥१॥

ॐ ही चैत्र शुक्ल त्रयोदश्या जन्ममगलप्राप्त श्री महावीर जिनेन्द्राय-जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल नि।

मलयागिरि चन्दन से उत्तम गध स्वयं को प्रगटाऊँ।
निज स्वभाव साधन से स्वामी शाश्वत शीतलता पाऊँ ॥महा ॥२॥

ॐ ह्रीं चैत्र शुक्ल त्रयोदश्या जन्ममगलप्राप्त श्रीमहावीर जिनेन्द्राय ससारताप विनाशनाय चन्दन नि।

शुभ्र अखण्डित धवलाक्षत ले भावरहित प्रभु गुणगाऊँ।
निज स्वरूप की महिमा गाऊ अनुपम अक्षय पद पाऊँ ॥महा.॥३॥

ॐ ह्रीं चैत्र शुक्ल त्रयोदश्यो जन्ममगलप्राप्त श्री महावीर जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्ताय अक्षत नि स्वाहा।

पाप पुण्य तज जो निजात्मा को ध्याता है।
वही जीव परिपूर्ण मोक्ष सुख विलसाता है ॥

कल्पवृक्ष के पुष्प मनोहर भावमयी लेकर आऊँ।
पर परणति से विमुख बनूं निष्काम नाथ मैं बन जाऊँ ॥महा.॥४॥

ॐ ह्रीं चैत्र शुक्ल त्रयोदश्या जन्ममगलप्राप्त श्री महावीर जिनेन्द्राय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि ।

षट रस नैवेद्य अनूठे भाव पूर्ण लेकर आऊँ।
निज परिणति में रमण करूँ मैं पूर्णतृप्त प्रभु बन जाऊँ ॥महा.॥५॥

ॐ ह्रीं चैत्र शुक्ल त्रयोदश्या जन्ममगलप्राप्त श्री महावीर जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि ।

स्वर्ण थाल मे रत्नदीप निज भावो को लेकर आऊँ।
केवलज्ञान प्रकाश सूर्य की ज्योति किरण निज प्रगटाऊँ ॥महा.॥६॥

ॐ ह्रीं चैत्र शुक्ल त्रयोदश्याजन्ममगलप्राप्त श्री महावीर जिनेन्द्राय मोहाधकार विनाशनाय दीप नि ।

दशगन्धों की दिव्य धूप मै शुद्ध भाव की ही लाऊँ।
दश धर्मो की परम शक्ति से अष्ट कर्म रज विघटाऊँ ॥महा ॥७॥

ॐ ह्रीं चैत्र शुक्ल त्रयोदश्या जन्ममगलप्राप्त श्री महावीर जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूप नि स्वाहा ।

विविध भाति के सुर फल प्रभु परम भावना मय लाऊँ।
महामोक्ष फल पाऊँ स्वामी फिर न लौट भव मे आऊँ ॥महा ॥८॥

ॐ ह्रीं चैत्र शुक्ल त्रयोदश्या जन्ममगलप्राप्त श्री महावीर जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फल नि ।

जल फलादि वसु द्रव्य अर्घ शुभ ज्ञानभाव का ही लाऊँ।
साम्य भाव चरित्र धर्म पा निज अनर्घ पदवी पाऊँ ॥महा.॥९॥

ॐ ह्रीं चैत्र शुक्ल त्रयोदश्या जन्ममगलप्राप्त श्री महावीर जिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्ताय अर्घ्य नि

जयमाला

जन्म दिवस श्री वीर का गाओ मगल गान।
आत्म ज्ञान की शक्ति से होता निज कल्याण ॥१॥

इस अखिल विश्व मे जब प्रभु हिंसा का राज्य रहा था।
तब सत्य शाति सुख विलय कर पापों का स्त्रोत बहा था ॥२॥

अन्तर्जल्पो मे जो उलझा निज पद न प्राप्त कर पाता है।
सकल्प विकल्प रहित चेतन निज सिद्ध स्वपद पा जाता है ।।

ले ओट धर्म की पापी अन्याय पाप करते अति ।
वे धर्म बताते थे ''वैदिक हिंसा हिंसा न भवति'' ।।३।।
पशु बलि, जन बलि, यज्ञों मे होती थी जब अति भारी ।
''स्त्री शौद्रनाधीयताम्'' का आधिपत्य था भारी ।।४।।
जगती तल पर होता था हिंसा का ताडव नर्तन ।
उत्पीडित विश्व हुआ लख पापों का भीषण गर्जन ।।५।।
जब-जग में त्राहि त्राहि की अरु पृथ्वी कॉपी थर थर ।
तब दिव्य ज्योति दिखलाई आशा के नभ मण्डल पर ।।६।।
भारत के स्वर्ण सदन मे अवतरित हुए करुणामय ।
श्री वीर दिवाकर प्रगटे तब विश्व हुआ ज्योतिर्मय ।।७।।
आगमन वीर का लखकर सन्तुष्ट हुआ जग सारा ।
अन्यायी हुए प्रकम्पित पापो का तजा सहारा ।।८।।
पतितो दलितो दीनो को तब प्रभु ने शीघ्र उठाया ।
अरु दिव्य अलौकिक अनुपम जग को सन्देश सुनाया ।।९।।
पापी को गले लगाना पर घृणा पाप से करना ।
प्रभु ने शुभ धर्म बताया दुख कष्ट विश्व के हरना ।।१०।।
ये पुण्य पाप की छाया ही जग मे सदा भ्रमाती ।
पर द्रव्यो की ममता ही चारो गति मे अटकाती ।।११।।
अब मोह ममत्व विनाशो समकित निज उर मे लाओ ।
तप सयम धारण करके निर्वाण परम पद पाओ ।।१२।।
है धर्म अहिंसामय ही रागादिक भाव है हिसा ।
रत्नत्रय सफल तभी है उर मे हो पूर्ण अहिंसा ।।१३।
निज के स्वरूप के देखो निज का ही लो अवलम्बन ।
निज के स्वभाव से निश्चित कट जायेगे भव बन्धन ।।१४।।
है जीव समान सभी हो एकेन्द्रिय या पचेन्द्रिय ।
है शुद्ध सिद्ध निश्चय से चैतन्य स्वरूप अनिन्द्रिय ।।१५।।
''केवलि पण्णत धम्म शरणं पव्वज्जामी'' से ।
जग हुआ मधुर गुजारित प्रभु की निर्मल वाणी से ।।१६।।

पर हाय सदा हम भूले उपदेश वीर के अनुपम।
जाते अधर्म के पथ पर छाया अज्ञान निविडतम ।।१७।।
हम रुढि वाद के बन्धन मे जकडे हुए खडे है।
अवनति के गहरे गड्ढे मे बेसुध हुए पडे है ।।१८।।
इससे अब तो हम चेते श्री वीर जयन्ती आयी।
भूमण्डल के जीवो को नूतन सन्देशा लायी ।।१९।।
चेतो चेतो हे वीरो अब नही समय सोने का।
आलस्य मोह निद्रा मे अवसर है न खोने का ।।२०।।
कर्तव्य धर्ममय पालो अरु त्यागो कर्म निरर्थक।
तव वीर जयन्ति मनाना होगा। अनुपम सार्थक ।।२१।।
श्री वर्धमान सन्मति को अतिवीर वीर को वन्दन।
है महावीर स्वामी का अति विनय भाव से अर्चन ।।२२।।
आशीर्वाद दो हे प्रभु हम द्रव्य दृष्टि बन जाये।
रागादि भाव को जयकर परमात्म परमपद पाये ।।२३।।

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लत्रयोदश्या जन्ममगलप्राप्त श्री महावीराय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्य नि।

वीर जयन्ती दे रही शुभ सदेश महान।
प्राणिमात्र मे प्रेमकर करो आत्म कल्याण।।

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय नम।

卐

श्री अक्षय तृतीया पूजन

अक्षय तृतीय पर्व दान का ऋषभदेव ने दान लिया।
नृप श्रेयास दान दाता थे, जगती ने यशगान किया।।
अहो दान की महिमा, तीर्थकर भी लेते हाथ पसार।
होते पचाश्चर्य पुण्य का भरता है अपूर्व भण्डार।।
मोक्ष मार्ग के महाव्रती को, भाव सहित जो देते दान।
निज स्वरूप जप वह पाते है निश्चित शाश्वत पद निर्वाण।।

जो निश्चय को भूले भटके भी न कभी अपनाते है।
मोह, राग, द्वेषादि भाव से निज को जान न पाते है ॥

दान तीर्थ के कर्ता नृप श्रेयांस हुए प्रभु के गणधर।
मोक्ष प्राप्त कर सिद्ध लोक में पाया शिवपद अविनश्वर ॥
प्रथम जिनेश्वर आदिनाथ प्रभु तुम्हे नमन है बारम्बार।
गिरिकैलाशशिखर से तुमने लिया सिद्धपद मंगलकार ॥
नाथ आपके चरणाम्बुज मे श्रद्धा सहित प्रणाम करूँ।
त्याग धर्म की महिमा गाऊँ मै सिद्धों का धाम वरूँ ॥
शुभ वैशाख शुक्ल तृतीया का दिवस पवित्र महान हुआ।
दान धर्म की जय जय गूंजी अक्षय पर्व प्रधान हुआ ॥

ॐ ह्री श्री आदिनाथजिनेन्द्र अत्र अवतर अवतर सवौषट् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ अत्रमम सन्निहितो भव भव वषट्।

कर्मोदय से प्रेरित होकर विषयो का व्यापार किया।
उपादेय को भूल हेय तत्वो से मैने प्यार किया ॥
जन्म मरण दुख नाश हेतु मै आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ।
अक्षय तृतीया पर्व दान का नृप श्रेयास सुयश गाऊँ ॥१॥

ॐ ह्री श्री आदिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जल नि ।

मन वच काया की चचलता कर्म आश्रव करती है।
चार कषायो की छलना ही भव सागर दुख भरती है॥
भवाताप के नाश हेतु मै आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ ॥अक्षय ॥२॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय ससारतापविनाशनायचन्दन नि ।

इन्द्रिय विषयो के सुख क्षण भगुर विद्युतसम चमकअथिर।
पुण्य क्षीण होते ही आते महा असाता के दिन फिर ॥
पद अखड की प्राप्तिहेतु मै आदिनाथप्रभु को ध्याऊँ ॥अक्षय॥३॥

ॐ ह्री श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षत नि ।

शील विनय व्रत तप धारण करके भी यदि परमार्थ नही।
बाह्य क्रियाओ मे ही उलझे वह सच्चा पुरुषार्थ नहीं ॥
काम बाण के नाश हेतु मै आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ ॥अक्षय॥४॥

ॐ ह्री श्री आदिनाथजिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्प नि ।

दर्शन ज्ञान चरित्र नियम है, जो कि नियम से करने योग्य।
कारण नियम त्रिकाल शुद्ध ध्रुव, सहज स्वभाव आश्रय योग्य ॥

विषय लोलुपी भोगों की ज्वाला मे जल जल दुख पाता।
मृग तृष्णा के पीछे पागल नर्क निगोदादिक जाता ॥
क्षुधा व्याधि के नाश हेतु मैं आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ ॥
अक्षय तृतीया पर्व दान का नृप श्रेयास सुयश गाऊँ ॥५॥
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि।
ज्ञान स्वरूप आत्मा का जिनको श्रद्धान नहीं होता।
भव तन मे ही भटका करता है निर्वाण नही होता ॥
मोह तिमिर के नाशहेतु मै आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ ॥अक्षय॥६॥
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीप नि।
कर्म फलों को वेदन करके सुखी दुखी जो होता है।
अष्ट प्रकार कर्म का बन्धन सदा उसी को होता है॥
कर्म शत्रु का नाश हेतु मै आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ ॥अक्षय ॥७॥
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूप नि।
जो कर्मो से विरक्त होकर बन्धन का अभाव करता।
प्रज्ञाछैनी ले बन्धन को पृथक शीघ्र निज से करता ॥
महामोक्ष फल प्राप्ति हेतु मै आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ ॥अक्षय ॥८॥
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय महामोक्षफल प्राप्तये फल नि।
पर मेरा क्या कर सकता है मै पर का क्या कर सकता।
यह निश्चय करने वाला ही भव अटवी के दुख हरता ॥
पद अनर्घ की प्राप्ति हेतु मै आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ ॥अक्षय ॥९॥
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं नि।

जयमाला

चार दान दो जगत मे जो चाहो कल्याण।
औषधि भोजन अभय अरु सद्शास्त्रो का ज्ञान ॥१॥
पुण्य पर्व अक्षयतृतीया का हमे दे रहा है ये ज्ञान।
दान धर्म की महिमा अनुपम श्रेष्ठ दान दो बनो महान ॥२॥
दान धर्म की गौरव गाथा का प्रतीक है यह त्यौहार।
दान धर्म का शुभ प्रेरक है सदा दान की जय जयकार ॥३॥

आदिनाथ ने अर्ध वर्ष तक किये तपस्या मय उपवास।
मिली न विधि फिर अन्तराय होते होते बीते छ मास ।।४।।
मुनि आहार दान देने की विधि थी नही किसी को ज्ञात।
मौन साधना मे तन्मय हो प्रभु विहार करते प्रख्यात ।।५।।
नगर हस्तिनापुर के अधिपति सोम और श्रेयास सुभ्रात।
ऋषभदेव के दर्शन कर कृत कृत्य हुए पुलकित अभिजात ।।६।।
श्रेयास को पूर्व जन्म का स्मरण हुआ तत्क्षण विधिकार।
विधिपूर्वक पडगाहा प्रभु को दिया इक्षु रस का आहार ।।७।।
पचाश्चर्य हुए प्रागण मे हुआ गगन मे जय जयकार।
धन्य धन्य श्रेयास दान का तीर्थ चलाया मगलकार ।।८।।
दान पुण्य की यह परम्परा हुई जगत मे शुभ प्रारम्भ।
हो निष्काम भावना सुन्दर मन से लेश न हो कुछ दम्भ ।।९।।
चार भेद हैं दान धर्म के औषधि शास्त्र अभय आहार।
हम सुपात्र के योग्य दान दे बने जगत मे परम उदार ।।१०।।
धन वैभव तो नाशवान है अत करे जी भरके दान।
इस जीवन मे दान कार्यकर करे स्वय अपना कल्याण ।।११।।
अक्षयतृतीया के महत्व को यदि निज मे प्रगटायेगे।
निश्चित ऐसा दिन आयेगा हम अक्षयफल पायेगे ।।१२।।
हे प्रभु आदिनाथ मगलमय हमको भी ऐसा वर दो।
सम्यक्ज्ञान महान सूर्य का अन्तर मे प्रकाश कर दो ।।१३।।

ॐ ह्री श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ पद प्राप्ताय पूर्णार्घ्य नि ।

अक्षयतृतीया पर्व की महिमा अपरम्पार।
त्याग धर्म जो साधते हो जाते भवपार ।।

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्री श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय नम ।

राग पर का छूट जाए जब स्वय का भान हो।
ध्रुव अचल अनुपम स्वगति पा स्वय ही भगवान हो।।

श्री श्रुत पंचमी पूजन

स्याद्वाद मय द्वादशाग युत माँ जिनवाणी कल्याणी।
जो भी शरण हृदय से लेता हो जाता केवलज्ञानी।।
जय जय जय हितकारी शिव सुखकारीमाता जय जय जय।
कृपा तुम्हारी से ही होता भेद ज्ञान का सूर्य उदय।।
श्री धरसेनाचार्य कृपा से मिला परम जिनश्रुत का ज्ञान।
भूतबली मुनि पुष्पदन्त ने षट्खडागम रचा महान।।
अकलेश्वर मे यह ग्रथ हुआ था पूर्ण आज के दिन।
जिनवाणी लिपि बद्ध हुई थी पावन परम आज के दिन।।
ज्येष्ठ शुक्लपचमी दिवस जिनश्रुत का जय जयकार हुआ।
श्रुत पंचमी पर्व पर श्री जिनवाणी का अवतार हुआ।।

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट् खण्डागम अत्र अवतर-अवतर सवौषट् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ अत्रमम् सन्निहितो भव भव वषट्।

शुद्ध स्वानुभव जल धारा से यह जीवन पवित्र करलूँ।
साम्य भाव पीयूष पान कर जन्म जरामय दुख हरलूँ।।
श्रुत पचमी पर्व शुभ उत्तम जिन श्रुत को वदन कर लूँ।
षट् खण्डागम धवल जयधवल महाधवल पूजन करलूँ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खण्डागमाय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल नि।

शुद्ध स्वानुभव का उत्तम पावन चन्दन चर्चित कर लूँ।
भव दावानल के ज्वालामय अघसताप ताप हरलूँ।।श्रुत।।२।।

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खण्डागमाय ससारतापविनाशनाय चदन नि।

शुद्ध स्वानुभव के परमोत्तम अक्षय हृदय धर लूँ।
परम शुद्ध चिद्रूप शक्ति से अनुपम अक्षय पद वर लूँ।।श्रुत।।३।।

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खण्डागमाय अक्षयपद प्राप्तये अक्षत नि।

शुद्ध स्वानुभव के पुष्पो से निज अन्तर सुरभित करलूँ।
महाशील गुण के प्रताप से मै कदर्प दर्प हर लूँ।।श्रुत.।।४।।

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खण्डागमाय कामबाणविध्वसनाय पुष्प नि।

शुद्ध स्वानुभव के अति उत्तम प्रभु नैवेद्यप्राप्त कर लूँ।
अमल अतीन्द्रिय स्वभाव सेदुखमय क्षुधाव्याधिहरलूँ।।श्रुत।।५।।

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खण्डागमाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि।

अगर जगत में सुख होता तो तीर्थंकर क्यों इसको तजते।
पुण्यो का आनन्द छोड़कर निज स्वभाव चेतन क्यो भजते ॥

शुद्ध स्वानुभव के प्रकाशमय दीप प्रज्वलित मैं करलूँ।
मोहतिमिर अज्ञान नाश कर निज कैवल्य ज्योति वरलूँ ॥श्रुत.॥६॥

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खण्डागमाय अज्ञानान्धकारविनाशनाय दीप नि ।

शुद्ध स्वानुभव गन्ध सुरभिमय ध्यान धूप उर में भरलूँ।
संवर सहित निर्जरा द्वारा मैं वसु कर्म नष्ट कर लूँ।
श्रुत पंचमी पर्व शुभ उत्तम जिन श्रुत को वंदन कर लूँ।
षट् खण्डागम धवल जयधवल महाधवल पूजन करलूँ ॥७॥

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खण्डागमाय अष्टकर्म दहनाय धूप नि ।

शुद्ध स्वानुभव का फल पाऊँ मैं लोकाग्र शिखर वर लूँ।
अजर अमर अविकल अविनाशी पदनिर्वाण प्राप्त कर लूँ ॥८॥

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खण्डागमाय महा मोक्षफल प्राप्तये फल नि ।

शुद्ध स्वभाव दिव्य अर्घ ले रत्नत्रय सुपूर्ण कर लूँ।
भव समुद्र को पार करूँ प्रभु अनर्घ पद मै वर लूँ ॥श्रुत ॥९॥

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खण्डागमाय अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्य नि ।

जयमाला

श्रुत पचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का।
गूजा जय जय कार जगत् मे जिन श्रुत जय जय कार का ॥१॥
ऋषभदेव की दिव्य ध्वनि का लाभ पूर्ण मिलता रहा।
महावीर तक जिनवाणी का विमल वृक्ष खिलता रहा ॥२॥
हुए केवली अरु श्रुतकेवलि ज्ञान अमर फलता रहा।
फिर आचार्यो के द्वारा यह ज्ञान दीप जलता रहा ॥३॥
भव्यो मे अनुराग जगाता मुक्ति वधू के प्यार का।
श्रुत पचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का ॥४॥
गुरु परम्परा से जिनवाणी निर्झर सी झरती रही।
मुमुक्षुओ को परम मोक्ष का पथ प्रशस्त करती रही ॥५॥
किन्तु काल की घडी मनुज की स्मरण शक्ति हरती रही।
श्री धरसेनाचार्य हृदय मे करुण टीस भरती रही ॥६॥

द्वादशांग का लोप हुआ तो क्या होगा संसार का।
श्रुत पचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का ।।७।।
शिष्य भूतवलि पुष्पदन्त की हुई परीक्षा जान की।
जिनवाणी लिपिबद्ध हेतु श्रुत विद्या विमल प्रदान की ।।८।।
ताड पत्र पर हुई अवतरित वाणी जन कल्याण की।
षट्खण्डागम महाग्रन्थ करुणानुयोग जय ज्ञान की ।।९।।
ज्येष्ठ शुक्ल पचमी दिवस था सुरनर मंगलचार का।
श्रुत पचमी पर्व अति पावन है श्रुत अवतार का ।।१०।।
धन्य भूतवलि पुष्पदन्त जय श्री धरसेनाचार्य की।
लिपि परम्परा स्थापित करके नई क्रांति साकार की ।।११।।
देवों ने पुष्पों को वर्षा नभ से अगणित बार की।
धन्य धन्य जिनवाणी माता निज पर भेद विचार की ।।१२।।
ऋणी रहेगा विश्व तुम्हारे निश्चय का व्यवहार का।
श्रुत पचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का ।।१३।।
धवला टीका वीरसेन कृत बहत्तर हजार श्लोक।
जय धवला जिनसेन वीरकृत उत्तम साठ हजार श्लोक ।।१४।।
महाधवल है देवसेन कृत है चालीस हजार श्लोक।
विजयधवल अरु अतिशय धवल नहीं उपलब्ध एक श्लोक ।।१५।।
षट्खण्डागम टीकाए पढ मन होता भव पार का।
श्रुत पचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का ।।१६।।
फिर तो ग्रन्थ हजारो लिक्खे ऋषि मुनियो ने ज्ञानप्रधान।
चारों ही अनुयोग रचे जीवो पर करके करुणा दान ।।१७।।
पुण्य कथा प्रथमानुयोग द्रव्यानुयोग है तत्व प्रधान।
ऐक्सरे करुणानुयोग चरणानुयोग कैमरा महान ।।१८।।
यह परिणाम नापता है वह ब्राह्य चरित्र विचार का।
श्रुत पंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का ।।१९।।
जिनवाणी की भक्ति करें हम जिनश्रुत की महिमा गाये।
सम्यग्दर्शन का वैभव ले भेद ज्ञान निधि को पायें ।।२०।।
रत्नत्रय का अवलम्बन ले जिन स्वरूप मे रम जाये।
मोक्ष मार्गपर चले निरन्तर फिर न जगत में भरमाये ।।२१।।

धन्य धन्य अवसर आया है अब निज के उद्धार का।
श्रुत पचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का ।।२२।।
गूंजा जय जय नाद जगत् मे जिन श्रुत जय जयकार का।
ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खण्डागमाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रुत पंचमी सुपर्व पर करो तत्व का ज्ञान।
आत्म तत्व का ध्यान कर पाओ पद निर्वाण ।।

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतेभ्यो नम ।

卐

श्री वीरशासन जयन्ती पूजन

वर्धमान अतिवीर वीर प्रभु सन्मति महावीर स्वामी।
वीतराग सर्वज्ञ जिनेश्वर अन्तिम तीर्थकर नामी ।।
श्री अरिहतदेव मगलमय स्वपर प्रकाशक गुणधामी।
सकल लोक के ज्ञाता दृष्टा महापूज्य अन्तर्यामी ।।
महावीर शासन का पहला दिन श्रावण कृष्णा एकम।
शासन वीर जयन्ती आती है प्रतिवर्ष सुपावनतम ।।
विपुलाचल पर्वत पर प्रभु के समवशरण मे मगलकार।
खिरी दिव्य ध्वनि शासन वीर जयन्ती पर्व हुआ साकार ।।
प्रभु चरणाम्बुज पूजन करने का आया उर मे शुभ भाव।
सम्यक्ज्ञान प्रकाश मुझे दो, राग द्वेष का करूँ अभाव ।।
ॐ ह्रीं श्री सन्मति वीर जिनेन्द्र अत्र अवतर अवतर सवौषट, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ , अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्।

भाग्यहीन नर रत्न स्वर्ण को जैसे प्राप्त नही करता।
ध्यानहीनमुनि निजआतम का त्यो अनुभवन नही करता ।।
शासन वीर जयन्ती पर जल चढा वीर का ध्यान करूँ।
खिरी दिव्य ध्वनि प्रथम देशना सुन अपना कल्याणकरूँ ।।१।।
ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जल नि ।
विविध कल्पना उठती मन मे वे विकल्प कहलाते है।
बाह्य पदार्थो मे ममत्व मन के सकल्प रुलाते है।।

मिथ्यात्व बध गति गति के हरता है।
सम्यक्त्व बध गति गति के हरता है ।।

शासन वीर जयन्ती पर चन्दन अर्पित कर ध्यान करूँ ।।
खिरी दिव्य ध्वनि प्रथम देशना सुन अपना कल्याणकरूँ ।।२।।
ॐ ही श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्रायससारताप विनाशनाय चदन नि ।
अतरग बहिरग परिग्रह त्यागूँ, मै निर्ग्रन्थ बनूँ।
जीवन मरण, मित्र अरि सुख दुख लाभ हानि मे साम्यबनूँ ।।
शासन वीर जयन्ती पर, कर अक्षत भेट स्वध्यान करूँ ।।खिरी.।।३।।
ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्ताय अक्षत नि ।
शुद्ध सिद्ध ज्ञानादि गुणो से मै समृद्ध हूं देह प्रमाण ।
नित्य असख्यप्रदेशी निर्मल हूँ अमूर्तिक महिमावान ।।
शासन वीर जयन्ती पर, कर भेट पुष्प निज ध्यान करूँ ।।खिरी ।।४।।
ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्र ाय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि ।
परम तेज हूँ परम ज्ञान हूँ परम पूर्ण हूँ बाह्य स्वरूप ।
निरालम्ब हूँ निर्विकार हूँ निश्चय से मै परम अनूप ।।
शासन वीर जयन्ती पर नैवेद्य चढा निज ध्यान करूँ ।।खिरी ।।५।।
ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्र ाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि ।
स्वपर प्रकाशक केवलज्ञानमयी, निज मूर्ति अमूर्ति महान ।
चिदानन्द टकोत्कीर्ण हूँ ज्ञान ज्ञेय ज्ञाता भगवान ।।
शासन वीर जयन्ती पर मै दीप चढा निज ध्यान करूँ ।।खिरी.।।६।।
ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्र ाय मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि ।
द्रव्य कर्म ज्ञानावरणादिक देहादिक नोकर्म विहीन ।
भाव कर्म रागादिक से मै पृथक आत्मा ज्ञान प्रवीण ।।
शासन वीर जयन्ती पर मै धूप चढा निजध्यान करूँ ।।खिरी ।।७।।
ॐ ह्रीं श्री सन्मतिलीरजिनेन्द्र ाय अष्टकर्म विध्वसनाय धूप नि ।
कर्म मल रहित शुद्ध ज्ञानमय, परममोक्ष है मेरा धाम ।
भेद ज्ञान को महाशक्ति, से पाऊंगा अनन्त विश्राम ।।
शासन वीर जयन्ती पर फल चढा निज ध्यान करूँ ।।खिरी.।।८।।
ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्र ाय मोक्षफल प्राप्तये फल नि ।
मात्र वासनाजन्य कल्पना है पर द्रव्यों में सुख बुद्धि ।
इन्द्रियजन्य सुखो के पीछे पाई किंचित नहीं विशुद्धि ।

मिथ्यात्व मोह भ्रम त्यागी रे प्राणी।
सम्यक्त्व सूर्य जागो रे प्राणी।।

शासन वीर जयन्ती पर मैं अर्घ निजध्यान करूँ।।
खिरी दिव्य ध्वनि प्रथम देशना सुन अपना कल्याणकरूँ।।९।।
ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय अनर्घ पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि।

जयमाला

विपुलाचल के गगन को वन्दू बारम्बार।
सन्मति प्रभु की दिव्यध्वनि जहाँ हुई साकार।।१।।

महावीर प्रभु दीक्षा लेकर मौन हुए तप संयम धार।
परिषह उपसर्गो को जय कर देश-देश मे किया विहार।।२।।
द्वादश वर्ष तपस्या करके ऋजु कूला सरिता तट आये।
क्षपक श्रेणि चढ शुक्ल ध्यान से कर्मघातिया बिनसाये।।३।।
स्व पर प्रकाशक परम ज्योतिमय प्रभु को केवलज्ञान हुआ।
इन्द्रादिक को समवशरण रच मन में हर्ष महान हुआ।।४।।
बारह सभा जुडी अति सुन्दर, सबके मन का कमल खिला।
जन मानस को प्रभु की दिव्य ध्वनि का, किन्तु न लाभ मिला।।५।।
छ्यासठ दिन तक रहे मौन प्रभु, दिव्य ध्वनि का मिला न योग।
अपने आप स्वयं मिलता है, निमित्त नैमित्तिक सयोग।।६।।
राजगृही के विपुलाचल पर प्रभु का समवशरण आया।
अवधि ज्ञान से जान इन्द्र ने गणधर का अभाव पाया।।७।।
बडी युक्ति से इन्द्रभूति गौतम ब्राह्मण को वह लाया।
गौतम ने दीक्षा लेते ही ऋषि गणधर का पद पाया।।८।।
तत्क्षण खिरी दिव्यध्वनि प्रभु की द्वादशांग मय कल्याणी।
रच डाली अन्तर मुहुर्त मे, गौतम ने श्री जिनवाणी।।९।।
सात शतक लघु और महाभाषा अष्टादश विविध प्रकार।
सब जीवो ने सुनी दिव्य ध्वनि अपने उपादान अनुसार।।१०।।
विपुलाचल पर समवशरण का हुआ आज के दिन विस्तार।
प्रभु की पावन वाणी सुनकर गूजी नभ से जय जयकार।।११।।
जन जन मे नव जागृति जागी मिटा जगत का हाहाकार।
जियो और जीने दो का जीवन सदेश हुआ साकार।।१२।।

बाहातर मे मुनि मुद्रा होगी निर्ग्रन्थ दिगम्बर।
चरणों मे झुक जाएगा सादर विनीत भू अबर ॥

धर्म अहिंसा सत्य और अस्तेय मनुज जीवन का सार।
ब्रह्मचर्य अपरिग्रह से ही होगा जीव मात्र से प्यार ॥१३॥
घृणा पाप से करो सदा ही किन्तु नही पापी से द्वेष।
जीव मात्र को निज सम समझो यही वीर का था उपदेश ॥१४॥
इन्द्रभूति गौतम ने गणधर बनकर गूथी जिनवाणी।
इसके द्वारा परमात्मा बन सकता कोई भी प्राणी ॥१५॥
मेघ गर्जना करती श्री जिनवाणी का वह चला प्रवाह।
पाप ताप सताप नष्ट हो गये मोक्ष की जागी चाह ॥१६॥
प्रथम, करण, चरणं, द्रव्यं ये अनुरोग बताये चार।
निश्चय नय सत्यार्थ बताया, असत्यार्थ सारा व्यवहार ॥१७॥
तीन लोक षट द्रव्यमई है सात तत्व की श्रद्धा सार।
नव पदार्थ छह लेश्या जानो, पंच महाव्रत उत्तम धार ॥१८॥
समिति गुप्ति चारित्र पालकर तप संयम धारो अविकार।
परम शुद्ध निज आत्म तत्व, आश्रय से हो जाओ भव पार ॥१९॥
उस वाणी को मेरा वदन उसकी महिमा अपरम्पार।
सदा वीर शासन की पावन, परम जयन्ती जय जयकार ॥२०॥
वर्धमान अतिवीर वीर की पूजन का है वर्ष अपार।
काल लब्धि प्रभु मेरी आई, शेष रहा थोडा संसार ॥२१॥

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीर जिनेन्द्राय अनर्घ पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि।

दिव्य ध्वनि प्रभु वीर को देती सौख्य अपार।
आत्म ज्ञान की शक्ति से, खुले मोक्ष का द्वार ॥

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्रीं श्री सम्पूर्ण द्वादशागाय नम

श्री रक्षाबन्धनपर्व पूजन

जय अकम्पनाचार्य आदि सात सौ साधु मुनिव्रत धारी।
बलि ने कर नरमेध यज्ञ उपसर्ग किया भीषण भारी ॥
जय जय विष्णुकुमार महामुनि ऋद्धि विक्रिया के धारी।
किया शीघ्र उपसर्ग निवारण वात्सल्य करुणा धारी ॥

नर से अर्हन्त सिद्ध हो त्रलोक्य पूज्य अविनाशी।
ससार विजेता होगा जिसने निज ज्योति प्रकाशी ॥

रक्षा–बन्धन पर्व मना मुनियो को जय जयकार हुआ।
श्रावण शुक्ल पूर्णिमा के दिन घर घर मंगलाचार हुआ ॥
श्री मुनि चरण कमल मैं वन्दूँ पाऊँ प्रभु सम्यक्दर्शन।
भक्ति भाव से पूजन करके निज स्वरूप मे रहूँ मगन ॥

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एव अकम्पनाचार्य आदि सप्तशतकमुनि अत्र अवतर अवतर सवौषट्, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्।

जन्म मरण के नाश हेतु प्रासुक जल करता हूँ अर्पण।
रागद्वेष परणति अभावकर निज परणति मे करूँ रमण ॥
श्री अकम्पनाचार्य आदि मुनि सप्तशतक को करूँ नमन।
मुनि उपसर्ग निवारक विष्णुकुमार महा मुनि को वन्दन ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एव अकम्पनाचार्यादि सप्तशतकमुनिभ्य जल नि।

भव सन्ताप मिटाने को मै वन्दन करता हूँ अर्पण।
देह भोग भव से विरक्त हो निज परणति मे करूँ रमण ॥श्री ॥२॥

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एव अकम्पनाचार्यादि सप्तशतक मुनिभ्य, चन्दन नि।

अक्षयपद अखड पाने को अक्षत धवल करूँ अर्पण।
हिंसादिक पापो को क्षय कर निजपरणति में करू रमण ॥श्री ॥३॥

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एव अकम्पनाचार्यादि सप्तशतक मुनिभ्य अक्षत नि।

कामबाण विध्वस हेतु मै सहज पुष्प करता अर्पण।
क्रोधादिक चारो कषाय हर निज परणति में करूँ रमण ॥श्री ॥४॥

ॐ ह्री श्री विष्णुकुमार एव अकम्पनाचार्यादि सप्तशतकमुनिभ्य पुष्प नि।

क्षुधारोग के नाश हेतु नैवेद्य सरस करता अर्पण।
विषयभोग की आकाक्षा हर निज परणति मे करूँ रमण ॥श्री ॥५॥

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एव अकम्पनाचार्यादि सप्तशतकमुनिभ्य नैवेद्य नि।

चिर मिथ्यात्व तिमिर हरने की दीपज्योति करना अर्पण।
सम्यक्दर्शन का प्रकाश पा निज परणति मे करूँ रमण ॥श्री.॥६॥

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एव अकम्पनाचार्यादि सप्तशतकमुनिभ्य दीप नि।

अष्ट कर्म के नाश हेतु यह धूप सुगन्धित है अर्पण।
सम्यक्ज्ञान हृदय प्रगटाऊँ निज परणति मे करूँ रमण ॥श्री.॥७॥

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एव अकम्पनाचार्यादि सप्तशतकमुनिभ्य धूप नि।

जिया तुम निज का ध्यान करो।
आर्त्त रौद्र दुर्ध्यान छोड़कर धर्मध्यान करो।।

मुक्ति प्राप्ति हेतु उत्तम फल चरणों में करता हूँ अर्पण।
मैं सम्यक् चारित्र प्राप्तकर निज परणति में करूँ रमण ।।श्री.।।८।।
ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एव अकम्पनाचार्यादि सप्तशतकमुनिभ्य फल नि ।
शाश्वत पद अनर्घ पाने को उत्तम अर्घ करूँ अर्पण।
रत्नत्रय की तरणी खेऊं निज परणति मे करूँ रमण ।।श्री.।।९।।
ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एव अकम्पनाचार्यादि सप्तशतकमुनिभ्य अनर्घपद प्राप्ताय अर्घ्यं नि ।

जयमाला

वात्सल्य के अग की महिमा अपरम्पार।
विष्णुकुमार मुनीन्द्र की गूजी जय जयकार ।।१।।
उज्जयनी नगरी के नृप श्रीवर्मा के मन्त्री थे चार।
बलि, प्रहलाद, नमुचि वृहस्पति चारो अभियानी सविकार ।।२।।
जब अकम्पनाचार्य सघ मुनियो का नगरी मे आया।
सात शतक मुनि के दर्शन कर नृप श्री वर्मा हर्षाया ।।३।।
सब मुनि मौन ध्यान मे रत, लख बलि आदिक ने निदा की।
कहा कि मुनि सब मूर्ख, इसी से नही तत्व की चर्चा की ।।४।।
किन्तु लौटते समय मार्ग मे, श्रुतसागर मुनि दिखलाये।
वाद विवाद किया श्री मुनि से हारे, जीत नही पाये ।।५।।
अपमानित होकर निशि मे मुनि पर प्रहार करने आये।
खड्ग उठाते ही कीलित हो गये हृदय मे पछताये ।।६।।
प्रात होते ही राजा ने आकर मुनि को किया नमन।
देश निकाला दिया मन्त्रियो को तब राजा ने तत्क्षण ।।७।।
चारो मन्त्री अपमानित हो पहुचे नगर हस्तिनापुर।
राजा पद्मराय को अपनी सेवाओ से प्रसन्न कर ।।८।।
मुह मागा वरदान नृपति ने बलि को दिया तभी तत्पर।
जब चाहूगा तब ले लूगा, बलि ने कहा नम्र होकर ।।९।।
फिर अकम्पनाचार्य सात सौ मुनियो सहित नगर आये।
बलि के मन मे मुनियों की हत्या के भाव सहज आये ।।१०।।

वस्त्र पुराने सदा बदलते नए वस्त्र द्वारा।
उसी भाँति यह देह बदलती जन्म मृत्यु द्वारा॥

कुटिल चाल चल बलि ने नृप से आठ दिवस काराज्यलिया।
भीषण अग्नि जलाई चारो ओर द्वेष से कार्य किया॥११॥
हाहाकार मचा जगती में, मुनि स्व ध्यान मे लीन हुए।
नश्वर देह भिन्न चेतन से, यह विचार निज लीन हुए॥१२॥
यह नरमेघ यज्ञ रच बलि ने किया दान का ढोग विचित्र।
दान किमिच्छक देता था, पर मन था अतिहिंसक अपवित्र॥१३॥
पद्मराय नृप के लघु भाई, विष्णुकुमार महा मुनि।
वात्सल्य का भाव जगा, मुनियो पर सकट का सुनकर॥१४॥
किया गमन आकाश मार्ग से, शीघ्र हस्तिनापुर आये।
ऋद्धि विक्रिया द्वारा याचक, वामन रूप बना लाये॥१५॥
बलि से मागी तीन पाँव भू, बलिराजा हसकर बोला।
जितनी चाहो उतनी ले लो, वामन मूर्ख बडा भोला॥१६॥
हंसकर मुनि ने एक पांव मे हो सारी पृथ्वी नापी।
पग द्वितीय में मानुषोत्तर पर्वत की सीमा नापी॥१७॥
ठौर न मिला तीसरे पग को, बलि के मस्तक पर रक्खा।
क्षमा क्षमा कह कर बलिने, मुनिचरणो में मस्तकरक्खा॥१८॥
शीतल ज्वाला हुई अग्नि की श्री मुनियो की रक्षा की।
जय जयकार धर्म का गूंजा, वात्सल्य की शिक्षा दी॥१९॥
नवधा भक्ति पूर्वक सबने मुनियो को आहार दिया।
बलिआदिक का हुआ हृदयपरिवर्तन जय जयकार किया॥२०॥
रक्षा सूत्र बाधकर तब जन जन ने मगलाचार किये।
साधर्मी वात्सल्य भाव से, आपस मे व्यवहार किये॥२१॥
समकित के वात्सल्य अंग की महिमा प्रगटी इस जग मे।
रक्षा बन्धन पर्व इसी दिन से प्रारम्भ हुआ जग मे॥२२॥
श्रावण शुक्ल पूर्णिमा का दिन था रक्षासूत्र बधा कर में।
वात्सल्य की प्रभावना का आया अवसर घर घर में॥२३॥
प्रायश्चित ले विष्णुकुमार ने पुन व्रत ले तप ग्रहण किया।
अष्ट कर्म बन्धन को हरकर इस भव से ही मोक्ष लिया॥२४॥

जिया तुम निज को पहचानो।
निज स्वरूप को पर स्वरूप से सदा भिन्न जानो ।।

सब मुनियो ने भी अपने अपने परिणामों के अनुसार।
स्वर्ग मोक्ष पद पाया जग मे हुई धर्म की जय जयकार ।।२५।।
धर्म भावना रहे हृदय में, पापो के प्रतिकूल चलूँ।
रहे शुद्ध आचरण सदा ही धर्म मार्ग अनुकूल चलूँ ।।२६।।
आत्म ज्ञान रुचि जगे हृदय में, निज पर को मै पहिचानूँ।
समकित के आठो अगों की,पावन महिमा को जानूँ ।।२७।।
तभी सार्थक जीवन होगा सार्थक होगी यह नर देह।
अन्तर घट मे जब बरसेगा पावन परम ज्ञान रस मेह ।।२८।।
पर मे मोह नही होगा, होगा निजात्म से अति नेह।
तब पायेगे अखड अविनाशी निज सुखमय शिव गेह ।।२९।।
रक्षा-बधन पर्व धर्म का, रक्षा का त्यौहार महान।
रक्षा-बधन पर्व ज्ञान का, रक्षा का त्यौहार प्रधान ।।३०।।
रक्षा-बधन पर्व चरित का, रक्षा का त्यौहार महान।
रक्षा-बधन पर्व आत्म का, रक्षा का त्यौहार प्रधान ।।३१।।
श्री अकम्पनाचार्य आदि मुनि सात शतक को करूँनमन।
मुनि उपसर्ग निवारक विष्णुकुमार महामुनि को वन्दन ।।३२।।

ॐ ही श्री विष्णुकुमार एव अकम्पनाचार्यआदि सप्तशतक मुनिभ्यो पूर्णार्घ्य निर्वपामिति नि।

रक्षा वन्धन पर्व पर श्री मुनि पद उर धार।
मन वच तन जो पूजते, पाते सौख्य अपार ।।

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ही श्री विष्णुकुमार एव अकम्पनाचार्यादि सप्तशतक परम ऋषीश्वरेभ्यो नम

निजपुर में अमृत बरसेरी

अनुभव रस को प्याला पीवत अग अग सुख सरसे री।
शील विनय जप जप सयम व्रत पा मेरो जिया हरसे री ।।
पर परिणति कुलटा दुखदायी देख देख के तरसे री।
पर विभाव को सग छोड के आई मै पर घर से री।
चिदानन्द चेतन मन भाये निज शुद्धातम दरसे री ।।

प्राण मेरे तरसते है कब मुझे समकित मिलेगा।
कब स्वय से प्रीत होगी कब मुझे निज पद मिलेगा।

श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर विधान

जैन आगम् मे पूजा विधान करने की परम्परा प्रचलित है। प्रत्येक श्रावक की छ आवश्यक क्रियाओ मे जिनेन्द्र पूजा को प्रथम स्थान प्राप्त है। सच्ची पूजा से तात्पर्य पचपरमेष्ठी भगवन्तो के गुणानुवाद के साथ ही पूजक की यह भावना रहती है कि वह भी पचपरमेष्ठी के समस्त गुणो को प्राप्त कर निर्वाण प्राप्त करे। सासारिक प्रयोजनो के लिए की गई पूजा कार्यकारी नहीं है परन्तु जिनेन्द्र पूजन के समय जीव के परिणाम तीव्र कषाय से हटकर मन्द कषाय रूप हो जाते है। अत परिणामो के अनुसार उसे अवश्य ही पुण्य का बन्ध होता है जो परम्परा मोक्ष का कारण बन सकता है। विधान महोत्सव भी पूजन का एक बडा रूप है। वर्तमान मे सिद्ध चक्र मडल, इन्द्रध्वज मडल विधान, गणधर वलय विधान पचकल्याणक, सोलहकारण, पच परमेष्ठी, दशलक्षण-विधान आदि प्रचलित है। श्रावको द्वारा विभिन्न अवसरो पर इस तरह का विधान करने की परम्परा प्रचलित है। इसी श्रृखला मे आध्यात्मिक दृष्टि से परिपूर्ण 'नव-देव पूजन'', ''पचपरमेष्ठी पूजन'' ''वर्तमान चौबीस तीर्थकरो की पूजन'' के साथ 'तीर्थकर निर्वाण क्षेत्र ' एव ''चौबीस तीर्थकरो के समस्त गणधरो की'' गणधर वलय'' पूजने भी है। इसे प्रत्येक श्रद्धालु श्रावक कभी भी अनवरत रूप से अथवा सुविधानुसार एक से अधिक दिवसो मे सम्पन्न कर सकते है। इसकी स्थापना विधि अन्य विधानो की तरह है। इस सग्रह के प्रारम्भ मे सामान्य पूजन स्थापना विधि दी गई है वैसे ही विधान की स्थापना करना चाहिए एव विधान समाप्ति के बाद इस सग्रह के अन्त मे महाअर्घ्य एव शाति पाठ आदि दिया है उसे पढकर विधान पूर्ण करे। इसके अतिरिक्त अनेक बन्धुओ, माताओ बहनो द्वारा चौबीस तीर्थकरो के पचकल्याणको की तिथियो मे तीर्थकर की विशेष पूजन, व्रत-उपवास आदि करने की परम्परा है। उनके लिए भी यह विधान अत्यन्त उपयोगी होगा। तीर्थकर पचकल्याणक तिथि दर्पण भी प्रारम्भ मे दिया गया है।

श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर स्तुति

जय ऋषभदेव जिनेन्द्र जय, जय अजित प्रभु अभयकरम्।
जय नाथ सम्भव भव विनाशक, जयतु अभिनन्दन परम्॥१॥

मै ज्ञाता दृष्टा हू चेतन चिद्रूपी हू ।
गुण ज्ञात अनत सहित मै सिद्ध स्वरूपी हू ।।

जय सुमतिनाथ सुमति प्रदायक, पदम प्रभु प्रणतेश्क्रम् ।
जय जय सुपार्श्वस्वपर प्रकाशक, चन्द्रप्रभु चन्द्रेश्वरम् ।।२।।
जय पुष्पदन्त पवित्र पावन जयति शीतल शीतलम् ।
जयश्रेष्ठ श्री श्रेयांस प्रभुवर, वासुपूज्य सु निर्मलम् ।।३।।
जय अमल अविकल विमल प्रभु, जय जय अनन्त आनंदकम् ।
जय धर्मनाथ स्वधर्मरवि, जय शान्ति जग कल्याणकम् ।।४।।
जय कुन्थुनाथ अनाथ रक्षक, अरहनाथ अरिंजयम् ।
जय मल्लि प्रभु हत दुर्नयम् जय सुनिसुव्रत मृत्युजयम् ।।५।।
जय मुक्तिदाता नमि जिनोत्तम, नेमि प्रभु लोकेश्वरम् ।
जय पार्श्व विघ्नविनाशनम्, जय महावीर महेश्वरम् ।।६।।
जप पाप पुण्य निरोधकम, ज्ञानेश्वरम् क्षेमकरम् ।
जय महामंगल मूर्ति जय चौबीस जिन तीर्थकरम् ।।७।।

श्री पंच परमेष्ठी पूजन

अरहत, सिद्ध, आचार्य नमन, हे उपाध्याय हे साधु नमन ।
जय पच परम परमेष्ठी जय, भव सागर तारणहार नमन ।।
मन वच काया पूर्वक करता हूँ शुद्ध हृदय से आह् वानन ।
मम् हृदय विराजो तिष्ठ तिष्ठ सन्निकट होउ मेरे भगवान ।।
निज आत्म तत्व को प्राप्ति हेतु ले अष्ट द्रव्य करता पूजन ।
तुव चरणो की पूजन से प्रभु निज सिद्ध रूप का हो दर्शन ।।

ॐ ह्रीं श्री अरहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय सर्वसाधु पच परमेष्ठिन् अत्र अवतर अवतर सवौषट्, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ अत्रमम सन्निहितो भव भव वषट् ।

मै तो अनादि से रोगी हूँ उपचार कराने आया हूँ ।
तुमसम उज्जवलता पाने को उज्जवल जल भरकर लाया हूँ ।।
मै जन्म जरा मृत्यु नाश करूँ ऐसी दो शक्ति हृदय स्वामी ।
हे पच परम परमेष्ठी प्रभु भव दुख मेटो अन्तर्यामी ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री पचपरमेष्ठिभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल नि ।

ससार ताप से जल -जल कर मैने अगणित दुख पाये हैं ।
निज शान्त स्वभाव नही भाया पर के ही गीत सुहाये है।।
शीतल चन्दन है भेंट तुम्हे संसार ताप नाशो स्वामी ।।हे पंच ।।२।।

पुण्याश्रव के द्वारा स्वर्गों के सुख भोगे।
माला जब मुरझाई तो कितने दुख भोगे ॥

ॐ ह्रीं श्री पचपरमेष्ठिभ्यो ससारताप विनाशनाय चन्दन नि ।

दुखमय अथाह भव सागर में मेरी यह नौका भटक रही।
शुभ अशुभ भाव की भवरो मे चैतन्य शक्ति निज अटक रही ॥
तदुल है धवल तुम्हे अर्पित अक्षयपद प्राप्त करूँ स्वामी ॥हे पच.॥३॥

ॐ ह्रीं श्री पचपरमेष्ठिभ्यो अक्षयपद प्राप्ताय अक्षत नि ।

मैं काम व्यथा से घायल हूँ सुख की न मिली किंचित् छाया।
चरणो मे पुष्प चढाता हूँ तुमको पाकर मन हर्षाया ॥
मै काम भाव विध्वस करूँ ऐसा दो शीलहृदय स्वामी ।हे पंच ॥४॥

ॐ ह्रीं श्री पचपरमेष्ठिभ्यो कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि ।

मै क्षुधा रोग से व्याकुल हूं चारों गति मे भरमाया हूँ।
जग के सारे पदार्थ पाकर भी तृप्त नही हो पाया हूँ॥
नैवेद्य समर्पित करता हू यह क्षुधारोग मेटो स्वामी। हे पच ॥५॥

ॐ ह्री श्री पचपरमेष्ठिभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि ।

मोहान्ध महाअज्ञानी मैं निज को पर का कर्ता माना।
मिथ्यातम के कारण मैने निज आत्म स्वरूप न पहचाना ॥
मै दीप समर्पण करता हूँ मोहान्धकार क्षय हो स्वामी ॥हेपच.॥६॥

ॐ ह्रीं श्री पचपरमेष्ठिभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि ।

कर्मो की ज्वाला धधक रही ससार बढ रहा है प्रतिपल।
सवर से आश्रव को रोकू निर्जरा सुरभि महके पल-पल ॥
मै धूप चढाकर अब आठोकर्मो का हनन करूँ स्वामी ।हेपच ॥७॥

ॐ ह्रीं श्री पचपरमेष्ठिभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूप नि ।

जिन आत्मतत्व का मनन करू चितवन करूँ निजचेतन का।
दो श्रद्धा, ज्ञान, चरित्र, श्रेष्ठ सच्चा पथ मोक्ष निकेतन का
उत्तमफल चरण चढाता हूँ निर्वाण महाफल हो स्वामी ॥हे पंच ॥८॥

ॐ ही श्री पचपरमेष्ठिभ्यो महामोक्ष प्राप्ताय फल नि ।

जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प दीप, नैवेद्य, धूप, फल लाया हूँ।
अब तक के सचित कर्मो का मै पुज जलाने आया हूँ ॥
यह अर्घ समर्पित करता हूँ अविकल अनर्घपद दो स्वामी ॥हेपच ॥९॥

ॐ ह्रीं श्री पचपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्य नि ।

अतरग बहिरग आश्रव से विरक्ति ही सयम है।
सम्यक्दर्शन ज्ञान पूर्वक जो सवर है सयम है ।।

जयमाला

जय वीतराग सर्वज्ञ प्रभो निज ध्यान लीन गुणमय अपार।
अष्टादश दोष रहित जिनवर अरहंत देव को नमस्कार ।।१।।
अविचल अविकारी अविनाशी निज रूप निरजन निराकार।
जय अजर अमर हे मुक्तिकंत भगवन्त सिद्ध को नमस्कार ।।२।।
छत्तीस सुगुण से तुम मण्डित निश्चय रत्नत्रय हृदय धार।
हे मुक्ति वधू के अनुरागी आचार्य सुगुरु को नमस्कार ।।३।।
एकादश अंग पूर्व चौदह के पाठी गुण पच्चीस धार।
बाह्यान्तर मुनि मुद्रा महान श्री उपाध्याय को नमस्कार ।।४।।
व्रत समिति गुप्ति चारित्र धर्म वैराग्य भावना हृदय धार।
हे द्रव्य भाव सयममय मुनिवर सर्वसाधु को नमस्कार ।।५।।
बहुपुण्य सयोग मिला नरतन जिनश्रुत जिनदेव चरणदर्शन।
हो सम्यकदर्शन प्राप्त मुझे तो सफल बने मानव जीवन ।।६।।
निज पर का भेद जानकर मै निज को ही निज मे लीन करूँ।
अब भेद ज्ञान के द्वारा मै निज आत्म स्वय स्वाधीन करूँ ।।७।।
निज मे रत्नत्रय धारण कर निज परिणति को ही पहचानूँ।
पर परणति से हो विमुख सदा निजज्ञान तत्व को हीजानूँ ।।८।।
जब ज्ञान ज्ञेयदाता विकल्प तज शुक्ल ध्यान मैं ध्याऊँगा।
तब चार धातिया क्षय करके अरहत महापद पाऊँगा ।।९।।
है निश्चित सिद्ध स्वपद मेरा हे प्रभु कब इसको पाऊँगा।
सम्यक् पूजा फल पाने को अब निजस्वभाव मे आऊगा ।।१०।।
अपने स्वरूप की प्राप्ति हेतु हे प्रभु मैने की है पूजन।
तब तक चरणो मे ध्यान रहे जबतक न प्राप्त हो मुक्तिसदन ।।११।।
ॐ ह्रीं श्री पचपरमेष्ठिभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
हे मंगल रुप अमगल हर मगलमय मगल गान करूँ।
मगल मे प्रथम श्रेष्ठ मगल नवकारमन्त्र का ध्यान करूँ ।।१२।।

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र – ॐ ही श्री अ सि आ उ सा नम ।

सयम के बिन भव से प्राणी हो सकता है मुक्त नहीं।
सयम बिन कैवल्य लक्ष्मी से हो सकता युक्त नही ।।

श्री नवदेव पूजन

श्री अरहत सिद्ध, आचार्योपाध्याय, मुनि साधु महान।
जिनवाणी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्मदेव नव जान ।।
ये नवदेव परम हितकारी रत्नत्रय के दाता है।
विघ्न विनाशक सकटहर्ता तीन लोक विख्याता है ।।
जल फलादि वसु द्रव्य सजाकर हे प्रभु नित्य करूँ पूजन।
मंगलोत्तम शरण प्राप्त कर मै गाऊँ सम्यकदर्शन ।।
आत्मतत्व का अवलम्बन ले पूर्ण अतीन्द्रिय सुख पाऊ।
नवदेवो की पूजन करके फिर न लौट भव मे आऊ ।।

ॐ ह्रीं श्री अर्हत सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमन्दिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेव अत्र अवतर - अवतर सवौषट्, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ अत्रमम् सन्निहितो भव भव वषट्।

परम भाव जल की धारा से जन्म मरण का नाश करूँ।
मिथ्यातम का गर्व चूर कर रवि सम्यक्त्व प्रकाश करूँ ।।
पच परमपरमेष्ठी जिनगृह जिन प्रतिमा जिनश्रुत जिनधर्म।
महामोक्ष पद मैं पाऊ पूर्ण शान्ती होकर निष्कर्म ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री अर्हतसिद्ध आचार्योपाध्याय सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमन्दिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेवेभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल नि स्वाहा।

परम भाव चदन के बल से भव आतप का नाश करूँ।
अन्धकार अज्ञान मिटाऊँ सम्यकज्ञान प्रकाश करूँ ।।पंच.।।२।।

ॐ ह्रीं श्री अर्हतसिद्ध आचार्योपाध्याय सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमन्दिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेवेभ्यो ससार तापविनाशनाय चन्दन नि स्वाहा।

परम भाव अक्षत के द्वारा अक्षय पद को प्राप्त करूँ।
मोह क्षोभ से रहित बनू मै सम्यकचारित प्राप्त करूँ ।।पच।।३।।

ॐ ह्रीं श्री अर्हतसिद्ध आचार्योपाध्याय सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमन्दिर, जिनप्रतिमा जिनधर्म नवदेवेभ्यो अक्षयपद प्राप्ताय अक्षत नि ।

परम भाव पुष्पो से दुर्धर काम भाव को नाश करूँ।
तप संयम की महाशक्ति से निर्मल आत्म प्रकाश करूँ ।।पच.।।४।।

ॐ ह्रीं श्री अर्हतसिद्ध आचार्योपाध्याय सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमन्दिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेवेभ्यो कामबाण विध्वसनायपुष्प नि ।

चेतन आज सजोलो उर मे पावन दीपावलिया।
भेदज्ञान विज्ञान पूर्वक नाशो कर्मावलिया॥

परम भाव नैवेद्य प्राप्तकर क्षुधा व्याधि का ह्रास करूँ।
पचाचार आचरण करके परम तृप्त शिववास करूँ॥पंच.॥५॥

ॐ ह्रीं श्री अर्हतसिद्ध आचार्योपाध्याय सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमन्दिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेवेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि।

परम भाव मय दिव्य ज्योति से पूर्ण मोह का नाश करूँ।
पाप पुण्य आश्रव विनाशकर केवलज्ञान प्रकाश करूँ॥पच.॥६॥

ॐ ह्रीं श्री अर्हतसिद्ध आचार्योपाध्याय सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमन्दिर जिन्पतिमा, जिनधर्म नवदेवेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि।

परम भाव मय शुक्ल ध्यान से अष्ट कर्म का नाश करूँ।
नित्य निरन्जन शिव पद पाऊ सिद्धस्वरूप विकास करूँ॥पच॥७॥

ॐ ह्रीं श्री अर्हतसिद्ध आचार्योपाध्याय सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमन्दिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेवेभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूप नि।

परम भाव सपत्ति प्राप्त कर मोक्ष भवन मे वास करूँ।
रत्नत्रय मुक्तिशिला पर सादि अनत निवास करूँ॥पच॥८॥

ॐ ह्रीं श्री अर्हतसिद्ध आचार्योपाध्याय सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमन्दिर, जिनप्रतिमा जिनधर्म नवदेवेभ्यो महामोक्ष प्राप्ताय फल नि।

परम भाव के अर्घ चढाऊ उर अनर्घ पद व्याप्त करूँ।
भेद ज्ञान रवि हृदय जगाकर शाश्वत जीवन प्राप्त करूँ॥पच॥९॥

ॐ ह्रीं श्री अर्हतसिद्ध आचार्योपाध्याय सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमन्दिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेवेभ्यो अनर्घपद प्राप्ताय अर्घ्य नि।

जयमाला

नवदेवो को नमन कर करूँ आत्म कल्याण।
शाश्वत सुख की प्राप्ति, हित करूँ भेद विज्ञान॥१॥
जय जय पच परम परमेष्ठी जिनवाणी जिन धर्म महान।
जिनमदिर जिनप्रतिमा नवदेवो को नित वन्दू धर ध्यान॥२॥
श्री अरहत देव मंगलमय मोक्ष मार्ग के नेता है।
सकल ज्ञेय के ज्ञातादृष्टा कर्म शिखर के भेत्ता है॥३॥
है लोकाग्र शिखरपर सुस्थित सिद्धशिला पर सिद्धअनत।

समकित रवि की ज्योति नाशो पापावलिया।
मोह कर्म सर्वथा नाशकर नाशो पुण्यावलिया ॥

अष्ट कर्म रज से विहीन प्रभु सकल सिद्धिदाता भगवंत ॥४॥
हैं छत्तीस गुणों से शोभित श्री आचार्य देव भगवान।
चार संघ के नायक ऋषिवर करते सबको शान्ति प्रदान ॥५॥
ग्यारह अंग पूर्व चौदह के ज्ञाता उपाध्याय गुणवन्त।
जिन आगम का पठन और पाठन करते हैं महिमावन्त ॥६॥
अट्ठाईस मूलगुण पालकऋषि मुनि साधु परमगुणवान।
मोक्षमार्ग के पथिक श्रमण करते जीवो को करुणादन ॥७॥
स्याद्वादमय द्वादशाग जिनवाणी है जग कल्याणी।
जो भी शरण प्राप्त करता है हो जाता केवलज्ञानी ॥८॥
जिनमदिर जिन समवशरणसम इसकी महिमा अपरम्पार।
गंध कुटी मे नाथ विराजे है अरहतदेव साकार ॥९॥
जिनप्रतिमा अरहतो को नासाग्र दृष्टि निज ध्यानमयी।
जिन दर्शन से निज दर्शन हो जाता तत्क्षण ज्ञानमयी ॥१०॥
श्री जिनधर्म महा मगलमय जीव मात्र को सुख दाता।
इसकी छाया मे जो आता हो जाता दृष्टा ज्ञाता ॥११॥
ये नवदेव परम उपकारी वीतरागता के सागर।
सम्यकदर्शन ज्ञान चरित से भर देते सबकी गागर ॥१२॥
मुझको भी रत्नत्रय निधि दो मै कर्मो का भार हरूँ।
क्षीणमोह जितराग जितेन्द्रिय हो भव सागर पार करूँ ॥१३॥
सदा-सदा नवदेव शरण पा मै अपना कल्याण करूँ।
जब तक सिद्ध स्वपद ना पाऊ हे प्रभु पूजन ध्यान करूँ ॥१४॥

ॐ ह्रीं श्री अर्हतसिद्ध आचार्योपाध्याय सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमन्दिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेवेभ्यो अनर्घपद प्राप्तय पूर्णार्घ्य नि स्वाहा।

मगलोत्तम शरण है नव देवता महान।
भाव पूर्ण जिन भक्ति से होता दुख अवसान ॥

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्रीं श्री नव जिनदेवेभ्यो नम

पर परिणति दुर्भति से आज विमूढ हुआ हू।
निज परिणति के रथ पर मै आरुढ हुआ हू ।।

श्री वर्तमानचौबीसतीर्थकर पूजन

भरतक्षेत्र की वर्तमान जिन चौबीसी को करूँ नमन।
वृषभादिक श्री वीर जिनेश्वर के पद पकज में वन्दन ।।
भक्ति भाव से नमस्कार कर विनय सहित करता पूजन।
भव सागर से पार करो प्रभु यही प्रार्थना है भगवान ।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादि महावीर पर्यन्त चतुर्विशति जिनसमूह अत्र अवतर-अवतर सवौषट्, अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठ ठ , अत्रमम् सन्निहितो भव-भव वषट्।

आत्मज्ञान वैभव के जल से यह भव तृषा बुझाऊँगा।
जन्मजरा हर चिदानन्द चिन्मय की ज्योति जगाऊँगा ।।
वृषभादिक चौबीस जिनेश्वर के नित चरण पखाऊँगा।
पर द्रव्यों से दृष्टि हटाकर अपनी ओर निहारूँगा ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादि वीरातेभ्योजन्मजरा मृत्यु विनाशनायजल नि स्वाहा।

आत्मज्ञान वैभव के चन्दन से भवताप नशाऊँगा।
भव बाधा हर चिदानन्द चिन्मय की ज्योति जलाऊँगा ।।वृष.।।२।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादि वीरातेभ्यो ससारताप विनाशनाय चदन नि ।

आत्मज्ञान वैभव के अक्षत से अक्षय पद पाऊँगा।
भवसमुद्र चिर चिदानन्द चिन्मय की ज्योति जलाऊँगा ।।वृष.।।३।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादि वीरातेभ्यो अक्षयपद प्राप्ताय अक्षत।

आत्मज्ञान वैभव के पुष्पो से मै काम नशाऊँगा।
शीलोदधि पा चिन्दान्द चिन्मय की ज्योति जगाऊँगा ।।वृष.।।४।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादि वीरातेभ्यो कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि ।

आत्मज्ञान वैभव के चरु ले क्षुधा व्याधि हर पाऊँगा।
पूर्ण तृप्ति पा चिदानन्द चिन्मय की ज्योति जगाऊँगा ।। वृष.।।५।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादि वीरातेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि ।

आत्मज्ञान वैभव दीपक से भेद ज्ञान प्रगटाऊँगा।
मोहतिमिर हर चिदानन्द चिन्मय की ज्योति जगाऊँगा ।।वृष ।।६।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादि वीरातेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि ।

आत्मज्ञान वैभव को निज मे शुचिमय धूप चढाऊँगा।
अष्टकर्म हर चिदानंद चिन्मय की ज्योति जगाऊँगा।।वृष.।।७।।

देह तो अपनी नहीं देह से फिर मोह कैसा।
जड अचेतन रुप पुदगल द्रव्य से व्यामोह कैसा ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादि वीरातेभ्यो अष्टकर्म विनाशनाय धूप नि ।

आत्मज्ञान वैभव के फल से शुद्ध मोक्ष फल पाऊँगा।
राग द्वेष हर चिदानद चिन्मय की ज्योति जगाऊँगा ॥वृष.॥८॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादि वीरातेभ्योमहामोक्ष प्राप्ताय फल नि ।

आत्मज्ञान वैभव का निर्मल अर्घ अपूर्व बनाऊँगा।
पा अनर्घ पद चिदानन्द चिन्मय की ज्योति जगाऊँगा ॥वृष ॥९॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादि वीरातेभ्यो अनर्घ पद प्राप्ताय अर्घ्य नि ।

जयमाला

भव्य दिगम्बर जिन प्रतिमा नासाग्र दृष्टि निज ध्यानमयी।
जिन दर्शन पूजन अघ नाशक भव भव से कल्याणमयी ॥१॥
वृषभदेव के चरण पखारूँ मिथ्या तिमिर विनाश करूँ।
अजितनाथ पद वन्दन करके पच पाप मल नाश करूँ ॥२॥
सम्भवजिन का दर्शन करके सम्यकदर्शन प्राप्त करूँ।
अभिनन्दन प्रभु पद अर्चन सम्यकज्ञान प्रकाश करूँ ॥३॥
सुमतिनाथ का सुमिरण करके सम्यकचारित हृदय धरूँ।
श्री पदमप्रभु का पूजन कर रत्नत्रय का वरण करूँ ॥४॥
श्री सुपार्श्व की स्तुति करके मोह ममत्व अभाव करूँ।
चन्दाप्रभु के चरण चित्त धर चार कषाय अभाव करूँ ॥५॥
पुष्पदन्त के पद कमलो मे बारम्बार प्रणाम करूँ।
शीतल जिनका सुयशगान कर शाश्वत शीतल धाम वरूँ ॥६॥
प्रभु श्रेयासनाथ को बन्दू श्रेयस पद की प्राप्ति करूँ।
वासुपूज्य के चरण पूज कर मै अनादि की भ्राति हरूँ ॥७॥
विमल जिनेश मोक्ष पद दाता पच महाव्रत ग्रहण करूँ।
श्री अनन्तप्रभु के पद बन्दू पर परणति का हरण करूँ ॥८॥
धर्मनाथ पद मस्तक धर कर निज स्वरूप का ध्यान करूँ।
शातिनाथ की शात मूर्ति लख परमशात रस पान करूँ ॥९॥
कुंथनाथ को नमस्कार कर शुद्ध स्वरूप प्रकाश करूँ।
अरहनाथ प्रभु सर्वदोष हर अष्टकर्म अरि नाश करूँ ॥१०॥

चक्रवर्ती इन्द्र नारायण नहीं जीवित रहे है।
समय जिसका आगया वे एक ही पल मे ढहे है ॥

मल्लिनाथ की महिमा गाऊँ मोह मल्ल को चूर करूँ।
मुनिसुव्रत को नित प्रति ध्याऊँ दोष अठारह दूर करूँ ॥११॥
नमि जिनेश को नमनकरूँ मै निजपरिणति मे रमण करूँ।
नेमिनाथ का नित्य ध्यान धर भाव शुभा-शुभ शमनकरूँ ॥१२॥
पार्श्वनाथ प्रभु के चरणाम्बुज दर्शन कर भव पार हरूँ।
महावीर के पथ पर चलकर मैं भवसागर पार करूँ ॥१३॥
चौबीसो तीर्थकर प्रभु का भाव सहित गुणगान करूँ।
तुम समान निज पद पाने का शुद्धातम का ध्यान करूँ ॥१४॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादि वीरातेभ्यो अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं नि स्वाहा।

श्री चौबीस जिनेश के चरण कमल उर धार।
मन, वच, तन जो पूजते वे होते भव पार ॥१५॥

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र- ॐ ह्री श्री चतुर्विंशति तीर्थकरेभ्यो नम ।

卐

श्री ऋषभदेव जिन पूजन

जय आदिनाथ जिनेन्द्र जय जय प्रथम जिन तीर्थकरम।
जय नाभि सुत मरुदेवी नन्दन ऋषभप्रभु जगदीश्वरम ॥
जय जयति त्रिभुवन तिलक चूडामणि वृषभ विश्वेश्वरम।
देवाधि देव जिनेश जय जय, महाप्रभु परमेश्वरम् ॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र अत्र अवतर अवतर सवौषट, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ , अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्।

समकित जल दो प्रभु आदि निर्मल भाव धरूँ।
दुख जन्म-मरण मिट जाये जल से धार करूँ ॥
जय ऋषभदेव जिनराज शिव सुख के दाता।
तुम सम हो जाता है स्वय को जो ध्याता ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री ऋषभदेव जिनेन्द्रायजन्मजरामृत्युविनाशनाय जल नि ।

समकित चदन दो नाथ भव सताप हरूँ।
चरणों मे मलय सुगन्ध हे प्रभु भेंट करूँ ॥ जय ऋषभ देव ॥२॥

ॐ ह्रीं श्री ऋषभदेव जिनेन्द्राय ससारताप विनाशनाय चदन नि ।

शुद्ध आत्मा मे प्रवृत्ति का एक मार्ग है निज चिन्तन।
दुश्चिन्ताओ से निवृत्ति का एक मार्ग है निज चिन्तन ।।

समकित तन्दुल की चाह मन में मोद भरे।
अक्षत से पूजूं देव अक्षयपद सवरे ।। जय ऋषभ देव ।।३।।

ॐ ह्रीं श्री ऋषभदेव जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षत नि ।

समकित के पुष्प सुरम्य दे दो हे स्वामी ।
यह काम भाव मिट जाय हे अन्तर्यामी ।। जय ऋषभ देव ।।४।।

ॐ ह्रीं श्री ऋषभदेव जिनेन्द्राय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि ।

समकित चरु करो प्रदान मेरी भूख मिटे ।
भव भव की तृष्णा ज्वाल उर से दूर हटे ।।जय ऋषभ देव ।।५।।

ॐ ह्रीं श्री ऋषभदेव जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य नि ।

समकित दीपक की ज्योति मिथ्यातम भागे ।
देखू निज सहज स्वरूप निज परिणति जागे ।।जयऋषभदेव ।।६।।

ॐ ह्रीं श्री ऋषभदेव जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि ।

समकित की धूप अनूप कर्म विनाश करे ।
निज ध्यान अग्नि के बीच आठो कर्म जरे ।।जय ऋषभदेव ।।७।।

ॐ ह्रीं श्री ऋषभदेव जिनेन्द्राय अष्टकर्म विध्वसनाय धूप नि ।

समकित फल मोक्ष महान पाऊँ आदि प्रभो ।
हो जाऊ सिद्ध समान सुखमय ऋषभ विभो ।।जय ऋषभ देव ।।८।।

ॐ ह्रीं श्री ऋषभदेव जिनेन्द्राय महामोक्ष फल प्राप्तये फल नि स्वाहा ।

वसु द्रव्य अर्घ जिनदेव चरणो मे अर्पित ।
पाऊ अनर्घ पद नाथ अविकल सुख गर्भित ।।जय ऋषभ देव ।।९।।

श्री पंचकल्याणक

शुभ आषाढ कृष्ण द्वितीया को मरुदेवी उर मे आये ।
देवो ने छह मास पूर्व से रत्न अयोध्या बरसाये ।।
कर्म भूमि के प्रथम जिनेश्वर तज सरवार्थसिद्ध आये ।
जय जय ऋषभनाथ तीर्थंकर तीन लोक ने सुख पाये ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री आषाढकृष्णाद्वितीया गर्भमगल प्राप्ताय ऋषभदेवाय अर्घ्य नि ।

चैत्र कृष्ण नवमी को राजा नाभिराय गृह जन्म लिया ।
इन्द्रादिक ने गिरि सुमेरु पर क्षीरोदधि अभिषेक किया ।।

नरक त्रिर्यच सभी जीवों ने सुख अन्तर्मुहुर्त पाया।
जय जय ऋषभनाथ तीर्थकर जग में पूर्ण हर्ष छाया॥२॥
ॐ ह्री श्री चैत्रकृष्णनवमीदिने जन्ममगल प्राप्ताय ऋषभदेवाय अर्घ्यं नि।
चैत्र कृष्ण नवमी को ही वैराग्य भाव उर छाया था।
लौकान्तिक सुर इन्द्रादिक ने तप कल्याण मनाया था॥
पंच महाव्रत धारण करके पच मुष्टि कच लोच किया।
जय प्रभु ऋषभदेव तीर्थकर तुमने मुनि पद धार लिया॥३॥
ॐ ह्री श्री चैत्रकृष्णनवमीदिने तपोमगल प्राप्ताय ऋषभदेवाय अर्घ्यं नि।
एकादशी कृष्ण फागुन को कर्म घातिया नष्ट हुए।
केवलज्ञान प्राप्त कर स्वामी वीतराग भगवन्त हुए॥
दर्शन, ज्ञान, अनन्तवीर्य, सुख पूर्ण चतुष्टय को पाया।
जय प्रभु ऋषभदेव जगती ने समवशरण लख सुख पाया॥४॥
ॐ ह्रीं श्री फागुनकृष्ण एकादशीदिने केवलज्ञान प्राप्ताय ऋषभदेवाय अर्घ्यं नि।
माघ वदी की चतुर्दशी को गिरि कैलाश हुआ पावन।
आठो कर्म विनाशे पाया परम सिद्ध पद मन भावन॥
मोक्ष लक्ष्मी पाई गिरि कैलाश शिखर, निर्वाण हुआ।
जय जय ऋषभदेव तीर्थकर भव्य मोक्ष कल्याण हुआ॥५॥
ॐ ह्रीं श्री माघवदी चतुर्दश्याम् महामोक्षमगल प्राप्ताय ऋषभदेवाय अर्घ्यं नि।

जयमाला

जम्बूदीप सु भरतक्षेत्र मे नगर अयोध्यानगरी विशाल।
नाभिराय चौदहवे कुलकर के सुत मरुदेवी के लाल॥१॥
सोलह स्वप्न हुए माता को पन्द्रह मास रत्न बरसे।
तुम आये सवार्थसिद्धि से माता उर मगल सरसे॥२॥
मति श्रुत अवधिज्ञान के धारी जन्मे हुए जन्म कल्याण।
इन्द्रसुरो ने हर्षित हो पाण्डुक शिला किया अभिषेक महान॥३॥
राज्य अवस्था में तुमने जन जन को कष्ट मिटाए थे।
असि,मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प, विद्याषट्कर्मसिखाये थे॥४॥

एक दिवस जब नृत्यलीन सुरि नीलाजना विलीन हुई ।
है पर्याय अनित्य आयु उसकी पल भर मे क्षीण हुए ।।५।।
तुमने वस्तु स्वरूप विचारा जागा उर वैराग्य अपार ।
कर चितवन भावना द्वादश त्यागा राज्य और परिवार ।।६।।
लौकान्तिक देवो ने आकर किया आपका जय जयकार ।
आश्रव हेय जानकर तुमने लिया हृदय मे सवर धार ।।७।।
वन सिद्धार्थ गये वट तरु नीचे वस्त्रो को त्याग दिया ।
त्वरित ''नम सिद्धेभ्य '' कहकर मौन हुए तप ग्रहण किया ।।८।।
स्वय बुद्ध वन कर्मभूमि मे प्रथम सुजिन दीक्षाधारी ।
ज्ञान मन पर्यय पाया धर पच महाव्रत सुखकारी ।।९।।
धन्य हस्तिनापुर के राजा श्रेयास ने दान दिया ।
एक वर्ष पश्चात् इक्षुरस से तुमने पारण किया ।।१०।।
एक सहरत्र वर्ष तप कर प्रभु शुक्ल ध्यान मे हो तल्लीन ।
पाप पुण्य आश्रव विनाश कर हुए आत्मररः मेलवलीन ।।११।।
चार घातिया कर्म विनाशे पाया अनुपम केवलज्ञान ।
दिव्य ध्वनि के द्वारा तुमने किया सकलजग का कल्याण ।।१२।।
चौरासी गणधर थे प्रभु पहले वृषभसेन गणधर ।
मुख्य आर्यिका श्री ब्राम्ही श्रोता मुख्य भरत नृपवर ।।१३।।
भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड मे नाथ आपका हुआ विहार ।
धर्मचक्र का हुआ प्रवर्तन सुखी हुआ सारा ससार ।।१४।।
अष्टापद कैलाश धन्य हो गया तुम्हारा कर गुणगान ।
बने अयोगी कर्म अघातिया नाश किये पाया निर्वाण ।।१५।।
आज तुम्हारे दर्शन करके मेरे मन आनन्द हुआ ।
जीवन सफल हुआ हे स्वामी नष्ट पाप दुख द्वन्द हुआ ।।१६।।
यही प्रार्थना करता हूँ प्रभु उर मे ज्ञान प्रकाश भरो ।
चारो गतियो के भव सकट का, हे जिनेवर नाश करो ।।१७।।

पाप तिमिर का पुन्ज नाश कर ज्ञान ज्योति जयवत हुई।
नित्य शुद्ध अविरुद्ध शक्ति के द्वारा महिमावत हुई ।।

तुम सम पद पा पाऊ मै भी यही भावना भाता हूँ।
इसीलिए यह पूर्ण अर्घ चरणो मे नाथ चढाता हूँ ।।१८।।

ॐ ह्रीं श्री ऋषभदेव जिनेन्द्राय महा अर्घ्य नि स्वाहा।

वृषभ चिन्ह शोभित ऋषभदेव उर धार।
मन वच तन जो पूजते वे होते भव पार ।।

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्रीं श्री ऋषभदेव जिनेन्द्राय नम ।

卐

श्री अजितनाथ जिन पूजन

द्वितीय तीर्थकर जिनस्वामी अजितनाथ प्रभु को वन्दन।
भाव द्रव्य संयममय मुनि बन किया आत्म का आराधन ।।
पच महाव्रत धारण करके निज स्वरूप मे लीन हुए।
कर्म नाशकर वीतरग प्रभु स्वय सिद्ध स्वाधीन हुए ।।

ॐ ह्री श्री अजितनाथ जिनेन्द्र अत्र अवतर अवतर, ॐ ह्रीं श्री अजितनाथ जिनेन्द्र, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ , ॐ ह्री श्री अजितनाथ जिनेन्द्र अत्रमम् सन्निहितो भव भव वषट्।

परम पवित्र पुनीत शुद्ध भावना नीर उर मे लाऊँ।
मै मिथ्यात्व शल्य क्षय करके अजर अमर पद कोपाऊँ ।।
अजितनाथ के चरणाम्बुज पर मैं न्योछावर हो जाऊँ।
विषय कषाय रहित होकर मै महामोक्ष पदवी पाऊँ ।।१।।

ॐ ह्री श्री अजितनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल नि ।

निर्मल शीतल भावपूर्ण शुचिमय चन्दन उर में लाऊँ।
माया शल्य नाश करके प्रभु भव आतप पर जय पाऊँ ।।अजित।।३।।

ॐ ह्रीं श्री अजितनाथ जिनेन्द्राय ससारताप विनाशनाय चदन नि ।

धवल शुद्ध पावन स्वरूप निज भावो के अक्षत पाऊँ।
शीघ्र निदान शल्य मैं हरकर निज अक्षय पद कोपाऊँ ।।अजित।।३।।

ॐ ह्रीं श्री अजितनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्ताय अक्षत नि ।

आत्म ज्ञान के समयसार मय भाव पुष्प निज में लाऊँ।
वीतराग सम्यक्त्व प्राप्त कर काम भाव क्षय कर पाऊँ ।।अजित।।४।।

ॐ ह्री श्री अजितनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि ।

समता के परिपूर्ण सहज नैवेद्य भाव उर मे लाऊँ ।
भव भोगों की आकाक्षा हर क्षुधाव्याधि पर जयपाऊँ ॥
अजितनाथ के चरणाम्बुज पर मै न्योछावर हो जाऊँ ।
विषय कषाय रहित होकर मे महामोक्ष पदवी पाऊँ ॥५॥
ॐ ह्रीं श्री अजितनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि ।
जगमग जगमग ज्ञान ज्योति मय भाव दीप उर मे लाऊँ ।
निज कैवल्य प्रकाशित कर जग अधकार को हर पाऊँ ॥अजित॥६॥
ॐ ह्रीं श्री अजितनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि ।
शुद्धातम परिमल सुगंधमय भाव धूप उर मे लाऊँ ।
बनू ध्यानपति निज स्वभाव से अष्टकर्म हर सुख पाऊँ ॥अजित॥७॥
ॐ ह्रीं श्री अजितनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म विध्वसनाय धूप नि ।
राग देष से रहित वीतरागी भावों के फल लाऊँ ।
निज चैतन्य सिद्ध पद पाकर परममुक्ति शिवमय पाऊँ ॥अजित॥८॥
ॐ ह्री श्री अजितनाथ जिनेन्द्राय महामोक्षफल प्राप्तये फल नि ।
अष्ट अग सह रहित दोष पच्चीस हृदय समकित लाऊँ ।
सहज विशुद्ध अर्घ्य भावो का ले अनर्घ्य पद प्रगटाऊँ ॥अजित॥९॥
ॐ ह्री श्री अजितनाथ जिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्ताय अर्घ्य नि ।

श्री पंचकल्याणक

विजय विमान त्याग माता विजया देवी उर धन्य किया ।
कृष्णा अमावस ज्येष्ठ मास, साकेतपुरी ने नृत्य किया ॥
देव देवियो ने रत्नो की वर्षा कर आनन्द लिया ।
अजितनाथ तीर्थकर प्रभु को भाव भक्ति से नमनकिया ॥१॥
ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णअमावस्या श्री अजितनाथजिनेन्द्राय गर्भमगलमण्डिताय अर्घ्यं ।
माघ शुक्ल दशमी को स्वामी नगर अयोध्या जन्म लिया ।
नृप जितशत्रु हर्ष से पुलकित देवो ने आनन्द किया ॥
देव क्षीरसागर जल लाये इन्द्रो ने अभिषेक किया ।
मात पिता को सौप इन्द्र ने अजितनाथ प्रभु नाम दिया ॥२॥
ॐ ह्रीं श्री माघशुक्लदशम्या श्री अजितनाथ जिनेन्द्रायजन्ममगलप्राप्ताय अर्घ्यं।

परम पूज्य भगवान आत्मा है अनत गुण से परिपूर्ण।
अतरमुखाकार होते ही हो जाते सब कर्म विचूर्ण ॥

माघशुक्ल दशमी को प्रभु ने तपधारण का किया विचार।
लौकान्तिक ब्रह्मर्षिसुरो ने किया आपका जय जयकार ॥
वन मे जाकर तरु सप्तच्छंद नीचे जिन दीक्षाधारी।
जय जय अजितनाथ देवो ने तप कल्याण किया भारी ॥३॥
ॐ ह्रीं श्री माघशुक्लदशम्या श्री अजितनाथ जिनेन्द्राय तपोमगलमण्डिताय अर्घ्यं।
मौन तपस्वी बारह वर्ष रहे छदमस्थ अजित भगवान।
प्रतिमायोग धार कुछदिन मे ध्याया शुक्लध्यानमयध्यान ॥
त्रेसठ कर्म प्रकृतियां नाशी तुमने पाया केवलज्ञान।
पौष शुक्ल एकादशी को दिया मुक्ति संदेश महान ॥४॥
ॐ ह्रीं श्री पौषशुक्लएकादश्या श्री अजितनाथ जिनेन्द्राय केवलज्ञान प्राप्ताय अर्घ्यं।
अ,इ,उ,ऋ,लृ, उच्चारण मे लगता है जितना काल।
उतने मे ही कर्म प्रकृतिपिच्चासी का कर क्षय तत्काल ॥
कूट सिद्धवर शिखर शैल से चैत्र शुक्ल पचमी स्वकाल।
अजितनाथ ने मोक्ष प्राप्त कर सम्मेदाचलकियानिहाल ॥५॥
ॐ ह्रीं श्री चैत्रशुक्लपचम्या श्री अजितनाथ जिनेन्द्राय मोक्षमगल प्राप्ताय अर्घ्यं नि।

जयमाला

जय जयअजितनाथ अद्‌भुतनिधि, अजर अमर अतिसत्यकर।
अमल अचल अतिकान्तिमान, अप्रेयात्मा अभयकर ॥१॥
दीक्षाधर सर्वज्ञ हुए प्रभु जन जन का कल्याण किया।
रत्नत्रयमय मोक्षमार्ग का ही उपदेश महान दिया ॥२॥
नब्बे गणधर थे जिनमे थे केसरिसेन मुख्य गणधर।
प्रमुख आर्यिका श्री "प्रकुब्जा" समवशरण सुन्दरसुखकर ॥३॥
बध मार्ग केजो कारण है उन सबको प्रभु ने बतलाया।
निज स्वभाव का आश्रय लेकर सिद्ध स्वपद को प्रगटाया ॥४॥
मिथ्यातम अविरति प्रमाद कषाय योग बध के हेतु।
भव समुद्र से पार उतरने को है रत्नत्रय का सेतु ॥५॥
एकान्त विनय विपरीत और सशय अज्ञान भरा उर में।
यह गृहीत अरु अगृहीत पाचो मिथ्यात्व भाव उर मे ॥६॥

व्याकुल मत हो मेरे मनवा कट जाएगी दुख की रात।
दिन के बाद रात आती है और रात के बाद प्रभात ।।

इनके नाश बिना सम्यकदर्शन हो सकता कभी नहीं।
मोक्ष मार्ग प्रारम्भ, बिना, समकित के होता कभी नही ।।७।।
पृथ्वी वायु वनस्पति जल अरु अग्नि काय की दया नहीं।
त्रस की हिंसा सदा हुई षटकायक रक्षा हुई नहीं ।।८।।
स्पर्शन रसना घ्राण चक्षुकर्णेन्द्रिय वश में हुई नही।
पचेन्द्रिय के वशीभूत हो मन को वश मे किया नही ।।९।।
पचेन्द्रिय अरु क्रोधमान माया लोभादिक चार कषाय।
भोजन, राज्य, चोर, स्त्री की कथा, चार विकथा दुखदाय ।।१०।।
निद्रा नेह मिलाकर पद्रह होते आगे अस्सी भेद।
है सैतीस हजार पॉच सौ इस प्रमाद के पूरे भेद ।।११।।
क्रोधमान माया लोभादिक चार कषाय भेद सोलह।
नो कषाय मिल भेद हुए पच्चीस बध के ही उपग्रह ।।१२।।
इनके नाश बिना प्रभु चेतन इस भव वन मे अटका है।
विषय कषाय प्रमादलीन हो चारो गति मे भटका है।।१३।।
मन वच काया तीनयोग ये कर्मबध के कारण है।
पद्रह भेद ज्ञान करलो जो भव भव मे दुखदारुण है ।।१४।।
मनोयोग के चार भेद है वचनयोग के भी है चार।
काय योग के सात भेद है ये सब योग बन्ध के द्वार ।।१५।।
सत्य, असत्य, उभय, अनुभय, ये मनोयोग के चारो भेद।
सत्य, असत्य, उभय अनुभय, ये वचनयोग के चारो भेद ।।१६।।
काय योग के सात भेद है औदारिक, औदारिकमिश्र।
वैक्रियक, वैक्रियकमिश्र है, आहारक आहारकमिश्र ।।१७।।
कार्माण है भेद सातवॉ जो जन करते इनका नाश।
अष्टम वसुधा, सिद्ध स्वपद वे पाते है, अविचल अविनाश ।।१८।।
कर्मबध के ये सब कारण इनको करूँ शीघ्र विध्वस।
परम मोक्ष की प्राप्ति करूँ शाश्वत सुख पाए चेतन हस ।।१९।।
विनय भाव से भक्ति पूर्वक मैने प्रभु की की है पूजन।
जब तक शुद्ध स्वरूप न पाऊँ रहूँ आपकी चरणशरण ।।२०।।

पूर्ण अहिंसा व्रत संयम की जब निश्चय बासुरी बजेगी।
मोह क्षोभ की गति क्षय होगी शुद्धातम निज साज सजेगी ॥

ॐ ह्री अजितनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं नि स्वाहा।

गजलक्षण युत अजित पद भाव सहित उरधार।
मनवचतन जो पूजते वे होते भव पार ॥२१॥

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्री श्री अजितनाथ जिनेन्द्राय नम ।

卐

श्री सम्भवनाथ जिन पूजन

वर्तमान हुडावसर्पिणी कर्मभूमि शुभ चौथा काल।
तृतिय तीर्थकर श्री सभवनाथ सुसेना मा के लाल ॥
मगधदेश श्रावस्ती नगरी के राजा जितारिनन्दन।
मति श्रुत अवधि ज्ञान के धारी जन्मे स्वामी सभवजिन ॥
जिन पुरुषार्थ स्वबल के द्वारा तुमने पाया केवलज्ञान।
चारघातिया की सैतालिस प्रकृतियो का करके अवसान ॥
चऊ अघाति की सोलह क्रूर प्रकृति नाशी अरहन्त हुए।
त्रेसठ कर्म प्रकृतियाँ छयकर वीतराग भगवन्त हुए ॥

ॐ ह्रीं श्री सभवनाथजिनेन्द्र अत्र अवतर अवतर सवौषट, श्री सभवनाथजिनेन्द्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ श्री सभवनाथजिनेन्द्र अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट।

स्वानुभूति वैभव का निर्मल सलिल सातिशय जल भरलूँ।
जिन स्वभाव की निर्मलता से मै शुद्धत्व प्राप्त कर लूँ ॥
सभव जिनका सभवत निज अन्तर मे दर्शन करलूँ।
तो भव भय हर कर हे स्वामी मुक्ति लक्ष्मी को वरलूँ ॥१॥

ॐ ह्री श्री सभवनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल नि ।

स्वानुभूति वैभव का शीतल चदन मै चर्चित कर लूँ।
निज स्वभाव की शीतलता से मै सिद्धत्व प्राप्त करलूँ ॥सभव ॥२॥

ॐ ह्री श्री सभवनाथजिनेन्द्राय ससारताप विनाशनाय चदन नि ।

स्वानुभूति वैभव के कोमल नव प्रसून उर मे भरलूँ।
निज स्वभाव की मृदुसुवाससेनिज शीलत्व प्राप्तकरलूँ ॥सभव.॥३॥

ॐ ह्री श्री सभवनाथजिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षत नि ।

शुद्धात्मसूर्य प्रकाश का निश्चय परम पुरुषार्थ है।
घनघाति कर्म विनाश का आचरण ही परमार्थ है ।।

स्वानुभूति वैभव के कोमल नव प्रसून उर मे भर लूँ।
निज स्वभाव की मृदुसुवाससेनिज शीलत्व प्राप्तकरलूँ।।संभव.।।४।।
ॐ ह्रीं श्री सभवनाथजिनेन्द्राय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि ।

स्वानुभूति वैभव के पावन चरु पवित्र निज मे धरलूँ।
निज स्वभाव की शुद्धवृत्ति से कर प्रवृत्ति का क्षयकरलूँ।।सभव ।।५।।
ॐ ह्रीं श्री सभवनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य नि ।

स्वानुभूति वैभव प्रकाश से अन्तर ज्योतिर्मय कर लूँ।
निजस्वभाव के ज्ञानदीप से मै अज्ञान तिमिर हर लूँ ।।सभव.।।६।।
ॐ ह्रीं श्री सभवनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि ।

स्वानुभूति वैभव की शुचिमय ध्यान धूप उर मे धरलूँ
निजस्वभाव के पूर्ण ध्यान से अष्टकर्म रिपु को हर लूँ ।।सभव ।।७।।
ॐ ह्रीं श्री सभवनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्म विनाशनाय धूप नि ।

स्वानुभूति वैभव के पावन शिवफल अन्तर मे भर लूँ।
निज स्वभाव अवलंबन द्वारा मैं मोक्षत्व प्राप्त कर लूँ ।।सभव ।।८।।
ॐ ह्रीं श्री सभवनाथजिनेन्द्राय महामोक्षफल प्राप्तये फल नि स्वाहा ।

स्वानुभूति वैभवमय दर्शन ज्ञान चरित्र हृदय धर लूँ।
चित्स्वभावमय समयसारवैभव का स्वत्व प्राप्त कर लूँ ।।सभव ।।९।।
ॐ ह्रीं श्री सभवनाथजिनेन्द्राय अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्य नि ।

श्री पंचकल्याणक

नव बारह योजन की नगरी रचकर धनपति मग्न हुआ।
गर्भ पूर्व छह मास रत्न बरसा कर इन्द्र प्रसन्न हुआ ।।
ग्रैवेयक से आये मात सुसेना का उर धन्य हुआ।
फागुन शुक्ल अष्टमी को सभव प्रभु का शुभ स्वपन हुआ ।।१।।
ॐ ह्रीं फागुन शुक्ल अष्टम्यां गर्भ कल्याण प्राप्तये श्री सम्भवनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्य नि ।

कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा के दिन श्रावस्ती मे जन्म हुआ।
नृप जितारि मन मे हर्षाये तिहुँ जग मे आनन्द हुआ ।।
मेरु सुदर्शन पाडुकवन मे सभव प्रभु का न्हवन हुआ।
एक सहस्त्र अष्ट कलशो मे क्षीरोदधि आगमन हुआ ।।२।।
ॐ ह्रीं कार्तिक शुक्ल पूर्णिमायांजन्मकल्याण प्राप्तये श्री सभवनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्य नि ।

अपनी देह नही अपनी तो पर पदार्थ भी सपना है।
शुद्ध बुद्ध चिद्रूप त्रिकाली ध्रुव स्वभाव ही अपना है ।।

मगसिर शुक्ल पूर्णिमा को ही जब उर में वैराग्य हुआ।
राज्य सम्पदा को ठुकराया वस्त्राभूषण त्याग हुआ ।।
संभव प्रभु को लौकान्तिक देवो का शत शत नमन हुआ।
गये सहेतुक वन में हर्षित पच महाव्रत ग्रहण हुआ ।।३।।

ॐ ह्रीं मगसिरशुक्ल पूर्णिमाया तपोमगलप्राप्ताय श्री सभवनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

कार्तिक कृष्ण चतुर्थी तक प्रभु चौदह वर्ष रहे छद्मस्थ।
केवलज्ञान लक्ष्मी पाई चार घातिया करके ध्वस्त ।।
समवशरण मे जग जीवो के अन्धकार का नाश हुआ।
सभव जिनकी दिव्य प्रभा से सम्यज्ञान प्रकाश हुआ ।।४।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्ण चतुर्थीदिने ज्ञानकल्याणप्राप्ताय श्री सभवनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

धवलदत्त शुभ कूट शिखर जी अन्तिमशुक्ल स्वध्यान किया।
सभवजिन ने हो अयोगकेवली परम निर्वाण लिया ।।
शेष अघाति कर्म सब क्षय कर पदसिद्धत्व महान लिया।
जय जय संभवनाथ सुरो ने मगल मोक्षकल्याण किया ।।

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लषष्टीदिने मोक्षकल्याणप्राप्ताय श्री सभवनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

जयमाला

सर्वलोक जित सर्व दोपाहर सदानद सागर सर्वेश।
सभवनाथसुधी सवरमय स्वय बुद्ध सौभागी स्वेश ।।१।।
इक्ष्वाकुकुल भूषण स्वामी न्यायवान अति परम उदार।
अश्व चिन्ह चरणो मे शोभित स्वर्गो से आता श्रृगार ।।२।।
भव तन भोग भोगते स्वामी पूरी यौवन वय बीता।
एक दिवस नभ मे देखी छाया बदली की छवि रीती ।।३।।
मेघ विनाश देखकर उरमे नश्वरता का भान हुआ।
राज्य, पाट, पुर, वैभव त्यागा वन की ओर प्रयाणहुआ ।।४।।
एक सहस्त्र नृपों के सग मे तुमने जिन दीक्षाधारी।
पच मुष्टि कच लोच किया प्रभु लिए महाव्रत सुखकारी ।।५।।

मै एक शुद्ध चैतन्य मूर्ति शाश्वत ध्रुव ज्ञायक हू अनूप।
निर्मलाचद अविकारी हू अविचल हू ज्ञानानद रूप ।।

नृप सुरेन्द्र गृह किया पारणा पचाश्चर्य हुए तत्क्षण।
मौन तपस्या वर्ष चतुर्दश मे जा पूर्ण हुई भगवन ।।६।।
समवशरण मे द्वादश सभाभरी जग का कल्याण किया।
सकल जगत ने देव आपका उपदेशामृत पान किया ।।७।।
शक्ति रूप से सभी जीव है ज्ञान स्वभावी सिद्ध समान।
व्यक्त रूप से जो हो जाता वही कहाता सिद्ध महान ।।८।।
जो निजात्म को ध्याता आया वह बन जाता है भगवान।
जो विभाव मे रत रहता है वह दुखिया ससारी प्राण ।।९।।
पुण्य पाप दोनो विभाव है इनको जानो ज्ञाता बन।
पुण्य पाप के खेल जगत मे देखे केवल दृष्टा बन ।।१०।।
इनमे राग द्वेष मत करना समता भाव हृदय धरना।
मोह ममत्व नाश कर प्राणी अधमिथ्यात्व तिमिर हरना ।।११।।
यह उपदेश हृदय मे धारूँ निज अनुभव महिमा आये।
अनुभव की हरियाली सावन भादो सी उर मे छाये ।।१२।।
पॉचो इन्द्रिय वश मे करके चार कषाये मद करूँ।
मन कपि की चचलता रोकूँ उर मे निज आनन्द भरूँ ।।१३।।
सम्यक्दर्शन की धारण कर ग्यारह प्रतिमाए धारूँ।
क्रम क्रम से इनका पालन कर श्रेष्ठ महाव्रत स्वीकारूँ ।।१४।।
इस प्रकार प्रभु पथकर चलकर निज स्वरूप पाजाऊँगा।
निज स्वभाव के अनुभव से ही महामोक्ष पद पाऊँगा।।१५।।

ॐ ह्री श्री सभवनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं नि

सभव प्रभु के पद कमल भाव सहित उर धार।
मन वच तन जो पूजते वे हो जाते भव पार ।।

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र श्री सभवनाथ जिनेन्द्राय नम ।

卐

सफल हुआ सम्यक्त्व पराक्रम छाया भेद ज्ञान अनुपम।
अंतर द्वंद नष्ट होते ही क्षीण हो गया मिथ्यातम ॥

श्री अभिनन्दननाथ जिन पूजन

अभिनन्दन अभ्यघ्न अयोगी अविनश्वर अध्यात्म स्वरूप।
अमित ज्योति अभ्यर्च आत्मन् अविकारी अतिशुद्ध अनूप॥
रत्नत्रय की नौका पर चढ आप हुए भवसागर पार।
सकल कर्म मल रहित आप की गूंज रही है जयकार॥

ॐ ह्रीं श्री अभिनन्दनाथ जिनेन्द्र अत्र अवतर-अवतर सवौषट्, ॐ ह्रीं श्री अभिजन्दननाथ जिनेन्द्र अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठ ठ, ॐ ह्रीं श्री अभिनन्दनाथ जिनेन्द्र अत्रमम् सन्निहितो भव भव वषट्।

क्षीरोदधि का धवल दुग्धसम अति निर्मल जल मलहारी।
जन्म जरा मृतरोग नशाऊँ पाऊँ शिवपद अविकारी॥
हे अभिनन्दननाथ जगत्पति भव भय भंजन दुखहारी।
जन मन रजन नित्य निरजन जगदानन्दन सुखकारी ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री अभिनन्दनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जल नि।

मलयागिर का बावन चन्दन लाऊँ शीतलताकारी।
भव भव का आताप मिटाऊँ पाऊँ शिवपद अविकारी ॥हे अभि ॥२॥

ॐ ह्रीं श्री अभिनन्दनाथ जिनेन्द्राय ससारताप विनाशनाय चदन नि।

उत्तम पुज अखण्डित तदुल लाऊँ उज्जवलता धारी।
भवसागर से पार उतर कर पाऊँ शिवपद अतिकारी ॥हे अभि॥३॥

ॐ ह्रीं श्री अभिनन्दनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्ताय अक्षत नि।

परम पारिणामिक भावो के सहज पुष्प प्रभु भवहारी।
शीलस्वगुण से कामभाव हर पाऊँ शिवपद अविकारी ॥हे अभि.॥४॥

ॐ ह्रीं श्री अभिनन्दनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि।

परद्रव्यो की भूख न मिट पाई है क्षुधारोग भारी।
पच महाव्रत के चरुलाऊं पाऊँ शिवपद अविकारी ॥हे अभि.॥५॥

ॐ ह्रीं श्री अभिनन्दनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि।

मिथ्याभ्रम के कारण अब तक छाई भीषण अधियारी।
स्वपर प्रकाशक ज्योति प्रकाशुं पाऊँ शिवपद अविकारी ॥हे अभि.॥६॥

ॐ ह्रीं श्री अभिनन्दनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीप नि।

निज स्वभाव की महिमा आए बिना जीव भ्रमता जाता है।
पच परावर्तन के द्वारा ही भवसमुद्र के दुख पाता है ॥

अष्टकर्म बंधन मे पडा चहुँ गति में पाया दुखभारी।
ध्यान धूप से कर्म जलाऊँ पाऊँ शिवपद अविकारी ॥
हे अभिनन्दननाथ जगत्पति भव भय भंजन दुखहारी।
जन मन रजन नित्य निरजन जगदानन्दन सुखकारी ॥७॥

ॐ ह्रीं श्री अभिनन्दनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म विध्वसनाय धूप नि ।

निजपरिणति रसपान करूँ प्रभु पर परिणति तजभयकारी।
परममोक्ष फलसिद्ध स्वगति ले पाऊँ शिवपद अविकारी ॥हेअभि ॥८॥

ॐ ह्रीं श्री अभिनन्दनाथ जिनेन्द्राय महामोक्ष फल प्राप्ताय फल नि ।

सम्यकदर्शन ज्ञानचरितमय बन रत्नत्रय गुणधारी।
निज अनर्घ पदवी को धारूँ पाऊँ शिवपद अविकारी ॥हे अभि ॥९॥

ॐ ही श्री अभिनन्दनाथ जिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्ताय अर्घ्य नि ।

श्री पंचकल्याणक

शुभ वैशाख शुक्लषष्ठी को विजय विमान त्याग आये।
धन्य हुई माता सिद्धार्था रत्नसुरो ने बरसाये ॥
छप्पन दिककुमारियो ने माँ की सेवा कर सुखपाए।
हे अभिनन्दन स्वामी जय जय देवो ने मगलगाए ॥१॥

ॐ ही श्री वैशाखशुक्लषष्ठीदिने श्री अभिनन्दननाथ जिनेन्द्राय गर्भमगल प्राप्ताय अर्घ्य नि ।

माघ शुक्ल द्वादश को स्वामी नगर अयोध्या जन्म हुआ।
नृपति स्वयबर के प्रागण मे हर्ष हुआ आनन्द हुआ ॥
एक सहस्त्र अष्ट कलशो से गिरि सुमेरु अभिषेक हुआ।
हे अभिनन्दन पाडुकवन मे इन्द्रशचीसुर नृत्य हुआ ॥२॥

ॐ ही माघशुक्लद्वादश्या जन्म मगल प्राप्ताय श्री अभिनदननाथजिनेन्द्राय अर्घ्य नि ।

नश्वर मेघो का परिवर्तन लखकर प्रभु वैराग्य हुआ।
अग्रोद्यान सरस तरु नीचे वस्त्राभूषण त्याग हुआ ॥
माघ शुक्ल द्वादश लौकातिक देवो का जयनाद हुआ।
हे अभिनन्दन पचमहाव्रत धारे दूर प्रमाद हुआ ॥३॥

ॐ ही माघशुक्लद्वादश्या तपोमगल प्राप्ताय श्री अभिनदननाथजिनेन्द्राय अर्घ्य नि ।

पौष शुक्ल चतुदर्शी को निर्मल केवलज्ञान हुआ।
समवशरण की रचनाकर धनपति को अतिबहुमान हुआ ।।
द्वादश सभा बीच दिव्यध्वनि खिरी दिव्य उपदेश हुआ।
हे अभिनन्दन भव्यजनों को प्राप्त मुक्ति संदेश हुआ ।।४।।

ॐ ह्रीं पौषशुक्ल चतुर्दश्या केवलज्ञानप्राप्ताय अभिनंदननाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि।

प्रतिमायोग किया जब धारण पावन गिरिसम्मेद हुआ।
शुभ वैशाख शुक्ल षष्टम आनन्दकूट से मोक्ष हुआ ।।
चार प्रकार देव सब आये हर्षित इन्द्र महान हुआ।
हे अभिनन्दन जिनेश्वर परम मोक्ष कल्याण हुआ ।।५।।

ॐ ह्रीं बैशाख शुक्ल षष्ट्या मोक्षमगल प्राप्ताय अभिनंदननाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि।

जयमाला

कर्म भूमि के चौथे तीर्थंकर जिनपति अभिनन्दन नाथ।
देव आपकी पूजन करके में अनाथ भी हुआ सनाथ ।।१।।
हुए एक सौ तीन सुगणधर पहिले वज्रनाभि गणधर।
मुख्य आर्यिका श्री मेरुषेणा, श्रोता थे सुर मुनिवर ।।२।।
नाथ कर्म सिद्धान्त आपका है अकाट्य अनुपम आगम।
कर्म शुभाशुभ भव निर्माता कर्त्ता भोक्ता जीव स्वयम् ।।३।।
प्रकृति कर्म की मूल आठ है सभी अचेतन जड पुद्गल।
इनमे सयोगी भावो से होता आया जीव विकल ।।४।।
यदि पुरुषार्थ करे यह चेतन निज स्वरूप का लक्ष करे।
ज्ञाता दृष्टा बनकर इनका सर्वनाश प्रत्यक्ष करे ।।५।।
प्रकृति द्रव्य पुण्यो की अडसठ द्रव्य पाप की एक शतक।
प्रकृति एक सौ अडतालीस कर्म की बीस उभय सूचक ।।६।।
कर्म घाति की सैतालीस है एक शतक इक अघाति की।
ये सब है कार्माण वर्गणा महामोक्ष के घातकी ।।७।।
ज्ञानावरणी की पॉच प्रकृति है दर्शनआवरणी की नों।
महोनीय की अट्ठाइस है अन्तराय की पाँच गिनौं ।।८।।

जो विकल्प है आश्रव युत है निर्विकल्प ही आश्रव हीन।
जो स्वरुप मे थिर रहता है वही ज्ञान है ज्ञान प्रवीण ।।

घाति कर्म की ये सैंतालिस निज स्वभाव का घात करे।
इन चारों का नाश करे जो वही ज्ञान कैवल्य वरे ।।९।।
वेदनीय दो, आयु चार है गोत्र कर्म की तो है दो।
नामकर्म की तिरानवे है एक शतक अरु एक गिनो ।।१०।।
इनमें से सोलह अघाति की घाति कर्म सग जाती है।
शेष रही पच्चासी पर वे अति निर्बल हो जाती है ।।११।।
इनका होता नाश चतुर्दश गुणस्थान मे है सम्पूर्ण।
शुद्ध सिद्ध पर्याय प्रकट हो सादि अनन्त सुखो से पूर्ण ।।१२।।
मुझको प्रभु आशीर्वाद दो मैं अब भव का नाश करूँ।
सम्यक् पूजन का फल पाऊँ कर्मनाश शिव वास करूँ ।।१३।।
कर्म प्रकृतियाँ एक शतक अरु अडतालीस अभाव करूँ।
मै लोकाग्र शिखर पर जाकर सिद्ध स्वरूप स्वभाव वरूँ ।।१४।।
नाथ आपकी पूजन करके मुझको अति आनन्द हुआ।
जन्म जन्म के पातक नाशे दूर शोक दुख द्वद हुआ ।।१५।।

ॐ ह्रीं श्री अभिनदन जिनेन्द्राय अनर्घपद्व प्राप्ताय पूर्णार्घ्यं नि ।

कपि लक्षण प्रभु पद निरख अभिनन्दन चित् धार।
मन वच तन जो पूजते हो जाते भव पार ।।

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्रीं श्री अभिनदन जिनेन्द्राय नम ।

卐

श्री सुमतिनाथ जिनपूजन

जय जय सुमतिनाथ पंचम तीर्थंकर प्रभु मगलदाता।
कुमतिविनाशक सुमतिप्रकाशक परमशात जगविख्यात ।।
सहज स्वरूपी सर्वशरण सर्वार्थ सिद्ध सकट हर्ता।
सत्य तीर्थंकर सर्वगुणाश्रित सूर्य कोटि प्रभु सुख कर्ता ।।
मै अनादि से दुखिया व्याकुल शरण आपकी आया हूँ।
सत्यमार्ग सत्यार्थ प्राप्ति हित भाव सुमन प्रभु लाया हूँ ।।

शुद्ध भाव ही मोक्ष मार्ग है इससे चलित नहीं होना।
चलित हुए तो मुक्ति न होगी होगा कर्मभार ढोना ।।

ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथ जिनेद्र अत्र अवतर अवतर सवौषट्, ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्र अत्र तिष्ठ ठ ठ ॐ ही श्री सुमतिनाथ जिनेद्र अत्रमम् सन्निहितो भव भव वषट्।

जल की निर्मलता नाथ मुझको भाई है।
शुद्धातम को महिमा नही कर पाई है ।।
हे सुमतिनाथ जिनदेव सुमति प्रदान करो।
ससार भ्रमण का मूल भ्रम अज्ञान हरो ।।१।।

ॐ ही श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल नि ।

चदन की शीतलता सदा ही भाई है।
शुद्धातम की महिमा नही कर पाई है ।।हे सुमति ।।२।।

ॐ ही श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्राय ससारताप विनाशनाय चदन नि ।

तदुल की उज्ज्वलता हृदय को भाई है।
शुद्धातम की महिमा नही कर पाई है ।। हे सुमति ।।३।।

ॐ ही श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्ताय अक्षत नि ।

पुष्पो की सरस सुवास मन को भायी है।
शुद्धातम की महिमा नहीं कर पाई है ।।हे सुमति.।।४।।

ॐ ही श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि ।

नित खाकर भी नैवेद्य तृप्ति न पाई है।
शुद्धातम की महिमा नही कर पाई है ।। हे सुमति.।।५।।

ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य नि ।

रत्नो की दीपक ज्योति तो दिखलाई है।
शुद्धातम की महिमा नही कर पाई है।। हे सुमति.।।६।।

ॐ ही श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि ।

मन महा सुगन्धित धूप सुरभि सुहाई है।
शुद्धातम की महिमा नहीं कर पाई है ।।हे सुमति ।।७।।

ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म विध्वसनाय धूप नि ।

अनुकूल पुण्य फल राग की रुचि भाई है।
शुद्धातम की महिमा नही कर पाई है।। हे सुमति.।।८।।

ॐ ही श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्राय महामोक्ष फल प्राप्तये फल नि ।

जग के द्रव्यों को चाह, नित ही भायी है।
शुद्धातम की महिमा नही कर पाई है॥हे सुमति.॥९॥
ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ पद प्राप्ताय अर्घ्य नि ।

श्री पंचकल्याणक

स्वर्ग जयन्त विमान त्यागकर मात मंगला उर आए।
नगर अयोध्या धन्य हो गया रत्न सुरो ने बरसाए ॥
सोलह स्वप्न लखे माता ने श्रावण शुक्ल दूज भाए।
जय जय सुमतिनाथ तीर्थंकर इन्द्रादिक सुर मुस्काए ॥१॥
ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लद्वितीया गर्भ कल्याण प्राप्ताय श्री सुमतिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्य नि ।

चैत्र शुक्ल एकादशी को प्रभु भारत भू पर आए।
नृपति मेघ के आगन मे देवी ने मगल गाए ॥
ऐरावत पर सुरपति तुमको गोदी मे ले हर्षाए।
जय जय सुमतिनाथ जन्मोत्सव पर जग ने बहुसुख पाए ॥२॥
ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लएकादश्या जन्मकल्याण प्राप्ताय श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्य नि ।

शुभ वैशाख शुक्ल नवमी को जगा हृदय वैराग्य महान।
लौकातिक ब्रम्हर्षि सुरो ने किया स्वर्ग से आ गुणगान ॥
दीक्षित हुए सहेतुक वन मे तरु प्रियगु के नीचे आन।
जय जय सुमतिनाथ तीर्थंकर हुआ आपका तप कल्याण ॥३॥
ॐ ह्रीं बैशाखशुक्लनवम्या तपकल्याण प्राप्ताय श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्य नि ।

बीसवर्ष छदमस्थ रहे प्रभु धारा प्रतिमा योग प्रधान।
चैत सुदी ग्यारस को पाया शुक्ल ध्यान पर केवलज्ञान ॥
समवशरण की अनुपम रचना हुई हुआ उपदेश महान।
जय जय सुमतिनाथ तीर्थंकर अद्‌भुत हुआ ज्ञानकल्याण ॥४॥
ॐ ह्रीं चैत्रसुदीएकादश्या ज्ञान कल्याण प्राप्ताय श्री सुमतिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्य नि ।

'अप्पा से परमप्पा'' जिनके उर मे भाव समाया।
पर पदार्थ से निमिष मात्र मे उसने राग हटाया।।

चैत्र शुक्ल एकादशी को अष्ट कर्म का कर अवसान।
अविचल कूट शिखर सम्मेदाचल से पाया पद निर्वाण।।
मुक्ति धरा तक गूज उठे देवों के सुन्दर मंजुल गान।
जय जय सुमतिनाथ परमेश्वर अनुपम हुआ मोक्षकल्याण।।५।।

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लएकादश्या मोक्ष कल्याण प्राप्ताय श्री सुमतिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि।

जयमाला

सुमतिनाथ प्रभु मुझे सुमति दो उर मे निर्मल भाव जगे।
धर्म भाव से ही मेरी नैया भव सागर पार लगे।।१।।
एक शतक सोलह गणधर थे मुख्य वज्र गणधर स्वामी।
प्रमुख आर्यिका अनतमति थी द्वादश सभा विश्वनामी।।२।।
अहिंसादि पाँचो व्रत की पच्चीस भावनाए भाऊँ।
पंच पाप के पूर्ण त्याग की पाँच भावनाएं ध्याऊँ।।३।।
ध्याऊँ मैत्री आदि चार, प्रशमादि भावना चार प्रवीण।
शल्य त्याग की तीन भावना, भवतनभोग त्याग की लीन।।४।।
दर्शन विशुद्धि भावना सोलह अतर मन से मै ध्याऊँ।
क्षमा आदि दशलक्षण की दश धर्म भावनाए भाऊँ।।५।।
अनशन आदि तपो की बारह दिव्य भावनाए ध्याऊँ।
अनित्य अशरण आदि भावना द्वादश नित ही मैं भाऊँ।।६।।
ध्यान भावना सोलह ध्याऊँ तत्व भावना भाऊँसात।
रत्नत्रय की तीन भावना अनेकात की एक विख्यात।।७।।
श्रुत भावना एक नित ध्याऊँ अरु शुद्धात्म भावना एक।
कब निर्ग्रन्थ बनू यह भाऊँ द्रव्य आदि भावना अनेक।।८।।
एक शतक पच्चीस भावनाए मैं नित प्रति प्रभु भाऊँ।
मनवचकाय त्रियोग संवारूँ शुद्ध भावना प्रगटाऊँ।।९।।
इस प्रकार हो मोक्षमार्ग मेरा प्रशस्त निज ध्यान करूँ।
देव आपकी भाति धार सयम निज का कल्याण करूँ।।१०।।

चार औदयिक औपशमिक क्षायोपशमिक क्षायिक परभाव ।
इन चारों के आश्रय से ही होती है अशुद्ध पर्याय ।।११।।
इन चारो से रहित जीव का एक पारिणामिक निजभाव ।
पंचमभाव आश्रय से ही होती प्रकट सिद्ध पर्याय ।।१२।।
पंच महाव्रत पच समिति त्रयगुप्ति त्रयोदश विधिचारित्र ।
अष्टकर्म विषवृक्ष मूल को नष्ट करूँ धर ध्यान पवित्र ।।१३।।
पचाचारयुक्त, करके प्रपंच से रहित ध्यान ध्याऊँ ।
निरुपराग निर्दोषनिरजन निज परमात्म तत्व पाऊँ ।।१४।।
पचम परम पारिणामिक से पंचमगति शिवमय पाऊँ ।
द्रव्य कर्म अरु भाव कर्म से हो विमुक्त निजगुण गाऊँ ।।१५।।
सुमतिनाथ पंचम तीर्थकर के पद पकज नित ध्याऊँ ।
पंच परावर्तन अभावकर सुखमय सिद्ध स्वगति पाऊँ ।।१६।।

ॐ ह्री श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्य नि ।

चकवा शोभित प्रभु चरण सुमतिनाथ उर धार ।
मन वच तन जो पूजते वे होते भव पार ।।

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्राय नम ।

卐

श्री पद्मप्रभ जिनपूजन

जय जय पद्म जिनेश पद्मनभ पावन पद्माकर परमेश ।
वीतराग सर्वज्ञ हितकर पद्मनाथ प्रभु पूज्य महेश ।।
भवदुख हर्ता मंगलकर्ता षष्टम तीर्थकर पद्मेश ।
हरो अमगल प्रभु अनादि का पूजन का है यह उद्देश्य ।।

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्र अत्र अवतर अवतर सवौषट्, ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभजिनेन्द्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ , ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभजिनेन्द्र अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् ।

शुद्ध भाव का धवलनीर लेकर जिन चरणो मे आऊँ।
जन्म मरण की व्याधि मिटाऊँ नाचूँ गाऊँ हर्षाऊँ ।।

देवालय मे देव नहीं है मनमंदिर मे देव है।
अतर्मुख ही देख स्वय तू महादेव स्वयमेव है ।।

परम पूज्य पावन परमेश्वर पदमनाथ प्रभु को ध्याऊँ।
रोग शोक संताप क्लेश हर मगलमय शिवपद पाऊँ ।।१।।
ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्र ाय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल नि ।
शुद्ध भाव के शीतल चंदन ले प्रभु चरणों में आऊँ।
भव आताप व्याधि को नाशूँ नाचूँ गाऊँ हर्षाऊँ ।।परम पूज्य ।।२।।
ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्र ाय अक्षयपद प्राप्तये चदन नि ।
शुद्ध भाव के उज्ज्वल अक्षत ले जिन चरणों में आऊँ।
अक्षय पद अखंड मै पाऊँ नाचूँ गाऊँ हर्षाऊँ ।।परम पूज्य ।।३।।
ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्र ाय अक्षयपद प्राप्तये अक्षत नि ।
शुद्ध भाव के पुष्प सुरभिमय ले प्रभु चरणों में आऊँ।
कामबाण को व्यधि नशाऊँ नाचूँ गाऊँ हर्षाऊँ ।।परम पूज्य ।।४।।
ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्र ाय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि ।
शुद्ध भाव के पावन चरु लेकर प्रभु चरणो में आऊँ।
क्षुधा व्याधि का बीज मिटाऊँ नाचूँ गाऊँ हर्षाऊँ ।।परम पूज्य ।।५।।
ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्र ाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि ।
शुद्ध भाव की ज्ञान ज्योति लेकर प्रभु चरणों मे आऊँ।
मोहनीय भ्रम तिमिर नशाऊँ नाचूँ गाऊँ हर्षाऊँ ।।परमपूज्य।।६।।
ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्र ाय मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि ।
शुद्ध भाव की धूप सुगन्धित ले प्रभु चरणों में आऊँ।
अष्टकर्म विध्वस करूँ मैं नाचूँ गाऊँ हर्षाऊँ ।।परम पूज्य ।।७।।
ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्र ाय अष्टकर्म विनाशनाय धूप नि ।
शुद्ध भाव सम्यक्त्व सुफल पाने प्रभु चरणों में आऊँ।
शिवमय महामोक्ष फल पाऊँ नाचूँ गाऊँ हर्षाऊँ ।।परम पूज्य ।।८।।
ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्र ाय महामोक्षफल प्राप्ताय फल नि ।
शुद्ध भाव का अर्घ अष्टविध ले प्रभु चरणों मे आऊँ।
शाश्वत निज अनर्घपद पाऊँ नाचूँ गाऊँ हर्षाऊँ ।।परमपूज्य।।९।।
ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्र ाय अनर्घ पद प्राप्ताय अर्घ्य नि ।

पंचकल्याणक

शुभदिन माघ कृष्ण षष्ठी को मात सुसीमा हर्षाए।
उपरिम ग्रैवेयक विमान प्रीतिकर तज उर मे आए ।।१।।

आत्मिक रुचि ही तो अनत सुख की है पावन साधना।
परम शुद्ध चैतन्य ब्रह्म की सहज जगाती भावना ।।

नव बारह योजन नगरी रच रत्न इन्द्र ने बरसाये।
जय श्री पद्मनाथ तीर्थकर जगती ने मगल गाए ।।१।।

ॐ ह्रीं श्रीमाघकृष्णषष्ठीदिने गर्भमगलप्राप्ताय श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी को कौशाम्बी मे जन्म लिया।
गिरि सुमेरु पर इन्द्रादिक ने क्षीरोदधि ने न्हवन किया ।।
राजा धरणराज आँगन मे सुर सुरपति ने नृत्य किया।
जय जय पद्मनाथ तीर्थकर जग ने जय जय नाद किया ।।२।।

ॐ ह्रीं श्री कार्तिककृष्णत्रयोदश्या जन्ममगलप्राप्ताय श्री पदमप्रभ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी को तुमको जाति स्मरण हुआ।
जागा उर वैराग्य तभी लौकान्तिक सुर आगमन हुआ ।।
तरु प्रियंगु मनहर वन में दीक्षाधारी तप ग्रहण हुआ।
जय जय पद्मनाथ तीर्थकर अनुपम तप कल्याण हुआ ।।३।।

ॐ ह्रीं श्री कार्तिककृष्णत्रयोदश्या तपोमगलप्राप्ताय श्री पदमप्रभ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

चैत्र शुक्ल पूर्णिमा मनोहर कर्म घाति अवसान किया।
कौशाम्बी वन शुक्ल ध्यान धर निर्मल केवलज्ञान लिया ।।
समवशरण मे द्वादश सभा जुडी अनुपम उपदेश दिया।
जय जय पद्मनाथ तीर्थकर जग को शिव सन्देश दिया ।।४।।

ॐ ह्रीं श्री चैत्रशुक्लपूर्णिमाया ज्ञानमगल प्राप्ताय श्री पदमप्रभ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

मोहन कूट शिखर सम्मेदाचल से योग विनाश किया।
फाल्गुन कृष्ण चतुर्थी को प्रभु भवबन्धन का नाश किया ।।
अष्टकर्म हर ऊर्ध्व गमन कर सिद्ध लोक आवास लिया।
जयति पद्मप्रभु जिनतीर्थश्वर शाश्वत आत्मविकाश किया ।।५।।

ॐ ह्री श्री फल्गुनकृष्णचतुर्थ्या मोक्षमगलप्राप्ताय श्री पदमप्रभ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

एक मात्र पुरुषार्थ यही है सम्यक् पथ पर आ जाओ।
अतस्तल की गहराई मे आकर निज दर्शन पाओ॥

जयमाला

परम श्रेष्ठ पावन परमेष्ठी पुरुषोत्तम प्रभु परमानन्द।
परमध्यानरत परमब्रह्ममय प्रशान्तात्मा पद्मानन्द ॥१॥
जय जय पद्मनाथ तीर्थंकर जय जय जय कल्याणमयी।
नित्य निरंजन जनमन रंजन प्रभु अनन्त गुण ज्ञानमयी ॥२॥
राजपाट अतुलित वैभव को तुमने क्षण में ठुकराया।
निज स्वभाव का अवलम्बन ले परम शुद्ध पद को पाया ॥३॥
भव्य जनों को समवशरण में वस्तुतत्व विज्ञान दिया।
चिदानन्द चैतन्य आत्मा परमात्मा का ज्ञान दिया ॥४॥
गणधर एक शतक ग्यारह थे मुख्य वज्रचामर ऋषिवर।
प्रमुख रात्रिषेणा सुआर्या श्रोता पशु नर सुर मुनिवर ॥५॥
सात तत्व छह द्रव्य बताए मोक्ष मार्ग संदेश दिया।
तीन लोक के भूले भटके जीवो को उपदेश दिया ॥६॥
नि·शकादिक अष्ट अंग सम्यकदर्शन के बतलाये।
अष्ट प्रकार ज्ञान सम्यक् बिन मोक्षमार्ग ना मिल पाए ॥७॥
तेरह विधि सम्यक् चारित का सत्स्वरूप है दिखलाया।
रत्नत्रय ही पावन शिव पथ सिद्ध स्वपद को दर्शाया ॥८॥
हे प्रभु यह उपदेश ग्रहण कर मै जो निजका कल्याण करूँ।
निज स्वरूप की सहज प्राप्ति कर पद निर्ग्रन्थ महानवरूँ ॥९॥
इष्ट अनिष्ट सयोगो मे मैं कभी न हर्ष विषाद करूँ।
साम्यभाव धर निज अन्तर मे भव का वाद विवाद करूँ ॥१०॥
तीन लोक मे सार स्वय के आत्म द्रव्य का भान करूँ।
पर पदार्थ की महिमा त्यागूँ सुखमय भेद विज्ञान करूँ ॥११॥
द्रव्य भाव पूजन करके मैं आत्म चिंतवन मनन करूँ।
नित्य भावना द्वादश भाऊँ राग द्वेष का हनन करूँ ॥१२॥
तुम पूजन से पुण्यसातिशय हो भव-भव तुमको पाऊँ।
जब तक मुक्ति स्वपद ना पाऊँ तब तक चरणो में आऊँ ॥१३॥

ज्ञानदीप की शिखा प्रज्ज्वलित होते ही भ्रम दूर हुआ।
सम्यक् दर्शन की महिमा से गिरि मिथ्यातम चूर हुआ ॥

संवर और निर्जरा द्वारा पाप पुण्य सब नाश करूँ।
प्रभु नव केवल लब्धि रमा पा आठों कर्म विनाश करूँ ॥१४॥
तुम प्रमाद से मोक्ष लक्ष्मी पाऊं निज कल्याण करूँ।
सादि अनन्त सिद्ध पद पाऊं परम शुद्ध निर्वाण वरू ॥१५॥

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्राय गर्भजन्मतपज्ञानमोक्ष, पचकल्याण प्राप्ताय पूर्णार्घ्यं नि ।

कमल चिन्ह शोभित चरण, पद्‌नाथ उरधार।
मन वच तन जो पूजते, वे होते भव पार ॥

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्राय नम ।

卐

श्री सुपार्श्वनाथ जिन पूजन

जय सुपार्श्व प्रभु सुप्रतिष्ठ राजा के नन्दन महाविशाल।
माँ पृथ्वी देवी के प्रिय सुत सहज स्वरूपी सदा त्रिकाल ॥
सुखदाता सुखपुज सर्वदर्शी सुखसागर हे सत्येश।
सकलवस्तु विज्ञाता स्वामी सिद्धानन्द सत्य विद्येश ॥
आत्म शक्ति का आश्रय लेकर केवलज्ञानी आपहुए।
वीतराग सर्वज्ञ महाप्रभु निष्कषाय निष्पाप हुए ॥

ॐ ह्री श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्र अत्र अवतर-अवतर सवौषट्, ॐ ह्री श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ , ॐ ह्री श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्र अत्रमम् सन्निहितो भव भव वषट्।

सिंधु गंगानीर निर्मल स्वर्ण झारी मे भरूँ।
जन्म मरण विनाश कर मैं चार गति के दुख हरूँ ॥
श्री सुपार्श्व जिनेन्द्र चरणाम्बुज हृदय धारण करूँ।
निज आत्मा का आश्रय ले ज्ञान लक्ष्मी को वरूँ ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्रायजन्मजरामृत्युविनाशनाय जल नि ।

मलय चदन दाहनाशक स्वर्ण भाजन मे धरूँ।
भव भ्रमण का ताप हर मै चार गति के दुख हरूँ ॥श्री सुपार्श्व॥२॥

ॐ ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय ससारताप विनाशनाय चदन नि ।

अब प्रभु चरण छोड़ कित जाऊं ।
ऐसी निर्मल बुद्धि प्रभो दो शुद्धातम को ध्याऊं ।।

धवल तंदुल पुंज उज्जवल शुभ्र, चरणो में धरूँ ।
अक्षय अखंड अनंत पद पा चार गति के दुख हरूँ ।।
श्री सुपार्श्व जिनेन्द्र चरणाम्बुज हृदय धारण करूँ ।
निज आत्मा का आश्रय ले ज्ञान लक्ष्मी को वरूँ ।।३।।

ॐ ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्ताय अक्षत नि ।

पुष्पनन्दन वन सुरभिमय देव चरणों मे धरूँ ।
काम ज्वर संताप हर मैं चार गति के दुख हरूँ ।।श्रीसुपार्श्व ।।४।।

ॐ ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्प नि ।

सरस पावन सोहने नैवेद्य चरणों में धरूँ ।
चिर अतृप्ति सुतृप्त कर मैं चार गति के दुख हरूँ ।।श्रीसुपार्श्व।।५।।

ॐ ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि ।

ज्ञान दीपक ज्योति जगमग निज प्रकाशित मैं करूँ ।
मोहतम को सर्वथा हर चार गति के दुख हरूँ ।।श्री सुपार्श्व ।।६।।

ॐ ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि ।

धर्म की दश अंग मय निज धूप अन्तर मे धरूँ ।
कर्म अष्ट विनष्ट कर मैं चार गति के दुख हरूँ ।।श्री सुपार्श्व।।७।।

ॐ ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूप नि ।

पुण्य फल के राग की रुचि अब नहीं किंचित करूँ ।
मोक्षफल परमात्म पद पा चार गति के दुख हरूँ।।श्रीसुपार्श्व।।८।।

ॐ ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्ताय फल नि ।

सिद्ध प्रभु के अष्ट गुण का रात दिन सुमिरण करूँ ।
भाव अर्घ चरण चढाऊँचार गति के दुख हरूँ ।।श्री सुपार्श्व ।।९।।

ॐ ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्ताय नि ।

श्री पंचकल्याणक

मध्यम ग्रैवेयक विमान तज मात गर्भ अवतार लिया ।
माँ पृथ्वी देवी के सोलह स्वप्नो को साकार किया ।।
हुई नगर की सुन्दर रचना रत्नों की बौछार हुई ।
श्री सुपार्श्व की भादव शुक्ला षष्ठी को जयकार हुई ।।१।।

ॐ ह्रीं भाद्रपदशुक्लषष्टया गर्भमंगल प्राप्ताय श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्य नि ।

द्रव्य पर अणुमात्र भी तेरा नहीं इसलिए पर द्रव्य से मत राग कर।
द्रव्य तेरा शुद्ध चेतन आत्म है इसलिए निज आत्म से अनुराग राग कर॥

वाराणसी नगर में राज सुप्रतिष्ठ गृह जन्म हुआ।
ऐरावत पर सुरपति प्रभु को गोदी में ले धन्य हुआ॥
लोचन किए सहस्त्र किन्तु फिर भी लखतृप्त न हो पाया।
ज्येष्ठशुक्ल द्वादश को जन्मोत्सव सुपार्श्व प्रभु का भाया॥२॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठशुक्लद्वादश्या जन्ममंगल प्राप्ताय श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि।

ज्येष्ठ शुक्ल द्वादश को भाई शुद्ध भावनाएं द्वादश।
उमड पडा वैराग्य हृदय में निज भावों में आया रस॥
श्रीष वृक्ष के तले त्यागमय तप कल्याण हुआ भारी।
श्री सुपार्श्व ने पंच महाव्रत धारण कर दीक्षा धारी॥३॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठशुक्लद्वादश्या तपोमंगल प्राप्ताय श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि।

फागुन कृष्ण सप्तमी को प्रभु ज्ञान सूर्य का हुआ प्रकाश।
केवलज्ञान लक्ष्मी पाई घाति कर्म का किया विनाश॥
पूरा लोकालोक ज्ञान में युगपत दर्पणवत झलके।
प्रभु सुपार्श्व सर्वज्ञ हुए तुम वीतराग पथ पर चलके॥४॥

ॐ ह्रीं फल्गुनकृष्णसप्तम्या ज्ञान मंगलप्राप्ताय श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि।

फागुन कृष्णा षष्टी के दिन हुए अयोगी हे भगवान।
एक समय में सिद्ध शिला पर पहुचे पा सिद्धत्व महान॥
गिरि सम्मेद प्रभास कूट देवो ने किया मोक्ष कल्याण।
जयसुपार्श्व जिनराज सिद्धपद पाया स्वामीधर निजध्यान॥५॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्ण षष्ठया मोक्षमंगल प्राप्ताय श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि।

जयमाला

जय सुपार्श्व सप्तम तीर्थंकर सुगुण विभूति सर्वदर्शी।
स्वस्तिकचिन्ह विभूषित चरणाम्बुज अनुपम हृदयस्पर्शी॥१॥
निज स्वरूप अवलबन लेकर हुए ज्ञान भावो मे लीन।
भीषण उपसर्गो को जयकर प्रभु अरहन्त हुए स्वाधीन॥२॥
पंचानवे नाथगणधर थे श्री "बलदत्त" प्रमुख गणधर।
मुख्य आर्यिका "मीनार्या" थी श्रोतासुरनर ऋषिमुनिवर॥३॥
केवलज्ञान प्राप्त कर तुमने आत्मतत्व का किया प्रचार।
विषय कषायों के कारण जीवों को बढता है संसार॥४॥

तीव्र राग को दुखमय समझा मदराग को सुखमय जाना।
पाप पुण्य दोनो बधन है वीतराग का कथन न माना ।।

पंच विषय स्पर्शन रसना घ्राण चक्षु कर्णेन्द्रिय के।
इनमे लीन नहीं पा सकता सुख आनन्द अतीन्द्रिय के ।।५।।
क्रोधमान माया लोभादिक चार कषाय मूल जानों।
तीव्र मंद के भेद जानकर इनकी गति को पहचानों ।।६।।
अनंतानुबंधी की चउ, अप्रत्यख्यानावरणी चार।
प्रत्यख्यानावरणी चारों और संज्वलन की है चार ।।७।।
हास्य, अरति, रति, शोक जुगुप्सा, भय, स्त्री, पुरुष, नपुंसकवेद।
नो कषाय मिल हो जाते पच्चीस कषाय बंध के भेद ।।८।।
सम्यकदर्शन होते ही इनका अभाव होता प्रारम्भ।
धीरे धीरे क्रमक्रम से इनका मिट जाता है सब दंभ ।।९।।
चौथे गुणस्थान मे जाती अनन्तानुबन्धी की चार।
पंचम गुणस्थान मे जाती अप्रत्याखानावरणी चार ।।१०।।
षष्टम गुणस्थान में जाती प्रत्याख्यानावरणी चार।
द्वादश गुणस्थान में जाती शेष संज्वलन की भी चार ।।११।।
नो कषाय भी इनके क्षय से हो जाती हैं स्वयं विनाश।
सर्व कषायों के अभाव से होता निर्मल आत्म प्रकाश ।।१२।।
निष्कषाय जो हो जाता वह वीतराग जिन पद पाता।
पूर्ण अनन्त अमूर्त्त अतीन्द्रिय अविनाशी पद प्रकटाता ।।१३।।
पूजचरण सुपार्श्वनाथ प्रभु नित्य आपका ध्यान करूँ।
विषय कषाय अभाव करूँ मै मुक्ति वधू अविराम वरूँ ।।१४।।

ॐ ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं नि स्वाहा।

श्री सुपार्श्व के युगल पद भाव सहित उरधार।
मन वच तन जो पूजते वे होते भवपार ।।

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नम।

卐

श्री चन्द्रप्रभ जिनपूजन

महासेन नृपनद चंद्र चद्रनाथ जिनवर स्वामी।
मात लक्षमणा के प्रियनन्दन जगउद्धारक प्रभु नामी ।।

निज मे निज पुरुषार्थ करु तो भव बधन सब कट जाएगे।
निज स्वभाव मे लीन रहू तो कर्मो के दुख मिट जायेगे ।।

जिन आत्मानुभूति से पाई मोक्ष लक्ष्मी सुखधामी।
वीतराग सर्वज्ञ हितैषी करूँणामय शिव पुरगामी ।।

ॐ ह्रीं श्री चद्रप्रभ जिनेन्द्र अत्र अवतर अवतर सवौषट्, ॐ ह्रीं श्री चद्रप्रभ जिनेन्द्र अत्र तिष्ट तिष्ठ ठ ठ , ॐ ह्रीं श्री चद्रप्रभ जिनेन्द्र अत्रमम् सन्निहितो भव भव वषट्।

तन की प्यास बुझाने वाला यह निर्मल जल लाया हूँ।
आत्मज्ञान की प्यास बुझाने प्रभु चरणों मे आया हूँ ।।
चद्र जिनेश्वर चंद्र नाथ चन्द्रेश्वर चन्दा प्रभु स्वामी।
राग द्वेष परिणति के नाशक मगलमय अन्तर्यामी ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री चद्रप्रभ जिनेन्द्र ाय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल नि ।

तन का ताप मिटाने वाला शीतल चदन लाया हूँ।
राग आग की दाह मिटाने प्रभु चरणों मे आया हूँ ।।चन्द्र.।।२।।

ॐ ही श्री चद्रप्रभ जिनेन्द्राय ससारताप विनाशनाय चदन नि ।

परम शुद्ध अक्षय पद पाने उज्जवल अक्षय लाया हूँ।
भव समुद्र से पार उतरने प्रभु चरणो मे आया हूँ ।।चन्द्र ।।३।।

ॐ ह्रीं श्री चद्रप्रभ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्ताय अक्षत नि ।

कामबाण से घायल होकर पुष्प मनोहर लाया हूँ।
महाशील शीलेश्वर बनने प्रभुचरणो मे आया हूँ ।।चन्द्र.।।४।।

ॐ ही श्री चद्रप्रभ जिनेन्द्रायकामबाण विध्वसनाय पुष्प नि ।

षट् द्रव्यो से भूख न मिट पाई तो प्रभु चरूँ लाया हूँ।
आत्म तत्व की भूख मिटाने प्रभु चरणो मे आया हूँ ।।चन्द्र ।।५।।

ॐ ह्रीं श्री चद्रप्रभ जिनेन्द्र ाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि ।

अन्धकार तप हरने वाला दीप प्रभामय लाया हूँ।
आत्म दीप की ज्योति जलाने प्रभु चरणों मे आया हूँ ।।चन्द्र. ।।६।।

ॐ ह्रीं श्री चद्रप्रभ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि ।

पर परिणति का धुआ उडाने धूप सुगन्धित लाया हूँ।
अष्ट कर्मअरि पर जय पाने प्रभु चरणो मे आया हूँ ।।चन्द्र.।।७।।

ॐ ही श्री चद्रप्रभ जिनेन्द्र ाय अष्टकर्म विध्वसनाय धूप नि ।

पर विभाव फल से पीडित होकर नूतन फल लाया हूँ।
अपना सिद्ध स्वपद पाने को प्रभु चरणों में आया हूँ॥
चंद्र जिनेश्वर चंद्र नाथ चन्द्रेश्वर चन्दा प्रभु स्वामी।
राग द्वेष परिणति के नाशक मंगलमय अन्तर्यामी॥८॥

ॐ ह्रीं श्री चद्रप्रभ जिनेन्द्र ाय महामोक्ष फल प्राप्ताय फल नि स्वाहा।

अष्ट द्रव्य का अर्घ मनोरम हर्षित होकर लाया हूँ।
चिदानन्द चिन्मय पद पाने प्रभु चरणों में आया हूँ॥चन्द्र.॥९॥

ॐ ह्रीं श्री चद्रप्रभ जिनेन्द्र ाय अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं नि।

श्री पंचकल्याणक

चैत्र कृष्ण पचमी मात उर वैजयंत तज कर आए।
सोलह स्वप्न हुए माता को रत्न सुरों ने बरसाये॥
मात लक्ष्मणा स्वप्न फलो को जान हृदय मे हर्षाये।
हुआ गर्भ कल्याण महोत्सव घर घर में आनन्द छाये॥१॥

ॐ ह्रीं श्री चैत्रकृष्णपचम्या गर्भमगल प्राप्ताय श्री चद्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि।

पौष कृष्ण एकादशमी को चन्द्रनाथ का जन्म हुआ।
मेरु सुदर्शन पर मंगल उत्सव कर सुरपति धन्य हुआ॥
चन्द्रपुरी में बजी बधाई तीन लोक में सुख छाया।
महासेन राजा के गृह में देवों ने मंगल गाया॥२॥

ॐ ह्रीं श्री पौषकृष्णएकादश्या जन्ममगल प्राप्ताय श्री चद्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि।

पौष कृष्ण एकादशी को राज्य आदि सब छोड दिया।
यह संसार असार जानकर तप से नाता जोड दिया॥
पंच महाव्रत धारण करके वस्त्राभूषण त्याग दिये।
तप कल्याण मनाया देवों ने जिनवर अनुराग लिए॥३॥

ॐ ह्रीं श्री पौषकृष्ण एकादश्या तप कल्याण प्राप्ताय श्री चद्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि।

तीन मास छद्मस्थ रहे प्रभु उग्र तपस्या मे हो लीन।
प्रतिमा योग धार चदा प्रभु शुक्ल ध्यान में हुए स्वलीन॥
ध्यान अग्नि से त्रेसठ कर्म प्रकृतियो का बल नाशकिया।
फाल्गुन कृष्ण सप्तमी के दिन केवलज्ञान प्रकाश लिया॥४॥

जग मे नहीं किसी का कोई जग मतलब का मीत है।
भीतर तो है मायाचारी ऊपर झूठी प्रीत है ॥

ॐ ह्रीं श्री फाल्गुन कृष्णसप्तम्या गर्भमगल प्राप्ताय श्री चद्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

शेष प्रकृति पिच्चासी का भी अन्त समय अवसान किया।
फाल्गुन शुक्ल सप्तमी के दिन प्रभु ने पद निर्वाण लिया॥
ललितकूट सम्मेदशिखर से चन्द्रा प्रभु जिन मुक्त हुए।
ऊर्ध्व गमन कर सिद्ध लोक में मुक्ति रमा से युक्त हुए ॥५॥

ॐ ह्रीं श्री फाल्गुनशुक्ल सप्तम्या मोक्षमगल प्राप्ताय श्री चद्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

जयमाला

चन्द्र चिन्ह चित्रित चरण चन्द्रनाथ चित धार।
चिन्तामणि श्री चन्द्रप्रभ चन्द्रामृत दातार ॥१॥

चन्द्रपुरी के न्यायवान श्री महासेन राजा बलवान।
देवि लक्ष्मणा रानी उर से जन्मे चन्द्रनाथ भगवान ॥२॥
इन्द्र शची सुर किन्नर यक्ष सभी ने गाये मंगलगान।
तीर्थकर का जन्म जानकर धरती मे भी आए प्राण ॥३॥
बडे हुए प्रभु राजकाज में न्याय पूर्वक लीन हुए।
जग के भौतिक भोग भोगते सिंहासन आसीन हुए ॥४॥
इकदिन नभ में बिजली चमकी, नष्ट हुई तो किया विचार।
नाशवान पर्याय जान छाया तत्क्षण वैराग्य अपार ॥५॥
वन सर्वार्थ नागतरु नीचे परिजन परिकर धन सब त्याग।
पच मुष्टि से केश लोंचकर किया महाव्रत से अनुराग ॥६॥
हुए तपस्या लीन आत्मा का ही प्रतिफल करते ध्यान।
शाश्वत निजस्वरूप आश्रय ले पाया तुमने केवलज्ञान ॥७॥
थे तिरानवे गणधर जिनमे प्रमुख दत्तस्वामी ऋषिवर।
मुख्य आर्यिका वरुणा, श्रोता दानवीर्य आदिक सुरनर ॥८॥
समवशरण मे तुमने प्रभुवर वस्तु तत्व उपदेश दिया।
उपादेय है एक आत्मा यह अनुपम सन्देश दिया ॥९॥
ज्ञाता दृष्टा बने जीव तो राग-द्वेष मिट जाता है।
जो निजात्मा में रहता है वही परम पद पाता है ॥१०॥

एक देश संयम का धारी कहलाता है देशव्रती।
पूर्णदेश संयम का धारी कहलाता है महाव्रती ॥

हो अयोग केवली आपने हे स्वामी पाया निर्वाण।
अर्धचन्द्र सम सिद्धशिला पर पहुँचे चन्द्रा प्रभु भगवान ॥११॥
अर्धचन्द्र शोभित चरणों में अष्टम तीर्थंकर स्वामी।
जन्म मरण का चक्र मिटाने आया हूँ अन्तर्यामी ॥१२॥
ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं नि।

चन्दा प्रभु के पद कमल भाव सहित उर धार।
मन वच तन जो पूजते वे होते भव पार ॥

इत्याशीर्वाद

जाप्यमंत्र - ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय नमः।

卐

श्री पुष्पदन्त जिनपूजन

जय जय पुष्पदंत पुरुषोत्तम परम पवित्र पुनीत प्रधान।
नवम तीर्थंकर हे स्वामी सुविधिनाथ सर्वज्ञ महान ॥
अनुपम महिमावत मुक्ति के कंत पतितपावन भगवान।
पूर्ण प्रतिष्ठित शाश्वत शिवमय परमोत्तम अनंत गुणवान ॥
सिद्धवधू से परिणय करके प्राप्त किया सिद्धो का धाम।
नित्य निरन्जन भवभय भंजन भाव पूर्वक तुम्हे प्रणाम ॥
ॐ ह्रीं श्री पुष्पदंत जिनेन्द्र अत्र अवतर अवतर संवौषट्, ॐ ह्रीं श्री पुष्पदंत जिनेन्द्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, ॐ ह्रीं श्री पुष्पदंत जिनेन्द्रअत्रमम सन्निहितो भव भव वषट्।

निज स्वभावमय सलिल नीर की धारा अन्तर में लाऊँ।
जन्म जरा अघ दोषनाशकर अविनश्वर पद को पाऊँ ॥
परम ध्यानरत पुष्पदंत प्रभुसी पवित्रता उर लाऊँ।
चिदानन्द चैतन्य शुद्ध परिपूर्ण ज्ञान रवि प्रगटाऊँ ॥१॥
ॐ ह्रीं श्री पुष्पदंत जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं नि।
निज स्वभावमय शीतलचंदन निज अंतस्तल मे लाऊँ।
भव आताप दोष को हरकर अविनश्वर पद को पाऊँ ॥परम.॥२॥
ॐ ह्रीं श्री पुष्पदंत जिनेन्द्राय संसारताप विनाशनाय चन्दनं नि।

जिन स्वभावमय अक्षत तंदुल निज अभेद उर में लाऊँ ।
अमल अखड अतुल अविकारी अविनश्वर पद को पाऊँ ॥परम.॥३॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्पदत जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्ताय अक्षत नि ।

निजस्वभाव मय पुष्प सुवासित निज अन्तर मन में लाऊँ ।
काम कलंक कालिमा हरकर अविनश्वर पद को पाऊँ ॥परम.॥४॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्पदत जिनेन्द्राय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि ।

निज स्वभावमय सवर के चरु निज गागर मे भर लाऊँ ।
पुण्य फलों की भूख नाशकर अविनश्वर पद को पाऊँ ॥परम.॥५॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्पदत जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि ।

निज स्वभावमय ज्ञानदीप प्रज्ज्वलित करूँ उर में लाऊँ ।
मोह तिमिर अज्ञान नाशकर अविनश्वर पद को पाऊँ ॥परम.॥६॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्पदत जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि ।

निज स्वभावमय धूप निर्जरातपमय अन्तर मे लाऊँ ।
अरिरज रहस विहीन बनूँ मै अविनश्वर पद को पाऊँ ॥परम.॥७॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्पदत जिनेन्द्राय अष्टकर्म विध्वसनाय धूप नि ।

निज स्वभावमय शुक्लध्यान फल परमोत्तम उर में लाऊँ ।
शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध मोक्ष पा अविनश्वर पद को पाऊँ ॥परम.॥८॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्पदत जिनेन्द्राय महामोक्षफल प्राप्ताय फल नि ।

निज स्वभावमय शुक्लध्यानफल परमोत्तम उर में लाऊँ ।
निश्चय रत्नत्रय की महिमा से अनर्घ पद को पाऊँ ॥परम.॥९॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्पदत जिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्ताय अर्घ्य नि ।

श्री पंचकल्याणक

फागुन कृष्णा नवमी को प्रभु आरण स्वर्ग त्याग आए।
रानी जयरामा उर मे अवतार लिया सब हर्षाए ॥
पन्द्रहमास रत्न वर्षाकर धनपति मन मे मुसकाए ।
पुष्पदंत के गर्भोत्सव पर सुरांगना मगल गाए ॥१॥

ॐ ह्रीं फागुनकृष्णनवम्या गर्भमगलप्राप्ताय पुष्पदत जिनेन्द्राय अर्घ्य नि ।

मगसिर शुक्ला एकम को काकदीपुर अति धन्य हुआ ।
नृप सुग्रीवराज प्रागण मे सुख का ही साम्राज्य हुआ ॥

जड़ से प्रीत न की होती तो चेतन अगणित दुख न उठाता।
भव पीड़ा कब की कट जाती मुक्ति वधू मिलती हर्षाता ।।

मेरु सुदर्शन पांडुकवन में क्षीरोदधि से न्हवन हुआ।
देवो द्वारा पुष्पदंत का दिव्य जन्म कल्याण हुआ ।।२।।
ॐ ह्रीं मगसिर शुक्ला प्रतिपदादिने जन्ममगल प्राप्ताय पुष्पदत जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

मगसिर शुक्ला एकम के दिन अन्तर में वैराग्य हुआ।
मेघविलय लख वैभव त्यागा वन की ओर प्रयाण किया ।।
पंच महाव्रत धारे लौकांतिक देवो का गान हुआ।
जय जय पुष्पदत परमेश्वर अनुपम तप कल्याण हुआ ।।३।।
ॐ ह्रीं मगसिर शुक्लप्रतिपदादिने तपोमगल प्राप्ताय पुष्पदत जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

कार्तिक शुक्ल द्वितीया के दिन तुमने पाया केवलज्ञान।
चार घातिया, त्रेसठ कर्म प्रकृतियो का करके अवसान ।।
समवशरण की रचना करके हुआ इन्द्र को हर्ष महान।
खिरी दिव्य ध्वनि जनकल्याणी जय जय पुष्पदंत भगवान ।।४।।
ॐ ह्रीं कार्तिकशुक्लद्वितियाया ज्ञानमगल प्राप्ताय पुष्पदत जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

भादो शुक्ल अष्टमी के दिन सम्मेदाचल पर जयगान।
शेष प्रकृति पच्चासी हो हर प्रभु कूट लिया निर्वाण ।।
सिद्धशिला लोकाग्रशिखर पर आप विराजे हे गुणधाम।
महामोक्ष मगल के स्वामी पुष्पदंत को करूँ प्रणाम ।।५।।
ॐ ह्रीं भाद्रशुक्लअष्टम्या मोक्षमगल प्राप्ताय पुष्पदत जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

जयमाला

जयजय पुष्पदत परमेश्वर परम धर्म सारथी प्रमाण।
पुण्या पुण्य निरोधक पुष्कल प्रथमोंकार रूप विभुवान ।।१।।
निजस्वभाव साधन से तुमने पर विभाव का हरण किया।
शुद्ध बुद्ध चैतन्य स्वपद भज महामोक्ष का वरण किया ।।२।।
अट्ठासी गणधर थे प्रभु के प्रमुख श्री विदर्भ गणधर।
प्रमुख आर्यिका श्री घोषा थी समवशरण पवित्र मनहर ।।३।।

निज स्वभाव चेतन स्वरुप मय।
पर विभाव अज्ञान रुपमय॥

तुमने चौदह गुणस्थान गुणवृद्धि रूप हैं बतलाए।
जीवों के परिणामों की इनसे पहचान सहज आए॥४॥
पहिला है मिथ्यात्व दूसरा सासादन कहलाता है।
मिश्र तीसरा चौथा अविरत सम्यकदृष्टि कहाता है॥५॥
पंचम देश विरत छठवाँ सुप्रमत्त विरत कहलाता है।
सप्तम अप्रमत्त है अष्टम अपूर्व करण कहलाता है॥६॥
नवमा है अनिवृत्ति कारण दशम सूक्षम सांपराय होता।
ग्यारहवां उपशांतमोह बारहवां क्षीणमोह होता॥७॥
तेरहवाँ सयोग चौदहवाँ है अयोग केवलि गुणथान।
निज परिणामों से श्रेणी चढ जीव स्वयं पाता निर्वाण॥८॥
दर्श मोह के उदय आत्म परिणाम सदा मिथ्या होता।
है अत्तत्व श्रद्धान जहाँ वह पहिला गुणस्थान होता॥९॥
दूजा हैं मिथ्यात्व और सम्यक्त्व अपेक्षा अनुदय रुप।
समकित नहीं मिथ्यात्व उदय भी नहीं यही सांसादन रूप॥१०॥
तीजा सम्यक् मिथ्या दर्शन मोहोदय से होता है।
अनंतानुबंधी कषाय-परिणाम जीव का होता है॥११॥
चौथादर्शमोह के क्षय, उपशम, क्षमोपशम से होता।
सम्यक्दर्शन गुण का इसमें प्रादुर्भाव सहज होता॥१२॥
चरित मोह के क्षयोपशम से पंचम मे दशवां तक है।
सम्यक्चारित गुण को क्रम से वृद्धि रूप छह थानक है॥१३॥
चरितमोह के उपशम से ग्यारहवा गुणस्थान होता।
सूक्ष्म लोभ सदभाव जहाँ अन्तमुहुर्त रहना होता॥१४॥
मोहनीय के उदय निमित्त से जिय निश्चित गिर जाता।
यदि परिणाम संभाल न पाये तो पहिले तक आ जाता॥१५॥
चरित मोह के क्षय से तो बारहवां क्षीणमोह होता।
पूर्ण अभाव कषायों का हो, यथाख्यातचारित होता॥१६॥
केवलज्ञान प्राप्त कर तेरहवा सयोग केवलि होता।
सम्यक्ज्ञान प्राप्त हो जाता चारित गुण न पूर्ण होता॥१७॥
योगो के अभाव से चौदहवाँ अयोग केवलि होता।
हो जाता चारित्र पूर्ण रत्नत्रय शुद्ध मोक्ष होता॥१८॥

निज स्वभाव शिव सुख का दाता।
पर विभाव निज सुख का घाता ॥

क्षपक श्रेणि चढ अष्टम से जब चौदहवें तक जाता है।
गुणस्थान से हो अतीत निज सिद्ध स्वपद पा जाता है॥१९॥
मोहफंद में पडकर मैने पर परणति में रमण किया।
परद्रव्यों की चिता में रह चहुंगति मे परिभ्रमण किया ॥२०॥
निजस्वरूप का ध्यान न आया कभी न निजस्मरण किया।
चिदानंद चिद्रूप आत्मा का अब तक विस्मरण किया ॥२१॥
निज कल्याण भावना से प्रभु आज आपका शरण लिया।
बिना आपकी शरण अनंतानंत भवों में भ्रमण किया ॥२२॥
निजस्वरूप की ओर निहारूँ शुभ अरू अशुभ विकार तजूँ।
पद पदार्थ से मैं ममत्व तज परम शुद्ध चिद्रूप भजूँ ॥२३॥
ॐ ह्रीं पुष्पदत जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्य नि स्वाहा।

मगर चिन्ह शोभित चरण पुष्पदत उरधार।
मन वचतन जो पूजते वे होते भवपार ॥

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्रीं श्री पुष्पदत जिनेन्द्राय नम ।

卐

श्री शीतलनाथ जिनपूजन

जय प्रभु शीतलनाथ शील के सागर शील सिधु शीलेश।
कर्मजाल के शीतलकर्ता केवलज्ञानी महा महेश ॥
त्रैकालिक ज्ञायक स्वभाव ध्रुव के आश्रय से हुए जिनेश।
मुझको भी निज समशीतल करदो हे विनय यही परमेश ॥
ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्र अत्र अवतर-अवतर सवौषट्, ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ , ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्र अत्र मम् सन्निहितो भव-भव वषट्।

निर्मल उज्जवल जलधार चरणों में सोहे।
यह जन्म रोग मिट जाय निज मे मन मोहे ॥
हे शीतलनाथ जिनेश शीतलता धारी।
हे शील सिन्धु शीलेश सब सकट हारी ॥१॥
ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल नि।

चन्दन सी सरस सुगन्ध मुझमें भी आये।
भव ताप दूर हो जाय शीतलता छाये ।।
हे शीतलनाथ जिनेश शीतलता धारी।
हे शील सिन्धु शीलेश सब सकट हारी ।।२।।
ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय ससारताप विनाशनाय चदन नि ।
निज अक्षय पद का भान करने आया हूँ।
हर्षित हो शुभ्र अखण्ड तन्दुल लाया हूँ ।।हे शीतल नाथ ।।३।।
ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षत नि ।
कन्दर्प काम के पुष्प अब मै दूर करूँ।
पर परिणति का व्यापार प्रभु चकचूर करूँ ।।हे शीतल नाथ।।४।।
ॐ ही श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि ।
चरु सेवन रुचि दुखकर भव पीडा दायक।
है क्षुधा रहित निज रुप सुखमय शिवनायक ।।हे शीतलनाथ ।।५।।
ॐ ही श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि ।
अज्ञान तिमिर घनघोर उर मे छाया है।
रवि सम्यकज्ञान प्रकाश मुझको भाया है ।।हे शीतलनाथ ।।६।।
ॐ ही श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि ।
चारो कषायो का संघ हे प्रभु हट जाये।
हो कर्म चक्र का ध्वस भव दुख मिट जाये ।।हे शीतल नाथ ।।७।।
ॐ ही श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म विध्वसनाय धूप नि ।
निर्वाण महाफल हेतु चरणों में आया।
दुख रूप राग को जान अब निजगुण गाया ।। हे शीतल नाथ ।।८।।
ॐ ही श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय महामोक्षफल प्राप्ताय नि ।
आत्मानुभूति की प्रीति निज में है जागी।
पाऊ अनर्घ पद नाथ मिथ्या मति भागी ।।हे शीतल नाथ ।।९।।
ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्ताय अर्घ्य नि ।

रागद्वेष कर्मो का रस है यह तो तेरा नहीं स्वरूप।
ज्ञान मात्र शुद्धोपयोग ही एक मात्र है मेरा रुप ।।

श्री पंचकल्याणक

चैत्र कृष्ण अष्टमी स्वर्ग अच्युत को तजकर तुम आये।
दिक्कुमारियों ने हर्षित हो मात सुनन्दा गुण गाये ।।
इन्द्र आज्ञा से कुबेर नगरी रचना कर हर्षाये।
शीतल जिन के गर्भोत्सव पर रत्न सुरों ने बरसाये ।।१।।

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णअष्टया गर्भकल्याणप्राप्ताय श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

भद्दिलपुर में राजा दृढरथ के गृह तुमने जन्म लिया।
माघ कृष्ण द्वादशी इन्द्रसुरो ने निज जीवन धन्य किया ।।
गिरिसुमेरु पर पांडुकवन में क्षीरोदधि से नव्हनकिया।
एक सहस्त्र अष्ट कलशों से हर्षित हो अभिषेक किया ।।२।।

ॐ ह्री माघकृष्ण द्वादश्या जन्ममगल प्राप्ताय श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

शरद् मेघ परिवर्तन लख कर उर छाया वैराग्य महान।
लौकातिक देवों ने आकर किया आपका तप कल्याण ।।
सकल परिगृह त्याग तपस्या करने वन को किया प्रयाँण।
माघ कृष्ण द्वादशी सहेतुक वन मे गूंजा जय जय गान ।।३।।

ॐ ह्रीं माघकृष्ण द्वादश्या तपकल्याणक प्राप्ताय श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

पौष कृष्ण की चतुर्दशी को पाया स्वामी केवलज्ञान।
समवशरण की रचना कर देवो ने गाये मंगल गान ।।
सकल विश्व को वस्तु तत्व उपदेश आपने दिया महान।
भद्दिलपुर में गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान हुए चारों कल्याण ।।४।।

ॐ ह्रीं पौषकृष्णचतुर्दश्या ज्ञानकल्याणक प्राप्ताय श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

आश्विन शुक्ल अष्टमी को हर अष्ट कर्म पायानिर्वाण।
विद्युत कूट श्री सम्मेदशिखर पर हुआ मोक्ष कल्याण ।।
शेष प्रकृति पच्चासी हरकर कर्म अघाति अभाव किया।
निज स्वभाव के साधन द्वारामोक्ष स्वरूप स्वभावलिया ।।५।।

ॐ ह्रीं अश्विन शुक्लअष्टम्या मोक्षकल्याण प्राप्ताय श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

जब तक दृष्टि निमित्तो पर है भव दुख कभी न जाएगा।
उपादान जाग्रत होते ही सब सकट टल जाएगा।।

जयमाला

जयजय शीतलनाथ शीलमय पुंज शीतल सागर।
शुद्ध रूप निज शुचिमय शीतलशील निकेतन गुण आगर।।१।।
दशम तीर्थंकर हे जिनवर परम पूज्य शीतलस्वामी।
तुम समान मै भी बन जाऊँ विनय सुनो त्रिभुवन नामी।।२।।
साम्य भाव के द्वारा तुमने निज स्वरूप का वरण किया।
पंच महाव्रत धारण कर प्रभु पर विभाव का हरण किया।।३।।
पुरी अरिष्ट पुनर्वसु नृप ने विधिपूर्व आहार दिया।
प्रभु कर में पय धारा दे भव सिधु सेतु निर्माण किया।।४।।
तीन वर्ष छद्मस्थ मौन रह आत्म ध्यान मे लीन हुए।
चार घातिया का विनाशकर केवलज्ञान प्रवीण हुए।।५।।
ज्ञानावरणी दर्शनावरणी अन्तराय अरु मोह रहित।
दोष अठारह रहित हुए तुम छयालीस गुण से मण्डित।।६।।
क्षुधा, तृषा, रति, खेद, स्वेद, अरु, जन्म जरा चिताविस्मय।
राग, द्वेष, मद, मोह, रोग, निन्द्रा, विषाद अरु मरण न भय।।७।।
शुद्ध , बुद्ध अरहन्त अवस्था पाई तुम सर्वज्ञ हुए।
देव अनन्त चतुष्टय प्रगटा निज मे निज मर्मज्ञ हुए।।८।।
इक्यासी गणधर थे प्रभु के प्रमुख कुन्थुज्ञानी गणधर।
मुख्य आर्यिका श्रेष्ठ धारिणी श्रोता थे नृप सीमधर।।९।।
तुम दर्शन करके हे स्वामी आज मुझे निज भान हुआ।
सिद्ध समान सदा पद मेरा अनुपम निर्मल ज्ञान हुआ।।१०।।
भक्ति भाव से पूजा करके यही कामना करता हूँ।
राग द्वेष परणति मिट जाये यही भावना करता हूँ।।११।।
निर्विकल्प आनन्द प्राप्ति की आज हृदय मे लगी लगन।
सम्यक् पूजन फल पाने को तुम चरणो मे हुआ मगन।।१२।।
निज चैतन्य सिह अब जागे मोह कर्म पर जय पाऊँ।
निज स्वरूप अवलम्बन द्वारा शाश्वत शीतलता पाऊँ।।१३।।

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं नि।

दुर्जय ज्ञान धनुर्धर चेतन जब सवर को अपनाता।
समरागण मे आए मत्त आश्रव पर यह जय पाता ।।

कल्पवृक्ष शोभित चरण शीतल निज उर धार।
मन वच तन जो पूजते वे होते भव पार ।।

इत्याशीर्वाद

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय नम ।

卐

श्री श्रेयांसनाथ जिनपूजन

श्रेष्ठ श्रेय सभव श्रुतात्मा श्रेष्ठसुमतिदाता श्रेयान।
श्रेयनाथ श्रेयस श्रुतिसागर श्रीमंत श्रीपति श्रीमान ।।
विपत्ति विदारक विपुलप्रभामय वीतरागविज्ञान निधान।
विश्वसूर्य विख्यात कीर्ति विभु जय श्रेयांसनाथ भगवान ।।
मैं श्रेयासनाथ चरणों की भाव सहित करता पूजन।
मन वच काय त्रियोग जीतकर हे प्रभु पाऊ मोक्षसदन ।।

ॐ ही श्री श्रेयासनाथ जिनेन्द्र अत्र अवतर-अवतर सवौषट्, ॐ ही श्री श्रेयासनाथ जिनेन्द्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ , ॐ ही श्री श्रेयासनाथ जिनेन्द्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

उत्तम निर्मल संवरमय निर्जरानीर प्रभु लाऊँ।
क्षायिक ज्ञान प्राप्त करने को अन्तरज्योति जगाऊँ ।।
श्री श्रेयासनाथ चरणो मे सविनय शीश झुकाऊँ।
क्षायिक लब्धि प्राप्त करने को निज का ध्यान लगाऊँ ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री श्रेयासनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल नि ।

पावन चदन संवरमय निर्जरा भाव के लाऊँ।
क्षायिक दर्शन पाने को प्रभु अंतर ज्योति जगाऊँ ।।श्री श्रेयास ।।२।।

ॐ ही श्री श्रेयासनाथ जिनेन्द्राय ससारताप विनाशनाय चदन नि ।

उज्जवल अक्षत सवरमय निर्जराभाव के लाऊँ।
क्षायिकदान प्राप्त करने को अतर ज्योति जगाऊँ ।।श्री श्रेयास ।।३।।

ॐ ह्रीं श्री श्रेयासनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्ताय अक्षत नि ।

पुष्प सुवासित सवरमय निर्जरा भाव के लाऊँ।
क्षायिक लाभ प्राप्त करने को अंतरज्योति जगाऊँ ।।श्री श्रेयास ।।४।।

ॐ ह्रीं श्री श्रेयासनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि ।

परम ब्रह्म हू परम ज्योतिमय परम प्रभामय पूर्ण स्वरूप।
परम ध्यानमय परम ज्ञानमय परम शातिमय परम अनूप ॥

शुद्ध विमल चरु सवरमय निर्जरा भाव के लाऊँ।
क्षायिक भोग प्राप्त करने को अन्तरज्योति जगाऊँ ॥
श्री श्रेयासनाथ चरणों में सविनय शीश झुकाऊँ।
क्षायिक लब्धि प्राप्त करने को निज का ध्यान लगाऊँ ॥५॥
ॐ ह्रीं श्री श्रेयासनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि।
दिव्य दीप निज संवरमय निर्जरा भाव का लाऊँ।
जिन क्षायिक उपयोग प्राप्ति हित अन्तर ज्योति जगाऊँ ॥श्री श्रेयास ॥६॥
ॐ ह्रीं श्री श्रेयासनाथ जिनेन्द्राय मोहाधकार विनाशनाय दीप नि।
धूप सुगन्धित सवरमय निर्जरा भाव की लाऊँ।
क्षायिक वीर्य प्राप्त करने को अन्तर ज्योति जगाऊँ ॥श्री श्रेयास॥७॥
ॐ ह्रीं श्री श्रेयासनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म विध्वसनाय धूप नि।
धर्ममयी फल सवरमय निर्जरा भाव के लाऊँ।
निज क्षायिक सम्यक्त्वप्राप्तिहित अन्तरज्योतिजगाऊँ ॥श्री श्रेयास॥८॥
ॐ ह्रीं श्री श्रेयासनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्ताय फल नि।
अर्घ अष्ट गुण संवर मय निर्जरा भाव के लाऊँ।
निजक्षायिक चारित्र प्राप्तिहित अतरज्योति जगाऊँ ॥श्री श्रेयांस॥९॥
ॐ ही श्री श्रेयासनाथ जिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्ताय अर्घ्य नि।

श्री पंचकल्याणक

ज्येष्ठ कृष्ण षष्ठी को तुमने पुष्पोत्तर से गमन किया।
माता विमला गर्भ पधारे देव लोक ने नमन किया ॥
सोलह स्वप्न सुफल को सुनकर प्रभु माता ने हर्ष किया।
जय श्रेयासनाथ कमलासन नही गर्भ स्पर्श किया ॥१॥
ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्ण षष्ठ् या गर्भमगल प्राप्ताय श्रेयासनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्य नि।
फागुन कृष्णा एकादशी सिहपुरी मे जन्म लिया।
राजा विष्णुनाथ गृह, सुर, सुरपति ने मनहरनृत्य किया ॥
पाडुक शिला विराजित करके क्षीरोदधि से नीर लिया।
एक सहस्त्र अष्ट कलशों से इन्द्रों ने अभिषेक किया ॥२॥
ॐ ह्रीं फाल्गुन कृष्णएकादश्या जन्ममगल प्राप्ताय श्रेयासनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्य नि।

समकित रुपी जलप्रवाह जब बहता है अभ्यतर मे।
कर्मधूल आवरण नहीं रहता है लेश मात्र उर मे ॥

फागुन कृष्णा एकादशी भोगो से मन दूर भगा।
राजपाट तज वन मे पहुचे विन्दुक तरु का भाग्य जगा।
नग्न दिगम्बर मुद्रा धर तप सयम से अनुराग जगा।
श्रेयांस तप कल्याणक देख लगा वैराग्य सगा ॥३॥
ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्ण एकादश्या तपोमगल प्राप्ताय श्रेयासनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि।
माघ कृष्ण की अम्मावस को पूर्ण ज्ञान का सूर्य उगा।
तीन लोक सर्व दर्शाता केवलज्ञान प्रकाश जगा ॥
दिव्यध्वनि से समवशरण मे जीवो का उपकार हुआ।
जयश्रेयास नाथ तीर्थकर दशदिशि जय जयकार हुआ ॥४॥
ॐ ह्रीं माघकृष्णअमावश्या केवलज्ञान प्राप्ताय श्रेयासनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि।
शुक्ल पूर्णिमा सावन की मन भावन अमर पवित्र हुई।
सकुलकूट श्री सम्मेदाचल की शिखर पवित्र हुई ॥
तुमसे प्रभु निर्वाण लक्ष्मी परिणय करके धन्य हुई।
प्रभु श्रेयांस मोक्ष मंगल से पावन धरा अनन्य हुई ॥५॥
ॐ ह्रीं श्रावण शुक्ल पूर्णिमाग्या मोक्षमगल प्राप्ताय श्रेयासनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि।

जयमाला

एकादशम तीर्थकर श्रेयांसनाथ को करूँ प्रणाम।
श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओ का उपदेश दिया अभिराम ॥१॥
गणधरदेव सतत्तर प्रभु के प्रमुख धर्मस्वामी गणधर।
मुख्य आर्यिका श्री चरणा श्रोता थे त्रिपृष्ठ नृपवर ॥२॥
हे प्रभु मै भी ग्यारह प्रतिमाए धारूँ ऐसा बल दो।
मोक्षमार्ग पर चलूँ निरन्तर निज स्वभाव का सबल दो ॥३॥
देह भोग ससार विरत हो अष्ट मूलगुण का पालन।
पहिली दर्शन प्रतिमा है धारण करना सम्यकदर्शन ॥४॥
धारूँ अणुव्रत पाँच तीन गुणव्रत धारूँ शिक्षाव्रत चार।
श्रावक के बारह व्रत धारण करना व्रत प्रतिमा है सार ॥५॥
सात प्रकार शुद्धता पूर्वक छह प्रकार का सामायिक।
तीन काल सामायिक प्रतिदिन तीजी प्रतिमा सामायिक ॥६॥

पर्व अष्टमी अरु चतुर्दशी को प्रोषध उपवास करे।
धर्म ध्यान में समय बितावें प्रोषधप्रतिमा हृदय धरें ।।७।।
दृष्टि जीव रक्षा की हो जिव्हा की लोलुपता न हो।
हरित वनस्पति जब अचित्त करलें, सचित्तत्याग शुभप्रतिमा हो ।।८।।
खाद्य, स्वाद अर लेय पेय चारों आहार रात्रि मे त्याग।
कृत कारित अनुमोदन से हो यह प्रतिमा निशिभोजनत्याग ।।९।।
सादा रहन सहन भोजन हो पूर्ण शील भय राग रहित।
सप्तम ब्रह्मचर्य प्रतिमा हो नव प्रकार की वाड सहित ।।१०।।
घर व्यापार आदि सबधी सब प्रकार आरम्भ तजे।
आत्म शुद्धि हो दयाभाव हो प्रतिमा आरम्भत्याग भजे ।।११।।
आकुलता का कारण गृह संपति परिग्रह सब त्यागे।
धार ''परिग्रह त्याग'' सुप्रतिमा हो विरक्त निज मे जागे ।।१२।।
गृह व्यापारिक किसी कार्य की अनुमति कभी नहीं दे हम।
अनुमति त्याग सुदशमी प्रतिमा उदासीन हो जग से हम ।।१३।।
ग्यारहवी उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा के हैं दो भेद प्रमुख।
खंड वस्त्र सह क्षुल्लक होते एक लगोटी से ऐलक ।।१४।।
उद्दिष्टी भोजन के त्यागी विधि पूर्वक भोजन करते।
एक कमंडुल एक पिछी रख वृत्ति गोचरी को धरते ।।१५।।
इनके पालन करने वाले सच्चे श्रावक श्रेष्ठ व्रती।
एक देशव्रत के धारी ये पचम गुणस्थान वर्ती ।।१६।।
जब इन ग्यारह प्रतिमाओ का पालन होता निरतिचार।
पूर्ण सकल चारित्र ग्रहण कर करते मुनिव्रत अगीकार ।।१७।।
दृढता आए श्रेणी चढकर शुक्ल ध्यानमय ध्यान गहे।
त्रेसठ प्रकृति विनाश कर्म की अनुपम केवलज्ञान लहे ।।१८।।
जो इस पथ पर दृढ हो चलता पा जाता है मोक्ष महान।
जो विभाव में अटका वह शिव पद से भटकामूढ अजान ।।

ॐ ह्रीं श्री श्रेयासनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं नि स्वाहा।

गगन मण्डल मे उछलाऊ।
तीन लोक के तीर्थ क्षेत्र वदन करआऊ।।

शोभित गेंडा चिन्ह चरण में प्रभु श्रेयांसनाथ उरधार।
मन वच तन जो भक्तिभाव से पूजें वे होते भवपार।।

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्रीं श्री श्रेयासनाथ जिनेन्द्राय नम।

卐

श्री वासुपूज्य नाथ जिन पूजन

जय श्री वासुपूज्य तीर्थंकर सुर नर मुनि पूजित जिनदेव।
ध्रुव स्वभावनिज का अवलंबन लेकर सिद्ध हुए स्वयमेव।।
घाति अघाति कर्म सब नाशे तीर्थंकर द्वादशम् सुदेव।
पूजन करता हूँ अनादि की मेटो प्रभु मिथ्यात्व कुटेव।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यदेव जिनेन्द्र अत्र अवतर अवतर सवौषट्। ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यदेव जिनेन्द्र अत्र तिष्ठ ठ ठ। ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यदेव जिनेन्द्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

जल से तन बार-बार धोया पर शुचिता कभी नही आई।
इस हाड-मास चर्ममदेह का जन्म-मरण अति दुखदाई।।
त्रिभुवन पति वासुपूज्य स्वामी प्रभु मेरी भव बाधा हरलो।
चारों गतियो के सकट हर हे प्रभु मुझको निज सम करलो।।१।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल नि।

गुण शीतलता पाने को मै चन्दन चर्चित करता आया।
भव चक्र एक भी घटा नहीं संताप न कुछ कम हो पाया।।त्रिभु.।।२।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय ससारताप विनाशनाय चदन नि।

मुक्ता सम उज्ज्वल तदुल से नित देह पुष्ट करता आया।
तन की जर्जरता रुकी नही भवकष्ट व्यर्थ भरता आया।।त्रिभु.।।३।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्ताय अक्षत नि।

पुष्पो की सुरभि सुहाई प्रभु पर निज की सुरभि नहीं भाई।
कंदर्प दर्प की चिरपीडा अबतक न शमन प्रभु हो पाई।।त्रिभु.।।४।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि।

षट् रस मय विविध विविध व्यजन जी भर-कर कर मैंने खाये।
पर भूख तृप्त न हो पाई दुख क्षुधा रोग के नित पाये।।त्रिभु.।।५।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि।

कर्म जनित सुख के समूह का जो भी करता है परिहार।
वही भव्य निष्कर्म अवस्था को पाकर होता भव पार ।।

दीपक नित ही प्रज्ञवलित किये अन्तरतम अब तक मिटा नही।
मोहान्धकार भी गया नही अज्ञान तिमिर भी हटा नहीं ।।
त्रिभुवन पति वासुपूज्य स्वामी प्रभु मेरी भव बाधा हरलो।
चारो गतियों के सकट हर हे प्रभु मुझको निज सम करलो ।।६।।
ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय मोहाधकार विनाशनाय दीप नि।
शुभ अशुभ कर्म बन्धन भाया सवर का तत्व कभी न मिला।
निर्जरित कर्म कैसे हो जब दुखमय आश्रव का द्वारखुला ।।त्रिभु ।।७।।
ॐ ह्री श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय अष्टकर्म विध्वसनाय धूप नि।
भौतिक सुख की इच्छाओ का मैंने अब तक सम्मान किया।
निर्वाण मुक्ति फलपाने को मैने न कभी निज ध्यान किया ।।त्रिभु ।।८।।
ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय महामोक्षफल प्राप्ताय फल नि।
जब तक अनर्घ पद मिले नही तब तक मै अर्घ चढाऊँगा।
निजपद मिलते ही हे स्वामी फिर कभी नहीं मै आऊँगा ।।त्रिभु ९।।
ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्ताय अर्घ्य नि।

श्री पंचकल्याणक

त्यागा महा शुक्र का वैभव, मॉ विजया उर मे आये।
शुभ अषाढ कृष्ण षष्टी को देवों ने मगल गाये ।।
चम्पापुर नगरी की कर रचना, नव बारह योजन विस्तृत।
वासुपूज्य के गर्भोत्सव पर हुए नगरवासी हर्षित ।।१।।
ॐ ह्रीं श्री अषाढकृष्णषष्ठ्या गर्भमगलप्राप्ताय श्रीवासुपूज्य जिनेन्द्राय अर्घ्य नि।
फागुन कृष्णा चतुर्दशी को नाथ आपने जन्म लिया।
नृप वसुपूज्य पिता हर्षाये भरत क्षेत्र को धन्य किया ।।
गिरि सुमेरु पर पाण्डुक वन में हुआ जन्म कल्याणमहान।
वासुपूज्य का क्षीरोदधि से हुआ दिव्य अभिषेक प्रधान ।।२।।
ॐ ह्रीं श्री फाल्गुन कृष्णचतुर्दश्या जन्ममगल प्राप्ताय श्रीवासुपूज्य जिनेन्द्राय अर्घ्य नि।
फागुन कृष्ण चतुर्दशी को वन की ओर प्रयांण किया।
लौकातिक देवर्षि सुरो ने आकर तप कल्याण किया ।।

तभी नम. सिद्धेभ्य. कहकर इच्छाओं का दमन किया।
वासुपूज्य ने ध्यान लीन हो इच्छाओं का दमन किया ।।३।।

ॐ ही श्री फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्या तपोमगल प्राप्ताय श्रीवासुपूज्य जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

माघ शुक्ल की दोज मनोरम वासुपूज्य को ज्ञान हुआ।
समवशरण में खिरी दिव्यध्वनि जीवों का कल्याण हुआ ।।
नाश किये घन घाति कर्म सब केवलज्ञान प्रकाश हुआ।
भव्यजनों के हृदय कमल का प्रभु से पूर्ण विकास हुआ ।।४।।

ॐ हीं श्री माघशुक्लद्वितीया केवलज्ञान प्राप्ताय श्रीवासुपूज्य जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

अतिम शुक्ल ध्यानधर प्रभु ने कर्म अघाति किये चकचूर।
मुक्ति वधू के कत हो गये योग मात्र को कर निज से दूर ।।
भादव शुक्ला चतुर्दशी चम्पापुर से निर्वाण हुआ।
मोक्ष लक्ष्मी वासुपूज्य ने पाई जय जय गान हुआ ।।५।।

ॐ हीं श्री भाद्रपदशुक्लचतुर्दश्या मोक्षमगल प्राप्ताय श्रीवासुपूज्य जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

जयमाला

वासुपूज्य विद्या निधि विघ्न विनाशक वागीश्वर विश्वेश।
विश्वविजेता विश्वज्योति विज्ञानी विश्वदेव विविधेश ।।१।।
चम्पापुर के महाराज वसुपूज्य पिता विजया माता। -
तुमको पाकर धन्य हुए हे वासुपूज्य मगल दाता ।।२।।
अष्ट वर्ष की अल्प आयु मे तुमने अणुव्रत धार लिया।
यौवन वय मे ब्रह्मचर्य आजीवन अगीकार किया ।।३।।
पच मुष्टि कचलोच किया सब वस्त्राभूषण त्याग दिये।
विमल भावना द्वादश भाई पच महाव्रत ग्रहण किये ।।४।।
स्वय बुद्ध हो नम सिद्ध कह पावन सयम अपनाया।
मति, श्रुति, अवधि जन्म से था अब ज्ञान मन पर्यय पाया ।।५।।
एक वर्ष छदस्थ मौन रह आत्म साधना की तुमने।
उग्र तपस्या के द्वारा ही कर्म निर्जरा की तुमने ।।६।।

श्रेणीक्षपक चढे तुम स्वामी मोहनीय का नाश किया।
पूर्ण अनन्त चतुष्टय पाया पद अरहंत महान लिया ॥७॥
विचरण करके देश देश में मोक्ष मार्ग उपदेश दिया।
जो स्वभाव का साधन साधे, सिद्ध बने, संदेश दिया ॥८॥
प्रभु के छयासठ गणधर जिनमें प्रमुख श्रीमंदिर ऋषिवर।
मुख्य आर्यिका वरसेना थीं नृपति स्वयंभू श्रोतावर ॥९॥
प्रायश्चित व्युत्सर्ग, विनय, वैरुयावृत्त स्वाध्याय अरुध्यान।
अन्तरग तप छह प्रकार का तुमने बतलाया भगवान ॥१०॥
कहा वाह्य तप छ प्रकार उनोदर कायक्लेश अनशन।
रस परित्यागसुव्रत परिसंख्या, विविक्त शय्यासन पावन ॥११॥
ये द्वादश तप जिन मुनियों को पालन करना बतलाया।
अणुव्रत शिक्षाव्रत गुणव्रत द्वादशव्रत श्रावक का गाया ॥१२॥
चम्पापुर मे हुए पंचकल्याण आपके मगलमय।
गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, मोक्ष, कल्याण भव्यजन को सुखमय ॥१३॥
परमपूज्य चम्पापुर की पावन भू को शत्-शत् वन्दन।
वर्तमान चौबीसी के द्वादशम् जिनेश्वर नित्य नमन ॥१४॥
मैं अनादि से दुखी, मुझे भी निज बल दो भववास हरूँ।
निज स्वरूप का अवलम्बन ले अष्टकर्म अरि नाश करूँ ॥
ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, मोक्षकल्याण प्राप्ताय पूर्णार्घ्यं नि।
महिष चिह शोभित चरण, वासुपूज्य उर धार।
मन वच तन जो पूजते वे होते भव पार ॥

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय नम।

卐

श्री विमलनाथ जिन पूजन

जय जय विमलनाथ विमलेश्वरविमल ज्ञानधारी भगवान।
छयालीसगुण सहित, दोष अष्टादश रहित वृहत विद्वान ॥
विश्वदेव विश्वेश्वर स्वामी विगतदोष विक्रमी महान।
मोक्षमार्ग के नेता प्रभुवर तुमने किया विश्व कल्याण ॥
ॐ ह्रीं श्री विमलनाथ जिनेन्द्र अत्र अवतर-अवतर सवौषट्, ॐ ह्रीं श्री विमलनाथ जिनेन्द्र अत्र तिष्ठ ठ ठ। ॐ ह्रीं श्री विमलनाथ जिनेन्द्र अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्।

परम शुद्ध निश्चयनय का जो विषय भूत है शुद्धातम।
परम भाव ग्राही द्रव्यार्थिक नयकी विषय वस्तु आतम् ॥

विमलज्ञान जल की निर्मल पावनता अन्तर में भर लूं।
जन्ममरण की व्यथा नाशहित प्रभु सम्यक्त्व प्राप्त कर लूँ॥
विमलनाथ को मन वच काया पूर्वक नमस्कार करलूँ।
शुद्ध आत्मा की प्रतीति कर यह संसार भार हर लूं॥१॥

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल नि ।

विमलज्ञान का शीतल पावन चंदन अन्तर में भरलूँ।
भव सताप हरने को प्रभु विनयत्व प्राप्त कर लूँ॥विमल.॥२॥

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथ जिनेन्द्राय ससारतापविनाशनाय चदन नि ।

विमलज्ञान के अति उज्जवल अक्षत निज अन्तर में भरलूँ।
निज अक्षय अखंड पद पाने प्रभु सरलत्व प्राप्तकर लूँ॥विमल.॥३॥

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षत नि ।

विमलज्ञान के परम शुद्ध पुष्पो को अन्तर में भरलूँ।
कामदर्प को चूर करूँ प्रभु निष्कामत्व प्राप्त कर लूँ॥विमल.॥४॥

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि ।

विमलज्ञान नैवेद्य सुहावन शुचिमय अन्तर मे भर लूँ।
अब अनादि का क्षुधारोगहर प्रभुविमलत्व प्राप्त कर लूँ॥विमल॥५॥

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि ।

विमलज्ञान का जगमग दीप जला अन्तरतम को हरलूँ।
मिथ्यातम के तिमिर नाशकर सर्वज्ञत्व प्राप्त कर लूँ॥विमल॥६॥

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथ जिनेन्द्राय मोक्षान्धकार विनाशनाय दीप नि ।

विमलज्ञान की चिन्मय धूप सुगन्धित अन्तर मे भर लूँ।
कर्मशत्रु की सर्व शक्ति हर प्रभु अमरत्व प्राप्त कर लूँ॥विमल.॥७॥

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म विध्वसनाय धूप नि ।

विमलज्ञान फल महामोक्ष पद दाता अन्तर में भरलूँ।
शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध स्वपद पा पूर्णशिवत्व प्राप्त कर लूँ॥विमल॥८॥

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथ जिनेन्द्राय महामोक्ष फल प्राप्ताय फल नि ।

विमलज्ञान का निज परिणतिमय पद अनर्घ उर मे भर लूँ।
अचल अतुल अविनाशी पद पा सर्व प्रभुत्व प्राप्त कर लूँ॥विमल.॥९॥

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथ जिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्ताय अर्घ्य नि ।

श्री पंचकल्याणक

पुरी कम्पिला धन्य हो गई सहस्त्रार तज तुम आए।
ज्येष्ट कृष्ण दशमी को माता जयदेवी ने सुख पाए ॥
षटनवमास रत्न वर्षा के दृश्य मनोरम दर्शाये।
दिक्कुमारियो ने सेवाकर विमलनाथ मगल गाए ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री ज्येष्ठ कृष्ण दशम्या गर्भ मगल प्राप्ताय श्रीविमलनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्य नि ।

कापिल्य नृप श्री कृतवर्मा के शुभ गृह में जन्म हुआ।
राजभवन में सुरपति का अनुपम नाटक नृत्य हुआ ॥
माघ मास की शुक्ल चतुर्थी गिरि सुमेरु अभिषेक हुआ।
जय जय विमलनाथ जन्मोत्सव परमहर्ष अतिरेक हुआ ॥२॥

ॐ ह्रीं माघ शुक्ल चतुर्थ्या जन्म मगल प्राप्ताय श्रीविमलनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्य नि ।

माघ मास की शुक्ल चतुर्थी उरवैराग्य जगा अनुपम।
लौकांतिक सुर साधु साधु कह प्रभुविराग करते दृढतम ॥
जम्बू वृक्षतले वस्त्राभूषण का त्याग किया सुखतम।
जय जय विमलनाथ प्रभुतप कल्याण हुआ जग मे अनुपम ॥३॥

ॐ ह्रीं माघ शुक्ल चतुर्थ्या तपोमगल प्राप्ताय श्रीविमलनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्य नि ।

तीनवर्ष छदमस्थ रहे प्रभु पाया पावन केवलज्ञान।
माघ शुक्ल षष्ठमी को मगल उत्सव जग मे हुआ महान ॥
समवशरण मे वस्तु तत्व का हुआ परम सुन्दर उपदेश।
जय जय विमलनाथ तीर्थंकर जय जय त्रयोदशमतीर्थेश ॥४॥

ॐ ह्रीं माघ शुक्ल षष्ठया ज्ञानकल्याणा प्राप्ताय श्रीविमलनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्य नि ।

शुभ अषाढ शुक्ल अष्टम को चउ अघातिया करके नाश।
गिरि सम्मेदशिखर सुवीरकुल कूट हुआ निर्वाण प्रकाश ॥
ऊर्ध्वलोक मे गमन किया प्रभु पाया सिद्धलोक आवास।
जय जय विमलनाथ तीर्थंकर हुआ मोक्षकल्याणक रास ॥५॥

ॐ ह्रीं आषाढ शुक्ल अष्टम्या मोक्ष मगल प्राप्ताय श्रीविमलनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्य नि ।

जब तक नहीं स्वभाव भाव है तब तक है सयोगी भाव।
जब सयोगी भाव त्याग देगा तो होगा शुद्ध स्वभाव ॥

जयमाला

विमलनाथ विमलेश विमलप्रभ विमलविवेक विमुक्तात्मा।
विचारज्ञ विद्यासागर विद्यापति विविक्त विद्यात्मा ॥१॥
तेरहवे तीर्थंकर प्रभु त्रैलोक्यनाथ जिनवर स्वामी।
तेरहविधि चारित्र बताया तुमने हे शिव सुख धामी ॥२॥
पचपन गणधर से शोभित प्रभु मुख्य हुए मन्दिर गणधर।
मुख्य आर्यिका पद्मा, श्रोता पुरुषोत्तम, सुरनर मुनिवर ॥३॥
पचमहाव्रत पंचसमिति त्रय गुप्ति श्रमण मुनिकाचारित।
है व्यवहार चारित्र श्रेष्ठनिश्चय स्वरूप आचरण पवित्र ॥४॥
हिंसा, झूठ, कुशील परिग्रह, चोरी पांच पाप का त्याग।
मन, वच, काया, कृत, कारित, अनुमोदन से कषाय सबत्याग।
योनि, जीव, मार्गणा स्थान, कुल, भेद जान रक्षा करना।
तज आरम्भ, अहिंसाव्रत परिणाम सदा पालन करना ॥६॥
राग, द्वेष, मद,मोह आदि से हों न मृषा परिणाम कभी।
सदा सर्वदा सत्य महाव्रत का पालन है पूर्ण तभी ॥७॥
ग्राम नगर वन आदिक ही पर वस्तुग्रहण का भाव न हो।
यही तीसरा है अचौर्यव्रत पर पदार्थ मे राग न हो ॥८॥
देख रूप रमणी का उसके प्रति वांछा का भाव न हो।
मैथुन संज्ञा रहित शुद्धव्रत ब्रह्मचर्य का पालन हो ॥९॥
पर पदार्थ परद्रव्यो में मूर्छा ममत्व न किंचित हो।
त्याग भेद चौबीस परिग्रह के अपरिग्रह शुभ व्रत हो ॥१०॥
पचमहाव्रत दोष रहित अतिचार रहित हो अतिशुचिमय।
पूर्ण देश पालन करना आसन्न भव्य को मंगलमय ॥११॥
ईर्या भाषा समिति एषणा अरु आदान निक्षेपण जान।
प्रतिष्ठापना समिति पाच का पालन करते साधुमहान ॥१२॥
केवल दिन मे चार हाथ लख प्रासुक पथपर जो जाता।
त्रस थावर प्राणी रक्षाकर ईर्या समिति पाल पाता ॥१३॥

ज्ञान चक्षुओ को खोलो अब देखो निज चैतन्य निधान।
देह ओर वाणी मन से भी पार विराजित निज भगवान ।।

पर निन्दा, पैशून्य, हास्य, कर्कश, भाषा, स्वप्रशंसा तज।
हितमितप्रियही वचनबोलना भाषासमिति स्वय को भज ।।१४।।
संयम हित नवकोटि रूप से प्रासुक शुद्ध भोजन करना।
यही एषणा समिति कहाता विधि पूर्वक आहार करना ।।१५।।
शास्त्र कमंडुल पीछी आदिक संयम के उपकरण सभी।
यत्न पूर्वक रखना है आदान निक्षेपण समिति तभी ।।१६।।
पर उपरोध जंतु विरहित प्रासुक भूपर मल को त्यागे।
प्रतिष्टापना समिति सहज हो जागरूक निज में जागे ।।१७।।
पंचसमिति व्यवहार समिति निश्चय से निज सम्यक् परणति।
तत्वलीन त्रयगुप्ति सहित ज्ञानादिक धर्मो की सहति ।।१८।।
कालुष संज्ञा मोहराग द्वेषादि अशुभ भावो को तज।
परमागम का चिंतन करना मनोगुप्ति व्यवहार सहज ।।१९।।
पाप हेतु विकथाएं तज करना असत्य की निवृत्ति सदा।
वचन गुप्ति अन्तर वचनो अरू बहिवर्चन मे नहीं कदा ।।२०।।
बधन छेदन मारण आकुंचन व प्रसारण इत्यादिक।
कायक्रियाओ से निवृत्ति है कायगुप्ति निज सुखदायिक ।।२१।।
तेरह विधि चारित्रपाल जो करना कायोत्सर्ग स्वय।
त्याग शुभाशुभ, ध्यानमयी निजभजता जो शुद्धात्मपरम ।।२२।।
घाति कर्म से रहित परम केवलज्ञानादि गुणों से युत।
हो जाते अरिहतदेव चौंतीस अतिशयो से भूषित ।।२३।।
अष्टकर्म के बंधन को कर नष्ट अष्टगुण पाता है।
वह लोकाग्र शिखर पर स्थिर हो सिद्धस्वपद प्रगटाता है।।२४।।
मैं भी बन सपूर्ण सिद्ध निज पद पाऊँ ऐसा बल दो।
हे प्रभु विमलनाथ जिनस्वामी पूजन का शिवमयफल हो ।।२५।।

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं नि स्वाहा।

शूकर चिन्ह चरण मे शोभित विमल जिनेश्वर का पूजन।
मन वच तन से जो करते हैं वे पाते है मुक्ति सदन ।।२६।।

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्री श्री विमलनाथ जिनेन्द्राय नम ।

उषा काल मे प्रात समय निज का चिंतन कर लो चेतन।
घड़ी दो घड़ी जितना भी हो तत्व मनन कर लो चेतन ।।

श्री अनन्तनाथ जिन पूजन

जय जय जयति अनन्तनाथ प्रभु शुद्ध ज्ञानधारी भगवान्।
परम पूज्य मंगलमय प्रभुवर गुण अनन्तधारी भगवान् ।।
केवलज्ञान लक्ष्मी के पति भव भव भय दुखहारी भगवान।
परम शुद्ध अव्यक्त अगोचर भव भव सुखकारी भगवान ।।
जय अनन्त प्रभु अष्टकर्म विध्वसक शिवकारी भगवान्।
महामोक्षपति परम वीतरागी जग हितकारी भगवान् ।।

ॐ ह्री श्री अनतनाथ जिनेन्द्र अत्र अवतर-अवतर सवौषट्, ॐ ह्री श्री अनतनाथ जिनेन्द्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ, ॐ ह्रीं श्री अनतनाथ जिनेन्द्र अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

मैं अनादि से जन्म मरण की ज्वाला मे जलता आया।
सागर जल से बुझी न ज्वाला तो मैं सम्यक् जल लाया ।।
जय जिनराज अनन्तनाथ प्रभु तुम दर्शन कर हर्षाया।
गुण अनन्त पाने को पूजन करने चरणो मे आया ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री अनतनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल नि ।

भव पीडा के दुष्कर बन्धन से न मुक्त प्रभु हो पाया।
भवा ताप की दाह मिटाने मलयागिरि चंदन लाया ।।जय ।।२।।

ॐ ह्रीं श्री अनतनाथ जिनेन्द्राय ससारताप विनाशनाय चदन नि ।

पर भावो के महाचक्र में फस कर नित गोता खाया।
भव समुद्र से पार उतरने निज अखण्ड तंदुल लाया ।।जय ।।३।।

ॐ ह्रीं श्री अनतनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षत नि ।

कामबाण की महा व्याधि से पीडित हो अति दुख पाया।
सुदृढ भक्ति नौका में चढकर शील पुष्प पाने आया ।। जय ।।४।।

ॐ ह्रीं श्री अनतनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि ।

विविध भाँति के षटरस व्यजन खाकर तृप्त न हो पाया।
क्षुधा रोग से विनिमुक्ति होने नैवेद्य भेंट लाया ।।जय.।।५।।

ॐ ह्रीं श्री अनतनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि ।

पर परिणति के रूप जाल में पड निज रूप न लख पाया ।
मिथ्या भ्रम हर ज्ञान ज्योति पाने को नवलदीप लाया ॥
जय जिनराज अनन्तनाथ प्रभु तुम दर्शन कर हर्षाया ।
गुण अनन्त पाने को पूजन करने चरणों मे आया ॥६॥

ॐ ह्रीं श्री अनतनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि ।

नरक तिर्यच देव नर गति मे भव अनन्त धर पछताया ।
चहुगति का अभाव करने को निर्मल शुद्ध धूप लाया ॥जय ॥७॥

ॐ ह्रीं श्री अनतनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म विध्वसनाय धूप नि ।

भाव शुभाशुभ देख के कारण इनसे कभी न सुख पाया ।
सवर सहित निर्जरा द्वारा मोक्ष सुफल पाने आया ॥जय ॥८॥

ॐ ही श्री अनतनाथ जिनेन्द्राय महा मोक्षफल प्राप्ताय फल नि ।

देह भोग ससार राग मे रहा विराग नही भाया ।
सिद्ध शिला सिहासन पाने अर्घ सुमन लेकर आया ॥जय.॥९॥

ॐ ह्रीं श्री अनतनाथ जिनेन्द्राय अनर्घपद्‌ प्राप्ताय अर्घ्य नि ।

श्री पंच कल्याणक

कार्तिक कृष्णा एकम् के दिन हुआ गर्भ कल्याण महान ।
माता जय श्यामा उर आये पुष्पोत्तर का त्याग विमान ॥
नव बारह योजन की नगरी रची अयोध्या श्रेष्ठ महान ।
जय अनन्त प्रभु मणि वर्षा की पन्द्रह मास सुरो ने आन ॥१॥

ॐ ही श्री कार्तिककृष्ण प्रतिप्रदाया गर्भकल्याण प्राप्ताय श्रीअनतनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्य नि ।

नगर अयोध्या सिहसेन नृप के गृह गूजी शहनाई ।
ज्येष्ठ कृष्ण द्वादश को जन्मे सारी जगती हर्षायी ॥
ऐरावत पर गिरि सुमेरु ले जा सुरपति नेन्हवन किया ।
जय अनन्त प्रभु सुर सुरागनाओ ने मगल नृत्य किया ॥२॥

ॐ ही श्री ज्येष्ठ कृष्ण द्वादश्या जन्मकल्याण प्राप्ताय श्रीअनतनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्य नि ।

दृष्टि विकार याकि भेद को कभी नहीं करती स्वीकार।
किन्तु अभेद अखड द्रव्य निज ध्रुव को ही करती स्वीकार ।।

उल्कापात देखकर तुमको एक दिवस वैराग्य हुआ।
ज्येष्ठ कृष्ण द्वादश को स्वामी राज्यपाठ का त्याग हुआ ।।
गये सहेतुक वन मे तरु अश्वस्थ निकट दीक्षा धारी।
जय अनन्तप्रभु नग्न दिगम्बर वीतराग मुद्रा धारी ।।३।।
ॐ ह्रीं श्री ज्येष्ठ कृष्ण द्वादश्या तपकल्याण प्राप्ताय श्रीअनतनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

एक मास तक प्रतिमायोग धार कर ध्यान किया।
चार घातिया कर्म नाशकर तुमने केवलज्ञान लिया ।।
चैत्र मास की कृष्ण अमावस्या को शिव संदेश दिया।
जय अनन्तजिन भव्यजनो को परम श्रेष्ठ उपदेश दिया ।।४।।
ॐ ह्रीं श्री चैत्र कृष्णअमावस्या ज्ञानकल्याण प्राप्ताय श्रीअनतनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

चैत्र मास की कृष्ण अमावस्या तुमने निर्माण किया।
कूट स्वयभू सम्मेदाचल देवो ने जयगान किया ।।
हो अयोग केवली का प्रथम समय मे अन्त किया।
जय अनन्त प्रभु निज सिद्धत्व प्रगट कर पद भगवन्त लिया ।।५।।
ॐ ही श्री अनन्तनाथ जिनेन्द्राय चैत्रकृष्ण अमावस्याया मोक्ष मगल मण्डिताय अर्घ्यं नि ।

जयमाला

चतुर्दशम् तीर्थकर स्वामी पूज्य अनन्तनाथ भगवान ।
दिव्यध्वनि के द्वारा तुमने किया भव्य जन का कल्याण ।।
थे पचास गणधर जिनमें पहले गणधर थे जय मुनिवर।
सर्व श्री थी मुख्य आर्यिका श्रोता भव्य जीव सुर नर ।।२।।
चौदह जीवसमास मार्गणा चौदह तुमने बतलायें।
चौदह गुणस्थान जीवो के परिणामो के दर्शाये ।।३।।
बादर सूक्ष्म जीव एकेन्द्रिय पर्याप्तक व अपर्याप्तक।
दो इन्द्रिय त्रय इन्द्रिय चतुइन्द्रिय पर्याप्त अपर्याप्तक ।।४।।
संज्ञी और असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त अपर्याप्तक।
ये ही चौदह जीवसमास जीव के जग मे परिचायक ।।५।।

गति इन्द्रिय कषाय अरु लेश्या वेद योग सयम सम्यक्त्व ।
काय अहार ज्ञान दर्शन अरु हैं सज्ञीत्व और भव्यत्व ॥६॥
यह चौदह मार्गणा जीव की होती है इनसे पहचान ।
पंचानवे भेद हैं इनके जीव सदा है सिद्ध समान ॥७॥
गति हैं चार पाच इन्द्रिय छह लेश्याएँ पच्चीस कषाय ।
वेद तीन सम्यक्त्व भेद छह पन्द्रह योग का षटकाय ॥८॥
दो आहार चार दर्शन है सयम सात अष्ट है ज्ञान ।
दो संज्ञीत्व और है दो भव्यत्व मार्गणा भेद प्रधान ॥९॥
गुणस्थान मार्गणा व जीवसमास सभी व्यवहार कथन ।
निश्चय से ये नहीं जीव के इन सबसे अतीत चेतन ॥१०॥
मूल प्रकृतियाँ कर्म आठ ज्ञानावरणादिक होती है ।
उत्तर प्रकृति एक सौ अडतालीस कर्म की होती हैं॥११॥
गुणस्थान मिथ्यात्व प्रथम मे एक शतक सत्रह का बध ।
दूजे सासादन मे होता एक शतक एक का बन्ध ॥१२॥
मिश्र तीसरे गुणस्थान मे प्रकृति चौहत्तर का हो बन्ध ।
चौथे अविरति गुणस्थान मे प्रकृति सतत्तर का हो बन्ध ॥१३॥
पचम देशविरति मे होता उनसठ कर्म प्रकृति का बन्ध ।
गुणस्थान षष्टम् प्रमत्त मे त्रेसठ कर्म प्रकृति का बन्ध ॥१४॥
सप्तम अप्रमत्त मे होता उनसठ कर्म प्रकृति का बन्ध ।
अष्ट अपूर्वकरण मे हो अट्ठावन कर्म प्रकृति का बन्ध ॥१५॥
नौ मे अनिवृत्तिकरण मे होता है बाईस प्रकृति का बन्ध ।
दसवे सूक्ष्मसाम्पराय में सत्रह कर्म प्रकृति का बन्ध ॥१६॥
ग्यारहवे उपशातमोह मे एक प्रकृति साता का बन्ध ।
क्षीणमोह बारहवें में है एक प्रकृति साता का बन्ध ॥१७॥
है सयोग केवली त्रयोदश एक प्रकृति साता का बन्ध ।
है अयोग केवली चतुर्दश किसी प्रकृति का कोई न बन्ध ॥१८॥
अष्टम् गुणस्थान से उपशम क्षपक श्रेणी होती प्रारम्भ ।
उपशम तो, दस, ग्यारहतक है नवदस बारह क्षायक रम्य ॥१९॥

क्षण क्षण वयो भाव मरण करता मिथ्यात्व मोह के चक्कर मे ।
दिनरात भयकर दुख पाता फिर भी रहता है पर घर मे ।।

अविरत गुणस्थान चौथे में होता सात प्रकृति का क्षय ।
पचम षष्टम् सप्तम मे होता है तीन प्रकृति का क्षय ।।२०।।
नवमे गुणस्थान मे होती है छत्तीस प्रकृति का क्षय ।
दसवे गुणस्थान मे होता केवल एक प्रकृति का क्षय ।।२१।।
क्षीणमोह बारहवे मे हो सोलह कर्म प्रकृति का क्षय ।
इस प्रकार चौथे से बारहवे तक त्रेसठ प्रकृति विलय ।।२२।।
गुणस्थान तेरहवे मे सर्व अनन्त चतुष्टयवान ।
जीवन मुक्त परम औदारिक सकल ज्ञेय ज्ञायक भगवान ।।२३।।
चौदहवे मे शेष प्रकृति पिच्चासी का होता है क्षय ।
प्रकृति एक सौ अडतालीस कर्म की होती पूर्ण विलय ।।२४।।
ऊर्ध्व गमनकर देहमुक्त हो सिद्ध शिला लोकाग्र निवास ।
पूर्ण सिद्ध पर्याय प्रगट होता है सादि अनन्त प्रकाश ।।२५।।
काल अनन्त व्यर्थ ही खोये दुख अनन्त अब तक पाये ।
द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव-भव परिवर्तन पाचो पाये ।।२६।।
पर भावो मे मग्न रहा तो रही विकारी ही पर्याय ।
निज स्वभाव का आश्रय लेता होती प्रगट शुद्ध पर्याय ।।२७।।
अष्ट कर्म से रहित अवस्था पाऊँ परम शुद्ध हे देव ।
शुद्ध त्रिकाली ध्रुव स्वभाव से मै भी सिद्ध बनूँ स्वयमेव ।।२८।।
इसीलिए हे स्वामी मैने अष्ट द्रव्य से की पूजन ।
तुम समान मै भी बनजाऊँ ले निज ध्रुव का अवलब ।।

ॐ ह्रीं श्री अनतनाथ जिनेन्द्राय गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, निर्वाण कल्याण प्राप्ताय पूर्णार्घ्यं नि ।

सेही चिन्ह चरण मे शोभित श्री अनतप्रभु पद उर धार ।
मन वच तन जो ध्यान लगाते हो जाते भव सागर पार ।।

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्रीं श्री अनतनाथ जिनेन्द्राय नम

निज का अभिनन्दन करते ही मिथ्यात्व मूल से हिलता है।
निज प्रभु का वदन करते ही आनद अतीन्द्रिय मिलता है

श्री धर्मनाथ जिन पूजन

धर्म धर्मपति धर्म तीर्थयुत ध्यान धुरन्धर प्रभु ध्रुववान।
धर्म प्रबोधन धर्म विनायक ध्यान ध्येय ध्याता धीमान ॥
पंच दशम तीर्थकर धर्मी धर्म तीर्थकर्ता धर्मेन्द्र।
धर्म प्रचारक धर्मनाथ प्रभु जयति धर्मगुरु धर्म जिनेन्द्र ॥

ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्र अत्र अवतर-अवतर सवौषट्, ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ । ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

धर्म भावना का जल लेकर क्षमाधर्म उर लाऊँ।
जन्मरोग का नाशकरूँ मैं आत्म ध्यान चित लाऊँ ॥
धर्म धुरन्धर धर्मनाथ प्रभु धर्म चक्र के धारी।
हे धर्मेश धर्म तीर्थकर शुद्ध धर्म अवतारी ॥१॥

ॐ ह्री श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल नि ।

धर्म भावना का चन्दन ले धर्म मार्दव ध्याऊँ।
भव भव की पीडा नाशूँ आत्म धर्म गुण गाऊँ ॥ धर्म धुरं.॥२॥

ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय ससारताप विनाशनाय चदन नि ।

धर्म भावना के अक्षत ले धर्म आर्जव ध्याऊँ।
निज अखडपद प्राप्तकरूँ मै आत्मधर्म चित लाऊँ ॥धर्म धुरधर॥३॥

ॐ ह्री श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षत नि ।

धर्म भावना पुष्प सजोऊँ सत्य धर्म मन भाऊँ।
कामबाण की शल्य मिटाऊँ आत्म धर्मगुण गाऊँ ॥धर्म धुरधर ॥४॥

ॐ ह्री श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि ।

धर्म भावना के चरु लाऊ शौच धर्म उर लाऊँ।
क्षुधारोग का नाश करूँ मे आत्म धर्म चितलाऊँ ॥धर्म धुरंधर ॥५॥

ॐ ह्री श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि ।

धर्म भावना दीप जलाऊँ सयम धर्म जगाऊँ।
मोह तिमिर अज्ञान हटाऊँ आत्म धर्म गुण गाऊँ ॥धर्म धुरधर ॥६॥

ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय मोहाधकार विनाशनाय दीप नि ।

निज निराकार से जुड़ जाओगे साकार रुप का छोड ध्यान।
आनद अतीन्द्रिय सागर मे बहते जाओ ले भेद ज्ञान ।।

धर्म भावना धूप चढाऊँ मैं तप धर्म बढाऊँ।
अष्टकर्म निर्जरा करूँ मै आत्म धर्म चित लाऊँ ।।
धर्म धुरन्धर धर्मनाथ प्रभु धर्म चक्र के धारी।
हे धर्मेश धर्म तीर्थकर शुद्ध धर्म अवतारी ।।७।।
ॐ ही श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म विध्वसनाय धूप नि ।
धर्म भावना का फल पाऊँ त्याग धर्म मन लाऊँ।
मोक्षस्वपद की प्राप्ति करूँ मै आत्मधर्म गुण गाऊँ ।।धर्म धुरंधर।।८।।
ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्ताय फल नि ।
धर्म भावना अर्घ चढाऊँ आकिचन मन लाऊँ।
ब्रह्मचर्य निजशील पयोनिधि आत्मकर्म चितलाऊँ।।धर्म धुरधर।।९।।
ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्ताय अर्घ्य नि ।

श्री पंच कल्याणक

त्रयोदशी वैशाख शुक्ल की सुरबाला मगल गाए।
तज सर्वार्थ सिद्धि का वैभव देवि सुव्रता उर आए ।।
स्वप्न फलो को जान मुदित माता मन ही मन मुसकाए।
जय जय धर्मनाथ तीर्थकर रत्न वृष्टि अनुपम छाए ।।१।।
ॐ ह्रीं बैशाख शुक्ल त्रयोदश्या गर्भकल्याणक प्राप्ताय श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्य नि ।
माघ शुक्ल की त्रयोदशी की रत्नपुरी मे जन्म हुआ।
राजा भानुराज हर्षाये इन्द्रो का आगमन हुआ ।।
पाडुक शिला विराजित करके क्षीरोदधि से नव्हन हुआ।
जय जय धर्मनाथ त्रिभुवनपति तीन लोक आनन्द हुआ ।।२।।
ॐ ही श्री माघशुक्लत्रयोदश्या जन्मकल्याणक प्राप्ताय धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्य नि ।
शुक्लमाघ की त्रयोदशी को प्रभु का तप कल्याण हुआ।
भवतन भोगो से विरक्त हो उर मे धर्म ध्यान हुआ ।।
राज्यपाट सब त्याग पालकी में विराज वन मे आए।
तरु दधिपर्ण तले दीक्षा धर धर्मनाथ प्रभु हर्षाए ।।३।।

आत्म भूत लक्षण सम्यक् दर्शन का स्वपर भेद विज्ञान।
समकित होते ही होती है निर्विकल्प अनुभूति महान ॥

ॐ ह्रीं श्री माघशुक्लत्रयोदश्या तपकल्याणक प्राप्ताय धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

पौष शुक्ल पूर्णिमा मनोहर जब छद्मस्थ काल बीता।
केवलज्ञान लक्ष्मी पाई चार घाति अरि को जीता ॥
हुए विराजि समवशरण में अन्तरीक्ष पद्मासन धार।
जय जय धर्मनाथ जिनवर शाश्वत उपदेश हुआ सुन्दर ॥४॥

ॐ ह्रीं पौषशुक्ल पूर्णिमाया ज्ञानकल्याणक प्राप्ताय धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

ज्येष्ठ शुक्ल की दिव्य चतुर्थी गिरि सम्मेद हुआ पावन।
प्राप्त अयोगी गुणस्थान चौदहवा कर जा मुक्ति सदन ॥
सिद्धशिला पर आप विराजे गूजीमुक्ति जग मे जय जयधुन।
मोक्ष सुदत्तकूट से पाया धर्मनाथ प्रभु ने शुभ दिन ॥५॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्थ्यां मोक्षकल्याणक प्राप्ताय धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

जयमाला

जय जय धर्मनाथ तीर्थंकर जिनवर वृषभ सौख्यकारी।
केवलज्ञान प्राप्त होते ही खिरी दिव्य ध्वनि हितकारी ॥१॥
गणधर तिरतालिस प्रमुख ऋषिराज अरिष्टसेन गणधर।
श्रीसुव्रता मुख्य आर्यिका अगणित श्रोता सुर मुनि नर ॥२॥
वीतराग प्रभु परमध्यानपति भेंट ध्यान के दरशाए।
आर्तरौद्र अरु धर्मशुक्ल ये चार ध्यान हैं बतलाए॥३॥
चिन्ता का निरोध करके एकाग्र जिसविषय मे हो मन।
रहता है अन्तमुहुर्त तक यही ध्यान का है लक्षण ॥४॥
आर्त, रौद्र तो अप्रशस्त हैं धर्म शुक्ल है प्रशस्त ध्यान।
इन चारों के चार चार है भेद अनेक प्रभेद सुजान ॥५॥
आर्त्तध्यान के चार भेद हैं इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग।
पीडा जनित भेद है तीजा चौथा है निदान का रोग ॥६॥
रौद्रध्यान के चार भेद हिंसानदी व मृषानदी।
चौर्यानन्दी भेद तीसरा चौथा परिग्रहानन्दी ॥७॥

ज्ञानी जड़ स्वरूप को अपना कभी मानता नहीं त्रिकाल।
अज्ञानी तन से ममत्व कर पाता है भव कष्ट विशाल॥

हिंसा में आनन्द मानना हिंसानन्दी ध्यान कुध्यान।
झूठ मांहि आनन्द मानना ध्यान मृषानन्दी दुखखान॥८॥
चोरी में आनन्द मानना चौर्यानन्दी ध्यान कुध्यान।
परिग्रह मे आनन्द मानना परिग्रहानन्दी दुर्ध्यान॥९॥
आर्त ध्यान अरु रौद्र ध्यान तो खोटी गति के कारण है।
पहिले गुणस्थान मे तो यह भव भव का दुखदारुण हैं॥१०॥
चौथे पचम छठवे तक यह आर्त ध्यान हो जाता है।
रौद्रध्यान चौथे पचम से आगे कभी न जाता है॥११॥
धर्म ध्यान के चार भेद है आज्ञाविचय अपायविचय।
तृतीय विपाकविचय कहलाता चौथा है संस्थानविचय॥१२॥
जिन आज्ञा से वस्तु चितवन आज्ञाविचय ध्यान सुखमय।
कर्मनाश के उपाय का ही चितन ध्यान अपायविचय॥१३॥
कर्म विपाक उदय उदीरणादिक चितवन विपाकविचय।
तीन लोक के स्वरूप का चितवन ध्यान सस्थानविचय॥१४॥
इनमे से सस्थानविचय के चार भेद पिडस्थ पदस्थ।
तीजा है रूपस्थ ध्यान चौथा है रूपातीत प्रशस्त॥१५॥
है पिडस्थ निजात्म चितवन श्री अर्हत आकृति का ध्यान।
वर्ण मातृका मत्र ॐ आदिक मे सुस्थिति पदस्थ ध्यान॥१६॥
श्री अरहत स्वरूप चितवन निज चिद्रूप ध्यान रूपस्थ।
ध्यान त्रिकाली शुद्धात्मा का रूपातीत महान प्रशस्त॥१७॥
पाच धारणाए पिडस्थ ध्यान की ध्याते परम यती।
पार्थिवी, आग्नेयी, श्वसना, वारूणी, तत्व रूपमती॥१८॥
धर्मध्यान का फल सवर निर्जरा मोक्ष का हेतु महान।
चौथे गुणस्थान से सप्तम तक होता है धर्म-ध्यान॥१९॥
अष्टम गुणस्थान से लेकर चौदहवे तक शुक्ल ध्यान।
शुक्लध्यान का फल साक्षात शाश्वत सिद्धस्वपद भगवान॥२०॥
ग्यारह अग पूर्व चौदह के ज्ञानी जो सर्वज्ञ महान।
वज्रवृषभनाराचसंहनन चरम शरीरी को यह जान॥२१॥

पाप पुण्य दोनो से वर्जित पूर्ण शुद्ध है आत्मा।
भव्य आलौकिक पथ पर चल कर होता है सिद्धात्मा ॥

शुक्लध्यान के चार भेद हैं इनकी महिमा अमित महान।
इनके द्वारा ही होता है आठो कर्मो का अवसान ॥२२॥
पृथक्त्व वितर्क विचार और एकत्व वितर्क अविचार महान।
सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपाति अरु व्युपरत क्रिया निवर्ति प्रधान ॥२३॥
श्रुतवीचार संक्रमण होता ध्यान पृथक्त्व वितर्क विचार।
मोहनीय घातिया विनाशक पहिला शुक्लध्यान सुखकार ॥२४॥
एक योग मे योगी रहता वह एकत्व वितर्क अविचार।
तीन घातिया का नाश करे जो दूजा शुक्ल ध्यान शिवकार ॥२५॥
अष्टम से लेकर बारहवे गुणस्थान तक ये होते।
त्रेसठ कर्म प्रकृति क्षय होती तब अरहन्त देव होते ॥२६॥
कायक्रिया जब सूक्ष्म रहे तब होता सूक्ष्मक्रि याप्रतिपाति।
तेरहवे मे होता जब अन्तमुहुर्त आयु रहती ॥२७॥
योग अभाव अघातिकर्म क्षय करना व्युपरत क्रिया निवर्ति।
चौदहवे मे लघु पंचाक्षर समय मात्र इसकी स्थिति ॥२८॥
चौदहवे के प्रथम समय में प्रकृति बहात्तर का हो नाश।
अन्त समय मे तेरह कर्म प्रकृति का होता पूर्ण विनाश ॥२९॥
ऊर्ध्व गमन कर सिद्धशिला पर सिद्ध स्वपद पाते भगवन्त।
हो लोकाग्र भाग मे सुस्थित शुद्ध निरजन सादि अनत ॥३०॥
धर्मध्यान को सर्व परिग्रह तजकर जो जन ध्याते है।
स्वर्गादिक सर्वार्थसिद्धि को सहज योगि जन पाते है ॥३१॥
क्षपकश्रेणि चढ शुक्ल ध्यान जो ध्याते पाते केवलज्ञान।
अतिम शुक्ल ध्यान के द्वारा वे ही पाते है निर्वाण ॥३२॥
आर्त्त रौद्र मे कृष्ण, नील, कापोत अशुभ लेश्या होती।
धर्मध्यान मे पीत, पद्म अरु शुक्ल लेश्या ही होती ॥३३॥
पहिले दूजे शुक्लध्यान मे शुक्ल लेश्या ही होती।
तीजे चौथे शुक्लध्यान मे परम शुक्ल लेश्या होती ॥३४॥
चार ध्यान को जानूँ समझूँ अप्रशस्त का त्याग करूँ।
आलबन लेकर प्रशस्त का रागातीत विराग करूँ ॥३५॥

ज्ञायक तो केवल ज्ञायक है तीन लोक से न्यारा है।
अविनाशी आनद कद है पूर्ण ज्ञान सुखकारा है ।।

रहित, परिग्रह, तत्वज्ञान, परिषहजय, साम्यभाव, वैराग्य ।
धर्म ध्यान के पाँचों कारण निज में पाऊँ जागेभाग्य ।।३६।।
हे प्रभु मै भी निज आश्रय ले निजस्वरूप कोही ध्याऊँ ।
धर्मशुक्ल ध्या अष्टकर्म क्षयकर निज सिद्धस्वपदपाऊँ ।।३७।।
ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं नि स्वाहा ।

वज्र चिन्ह शोभित चरण भाव सहित उरधार ।
मन वच तन जो ध्यावते वे होते भवपार ।।

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय नम ।

卐

श्री शांतिनाथ जिन पूजन

शाति जिनेश्वर हे परमेश्वर परमशान्त मुद्रा अभिराम ।
पचम चक्री शान्ति सिन्धु सोलहवे तीर्थकर सुख धाम ।।
निजानन्द मे लीन शाति नायक जग गुरु निश्चल निष्काम ।
श्री जिन दर्शन पूजन अर्चन वंदन नित प्रति करूँ प्रणाम ।।
ॐ ह्री श्री शातिनाथ जिनेन्द्र अत्र अवतर-अवतर सवौषट् ॐ ह्रीं श्री शातिनाथ जिनेन्द्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ । ॐ ह्रीं श्री अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्।
जल स्वभाव शीतल मलहारी आत्म स्वभाव शुद्ध निर्मल ।
जन्म मरण मिट जाये प्रभु जब जागे निजस्वभाव कां बल ।।
परम शातिसुखदाय शातिविधायक शातिनाथ भगवान ।
शाश्वत सुख को मुझेप्राप्ति हो श्री जिनवर दो यह वरदान ।।१।।
ॐ ह्रीं श्री शातिनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल नि ।
शीतल चदन गुण सुगंधमय निज स्वभाव अति ही शीतल ।
पर विभाव का ताप मिटाता निज स्वरूप का अंतर्बल ।।परम.।।२।।
ॐ ह्री श्री शातिनाश जिनेन्द्राय ससारताप विनाशनाय चदन नि ।
भव अटवी से निकल न पाया पर पदार्थ में अटका मन ।
यह ससार पार करने का निज स्वभाव ही है साधन ।।परम.।।३।।
ॐ ह्री श्री शातिनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्ताय अक्षत नि ।

आत्म गगन मडल मे ज्ञानामृत रस पीते है ज्ञानी।
बहिर्भाव मे रहने वाले प्यासे रहते अज्ञानी ॥

कोमल पुष्प मनोरम जिनमें राग आग की दाह प्रबल।
निज स्वरूप की महाशक्ति से काम व्यथा होती निर्बल ॥परम.॥४॥

ॐ ह्रीं श्री शातिनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि।

उर की क्षुधा मिटाने वाला यह चरु तो दुखदायक है।
इच्छाओ की भूख मिटाता निज स्वभाव सुखदायक है ॥
परम शातिसुखदाय शातिविधायक शातिनाथ भगवान।
शाश्वत सुख को मुझेप्राप्ति हो श्री जिनवर दो यह वरदान ॥५॥

ॐ ही श्री शातिनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि।

अन्धकार मे भ्रमते-भ्रमते भव-भव मे दुख पाया है।
निजस्वरूप के ज्ञान भानु का उदय न अब तक आया है॥परम ॥६॥

ॐ ही श्री शातिनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि।

इष्ट अनिष्ट सयोगो मे ही अब तक सुख दुख माना है।
पूर्णत्रिकाली ध्रुवस्वभाव का बल न कभी पहचाना है ॥परम.॥७॥

ॐ ही श्री शातिनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म विध्वसनाय धूप नि।

शुद्ध भाव पीयूष त्यागकर पर को अपना मान लिया।
पुण्य फलों मे रुचि करके अब तक मैने विष पान किया ॥परम ॥८॥

ॐ ही श्री शातिनाथ जिनेन्द्राय महामोक्षफल प्राप्ताय फल नि।

अविनश्वर अनुपम अनर्घपद सिद्ध स्वरूप महा सुखकार।
मोक्ष भवन निर्माता निज चैतन्य राग नाशक अघहार ॥परम ॥९॥

ॐ ही श्री शातिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्ताय अर्घ्य नि।

श्री पंच कल्याणक

भादव कृष्ण सप्तमी के दिन तज सर्वार्थ सिद्धि आये।
माता ऐरा धन्य हो गयी विश्वसेन नृप हरषाये ॥
छप्पन दिक्कुमारियो ने नित नवल गीत मगल गाये।
शातिनाथ के गर्भोत्सव पर रत्न इन्द्र ने बरसाये ॥१॥

ॐ ही श्री भाद्रपक्ष कृष्ण सप्तम्या गर्भमगल प्राप्ताय श्री शातिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्य नि।

नगर हस्तिनापुर मे जन्मे त्रिभुवन मे आनन्द हुआ।
ज्येष्ठ कृष्ण की चतुर्दशी को सुरगिरि पर अभिषेक हुआ ॥

शुद्ध आत्म अनुभव होते ही द्वैत नहीं भासित होता।
चिन्मय एकाकार एक चिन्मात्र रुप दर्शित होता ।।

मगल वाद्य नृत्य गीतो से गूंज उठा था पाण्डुक वन।
हुआ जन्म कल्याण महोत्सव शांतिनाथप्रभु का शुभदिन ।।२।।
ॐ ह्रीं श्री ज्येष्ठकृष्ण चतुर्दश्या जन्ममगल प्राप्ताय श्री शातिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि।

मेघ विलय लख इसजग की अनित्यता का प्रभुभान लिया।
लौकातिक देवों ने आकर धन्य धन्य जयगान किया ।।
कृष्ण चतुर्दशि ज्येष्ठ मास की अतुलित वैभवत्याग दिया।
शातिनाथ ने मुनिव्रत धारा शुन्द्रातम अनुराग किया ।।३।।
ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्या तपोमगल प्राप्ताय श्री शातिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि।

पोष शुक्ल दशमी को चारों घातिकर्म चकचूर किया।
पाया केवलज्ञान जगत के सारे सकट दूर किये ।।
समवशरण रचकर देवो ने किया ज्ञानकल्याण महान।
शातिनाथ प्रभु की महिमा का गूजा जग मे जयजयगान ।।४।।
ॐ ह्रीं पौषशुक्लदशम्या केवलज्ञान प्राप्ताय श्री शातिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि।

ज्येष्ठ कृष्ण की चतुर्दशी को प्राप्त किया सिद्धत्वमहान।
कूट कुन्दप्रभ गिरि सम्मेदशिखर से पाया पद निर्वाण ।।
सादि अनन्त सिद्ध पद को प्रगटाया प्रभु ने धरनिजध्यान।
जय जय शातिनाथ जगदीश्वर अनुपम हुआमोक्षकल्याण ।।५।।
ॐ ह्रींज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दश्या मोक्षमगल प्राप्ताय श्री शातिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि।

जयमाला

शातिनाथ शिवनायक शाति विधायक शुचिमयशुद्धात्मा।
शुभ्र मूर्ति शरणागत वत्सल शीलस्वभावी शांतात्मा ।।१।।
नगर हस्तिनापुर के अधिपति विश्वसेन नृप के नन्दन।
मा ऐरा के राज दुलारे सुर नर मुनि करते वन्दन ।।२।।
कामदेव बारहवें पंचम चक्री तीन ज्ञान धारी।
बचपन में अणुव्रत धर यौवन मे पाया वैभव भारी ।।३।।
भरतक्षेत्र के षट खण्डो को जय कर हुए चक्रवर्ती।
नव निधि चौदह रत्न प्राप्त कर शासक हुए न्यायवर्ती ।।४।।

तू व्रतादि मे धर्म मान कर करता रहता है शुभ भाव।
कैसे हो मिथ्यात्व मद अरु कैसे पाए आत्म स्वभाव ॥

इस जग के उत्कृष्ट भोग भोगते बहुत जीवन बीता।
एक दिवस नभ में धन का परिवर्तनलख निजमन रीता ॥५॥
यह ससार असार जानकर तपधारण का किया विचार।
लौकांतिक देवर्षि सुरों ने किया हर्ष से जय जयकार ॥६॥
वन में जाकर दीक्षाधारी पंच मुष्टि कचलोच किया।
चक्रवर्ति की अतुलसम्पदा क्षण में त्याग विराग लिया ॥७॥
मन्दिरपुर के नृप सुमित्र ने भक्तिपूर्वक दान दिया।
प्रभुकर मे पय धारा दे भव सिंधु सेतु निर्माण किया ॥८॥
उच्च तपस्या से तुमने कर्मो की कर निर्जरा महान।
सोलह वर्ष मौन तप करके ध्याया शुद्धातम का ध्यान ॥९॥
श्रेणी क्षपक चढे स्वामी केवलज्ञानी सर्वज्ञ हुए।
दिव्य ध्वनि से जीवों को उपदेश दिया विश्वज्ञ हुए ॥१०॥
गणधर थे छत्तीस आपके चक्रायुद्ध पहले गणधर।
मुख्य आर्यिका हरिषेणाथी श्रोता पशु नर सुर मुनिवर ॥११॥
कर विहार जग में जगती के जीवों का कल्याण किया।
उपादेय है शुद्ध आत्मा यह संदेश महान दिया ॥१२॥
पाप-पुण्य शुभ-अशुभ आश्रव जग में भ्रमण कराते है।
जो सवर धारण करते हैं परम मोक्ष पद पाते है ॥१३॥
सात तत्व की श्रद्धा करते जो भी समकित धरते हैं।
रत्नत्रय का अवलम्बन से मुक्ति वधू को वरते है ॥१४॥
सम्मेदाचल के पावन पर्वत पर आप हुए आसीन।
कूट कुन्दप्रभ से अघातिया कर्मो से भी हुए विहीन ॥१५॥
महामोक्ष निर्वाण प्राप्तकर गुण अनन्त से युक्त हुए।
शुद्ध बुद्ध अविरूद्ध पद पाया भव से मुक्त हुए ॥१६॥
हे प्रभु शातिनाथ मगलमय मुझको भी ऐसा वर दो।
शुद्ध आत्मा की प्रतीति मेरे उर मे जाग्रत कर दो ॥१७॥
पाप ताप सताप नष्ट हो जाये सिद्ध स्वपद पाऊँ।
पूर्ण शांतिमयशिव सुखपाकर फिर न लौट भव मे आऊँ ॥१८॥

ॐ ह्रीं श्री शातिनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं नि।

वस्तु स्वभाव यथार्थ जानने का जब तक पुरुषार्थ नहीं।
भाव भासना बिन तत्वो की श्रद्धा भी सत्यार्थ नहीं ॥

चरणों में मृग चिन्ह सुशोभित शांति जिनेश्वर का पूजन।
भक्ति भाव से जो करते हैं वे पाते है मुक्ति गगन ॥

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्रीं श्री शातिनाथ जिनेन्द्राय नम ।

卐

श्री कुन्थुनाथ जिनपूजन

श्री कुंथुनाथ जिनेश प्रभु तुम ज्ञान मूर्ति महान हो।
अरहन्त हो भगवंत हो गुणवंत हो भगवान हो ॥
तुम वीतरागी तीर्थकर हितकर सर्वज्ञ हो।
जानते युगपत सकल जग इसलिए विश्वज्ञ हो ॥
नाथ मै आया शरण मे राग द्वेष विनाश हो।
दो मुझे आशीष उर में पूर्ण ज्ञान प्रकाश हो ॥

ॐ ह्रीं श्री कुथुनाथ जिनेन्द्र अत्र अवतर अवतर सवौषट् ॐ ही श्री कुथुनाथ जिनेद्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ , ॐ ही श्री कुथुनाथ जिनेन्द्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

नव तत्व के श्रद्धान का जल स्वच्छ अन्तर मे भरूँ।
समवाय पांचो प्राप्त कर मिथ्यात्व के मल को हरूँ ॥
श्री कुन्थुनाथ अनाथ रक्षक पद कमल मस्तक धरूँ।
आनद कन्द जिनेन्द्र के पद पूज सब कल्मष हरूँ ॥१॥

ॐ ही श्री कुथुनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल नि ।

है सार जग में आत्मा निज तत्व चंदन आदरूँ।
प्रभुशांत मुद्रा निरखकर मिथ्यात्व के मल को हरूँ ॥श्रीकुन्थु.॥२॥

ॐ ही श्री कुथुनाथ जिनेन्द्राय ससारताप विनाशनाय चदन नि ।

मै जान तत्व अजीव को अक्षत स्वचेतन पद धरूँ।
अक्षय अरूपी ज्ञान से मिथ्यात्व के मल को हरूँ ॥श्रीकुन्थु.॥३॥

ॐ ही श्री कुथुनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्ताय अक्षत नि ।

इस आश्रव को जान दुखमय पाप पुण्याश्रव हरूँ।
प्रभु कामबाण विनाशहित मिथ्यात्व के मलको हरूँ ॥श्रीकुन्थु.॥४॥

ॐ ह्रीं श्री कुथुनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि ।

शुद्ध बुद्ध हू ज्ञायक हू ये सब विधि के विकल्प भी छोड़।
राग नहीं मै बध नहीं मै ये निषेध के विकल्प तोड़ ।।

मैं बन्ध तत्व स्वरुप समझूं आत्मचरू ले परिहरूँ ।
प्रभु क्षुधारोग विनष्टहित मिथ्यात्व के मल को हरूँ ।।श्रीकुन्थु.।।५।।
ॐ ह्री श्री कुथुनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि ।
अब तत्व संवर जानकर निज ज्ञान का दीपक धरूँ ।
कुज्ञान कुमति विनाशकर मिथ्यात्व के मल को हरूँ ।।श्रीकुन्थु.।।६।।
ॐ ह्री श्री कुथुनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि ।
मैं निर्जरा का तत्व समझूँ ध्यान धूप हृदय धरूँ ।
सब बद्धकर्म अभावहित मिथ्यात्व के मल को हरूँ।।श्रीकन्थु.।।७।।
ॐ हीं श्री कुथुनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म विध्वसनाय धूप नि ।
मैं मोक्ष तत्व महान निश्चय रूप अन्तर मे धरूँ ।
सम्यक् स्वरूप प्रकाशफल सम्यक्त्व को दृढतर करूँ ।।श्रीकुन्थु ।।८।।
ॐ ह्री श्री कुथुनाथ जिनेन्द्राय महामोक्षफल प्राप्ताय फल नि ।
मै ज्ञान दर्शन चरितमय निज अर्घ्य रत्नत्रय धरूँ ।
सम्यक् प्रकार अनर्घपद पा शाश्वत सुख को करूँ ।।श्रीकुन्थु ।।९।।
ॐ हीं श्री कुथुनाथ जिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्ताय अर्घ्य नि ।

श्री पंचकल्याणक

श्रावण कृष्ण दशमी के दिन तज सर्वार्थसिद्धि आये ।
कुन्थुनाथ आगमन जानकर श्रीमती माँ हर्षाये ।।
गर्भ पूर्व छह मास जन्म तक शुभरत्नो की धार गिरी ।
नगर हस्तिनापुर शोभा लख लज्जित होती इन्द्रपुरी ।।१।।
ॐ हीं श्री श्रावण कृष्णदश्याम् गर्भमगल प्राप्ताय श्री कुथुनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्य नि ।
सूर्यसेन राजा के गृह मे कुन्थुनाथ ने जन्म लिया ।
शुभ बैशाख शुक्ल एकम् का तुमने दिवस पवित्र किया ।।
सर्व प्रथम इन्द्राणी ने दर्शन कर जीवन धन्य किया ।
पांडुकशिला विराजित कर सुरपति ने प्रभु अभिषेक किया ।।२।।
ॐ ह्री श्री बैशाख शुक्ला प्रतिपदाया जन्ममगल प्राप्ताय श्री कुथुनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्य नि ।

तीर्थ यात्रा जप तप करना मात्र नग्नता धर्म नहीं।
वीतराग निज धर्म प्रगट होते ही रहता कर्म नहीं॥

शुभ बैशाख शुक्ल एकम को उरछाया वैराग्य अपार।
यह संसार अनित्य जानकर निजदीक्षा का किया विचार॥
तिलक वृक्ष के नीचे दीक्षा लेकर धार लिया निजध्यान।
कुन्थुनाथ प्रभु का तप कल्याणक इन्द्रों ने किया महान॥३॥

ॐ ह्रीं श्री बैशाख शुक्ला प्रतिपदाया तपोमगल प्राप्ताय श्री कुथुनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि।

मोह नाशकर चैत्र शुक्ल तृतीया को पाया केवलज्ञान।
समवशरण की रचना करके हुआ इन्द्र को हर्ष महान॥
खिरी दिव्यध्वनि जगजीवों को आपने किया ज्ञानप्रदान।
कुन्थुनाथ ने मोक्षमार्ग दर्शाकर किया विश्व कल्याण॥४॥

ॐ ह्रीं श्री चैत्र शुक्लातृतीया ज्ञानमगल प्राप्ताय श्री कुथुनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि।

श्री सम्मेदशिखर पर आकर प्रतिमा योग किया धारण।
अन्तिम शुक्लध्यान को धर कर स्वामी हुये तरण तारण॥
प्रभु बैशाख शुक्ल एकम को शेष कर्म का कर अवसान।
कूट ज्ञानधर से है पाया कुंथुनाथ प्रभु ने निर्वाण॥५॥

ॐ ह्रीं श्री बैशाख शुक्ल प्रतिपदाया मोक्षमगल प्राप्ताय श्री कुथुनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि।

जयमाला

कुंथुनाथ करुणा के सागर करुणादानी कृपा निधान।
कुमति निकन्दन कल्मष भंजन कर्मोत्छेदी कृती महान॥१॥
भरत क्षेत्र के षटखण्डों पर राज्य किया बहुतकाल बीता।
सप्तदशम् तीर्थंकर जिन तेरहवें कामदेव गुणवान॥२॥
षष्टम् चक्री दीना नाथ दया के सागर दया निधान।
जाति स्मरण हुआ एक दिन, वैराग्य हुआ तत्काल॥३॥
राज्यपाट तज गए सहेतुक वन में जिन दीक्षा धारी।
पंच मुष्टि कचलोच किया प्रभु हुए महाव्रत के धारी॥४॥
सोलह वर्ष रहे छद्मस्थ कि राग द्वेष को दूर कियां।
क्षपक श्रेणी चढ कर्मघातिया चारों को चकनाचूर किया॥५॥

सम्यक् दर्शन तो स्व लक्ष से ही हो सकता है तत्काल।
जब तक पर का लक्ष तभी तक मिथ्या दर्शन का जजाल॥

भाव शुभाशुभ नाश हेतु प्रभु निज स्वभाव में लीन हुए।
पाप पुण्य आश्रव विनाशकर स्वयंसिद्ध स्वाधीन हुए॥६॥
गणधर थे पैंतीस आपके मुख्य स्वयभू गणधर थे।
मुख्य आर्यिका श्रीभाविता, श्रोता सुर नर मुनिवर थे॥७॥
वीतराग सर्वज्ञदेव अरहत हुए केवल ज्ञानी।
सादि अनन्त सिद्ध पद पाया कर अघातिया की हानी॥८॥
नाथ आपके पद पंकज में मनवच काया सहित प्रणाम।
भक्तिभाव से यही विनय है सुनो जिनेश्वर हे गुणधान॥९॥
सम्यक्दर्शन को धारण कर श्रावक के व्रत ग्रहण करूँ।
पंच पाप को एक देश तज चार कषायें मन्द करूँ॥१०॥
पच विषय से रागभाव तज पच प्रमाद अभाव करूँ।
ग्यारह प्रतिमाए पालन कर पच महाव्रत भाव धरूँ॥१॥
मनवचकाय त्रियोग सवारूँ तीन गुप्तियों को पालूँ।
बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनिबन द्वादश व्रत पालूँ॥१२॥
पचाचार समिति पाचो हो तेरह विधि चारित्र धरूँ।
दश धर्मो का निरतिचार पालन कर स्वय स्वरूप वरूँ॥१३॥
छठे सातवे गुणस्थान मे झूलूँ श्रेणी क्षपक चढूँ।
चार घातिया को विनष्टकर मोक्षभवन की ओर बढूँ॥१४॥
इस प्रकार निज पद को पाऊँ यही भावना है स्वामी।
पूर्ण करो मेरी अभिलाषा कुन्थुनाथ त्रिभुवननामी॥१५॥
ॐ ह्रीं श्री कुन्थुनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्य नि स्वाहा।
चरणो मे अजचिन्ह सुशोभित कुन्थुनाथ प्रतिमा अभिराम।
जो जन मन वचतन से पूजे वे ही पाते है शिवधाम॥

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्रीं श्री कुन्थुनाथ जिनेन्द्राय नम

रागादिक से भिन्न आत्मा का अनुभव ही श्रेष्ठ महान।
निज की परसे भिन्न जानने की प्रक्रिया भेद विज्ञान ॥

श्री अरनाथ जिनपूजन

जय जय श्री अरनाथ जिनेश्वर अतुलबली अरि कर्मजयी।
अमल अतुल अविकल अविनाशी प्रभु अनंत गुणधर्ममयी ॥
अष्टा-दशम तीर्थकर जिन वीतराग विज्ञानमयी।
सकल लोक के ज्ञाता दृष्टा निजानन्द रस ध्यानमयी ॥

ॐ ह्रीं श्री अरनाथ जिनेन्द्र अत्र अवतर-अवतर संवौषट्, ॐ ह्रीं श्री अरनाथ जिनेन्द्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ । ॐ ह्रीं श्री अरनाथ जिनेन्द्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

परम अहिंसामयी धर्म शुचिमय पावन जल लाऊँ।
षटकायक की दया पालकर निज की दया निभाऊँ ॥
श्री अरनाथ चरण चिन्हों पर चलकर शिवपद पाऊँ।
सुदृढ भक्ति नौका पर चढकर भवसागर तर जाऊँ ॥१॥

ॐ ही श्री अरनाथ जिनेन्द्र ाय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल नि ।

परम सत्यमय धर्म ग्रहणकर शीतल चन्दन लाऊँ।
परद्रव्यों से राग तोडकर जिन की प्रीति जगाऊँ ॥श्री अरनाथ॥२॥

ॐ ह्रीं श्री अरनाथ जिनेन्द्राय ससारतापविनाशनाय चंदन नि ।

परम अचौर्यमयी स्वधर्म के उज्ज्वल अक्षत लाऊँ।
पर पदार्थ से ममता छोडूँ निज से ममत बढाऊँ ॥श्रीअरनाथ.॥३॥

ॐ ह्रीं श्री अरनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षत नि ।

परमशील निज ब्रह्मचर्य मय धर्म कुसुम उरलाऊँ।
शुद्ध स्वरूपाचरण भव्य चारित्र किरण प्रगटाऊँ ॥श्रीअरनाथ.॥४॥

ॐ ह्रीं श्री अरनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि ।

परमधर्म अपरिग्रह मय आकिंचन चरू लाऊँ।
परद्रव्यो से मूर्छा त्यागूँ निज स्वभाव मे आऊँ ॥श्रीअरनाथ ॥५॥

ॐ ह्रीं श्री अरनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य नि ।

परम धर्म सम्यक्त्व मयी दीपक की ज्योति जलाऊँ।
स्वपर प्रकाशक भेदज्ञान से चिर मिथ्यात्व भगाऊँ ॥श्रीअरनाथ॥६॥

ॐ ह्रीं श्री अरनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि ।

परम ज्ञानमय धर्म धूप ले शुक्ल ध्यान कब ध्याऊँ।
अष्टम गुणस्थान पा श्रेणी चढ घातियानशाऊँ ॥श्री अरनाथ.॥७॥

ॐ ह्रीं श्री अरनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म विध्वसनाय धूप नि ।

यथाख्यात चारित्र प्राप्तकर मोहक्षीण थल पाऊँ।
सकल निकल परमातम बनकर परम मोक्ष फल पाऊँ॥श्रीअरनाथ.॥८॥

ॐ ह्रीं श्री अरनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्ताय फल नि ।

परम धर्ममय रत्नत्रय पथ पाऊँ अर्घ चढाऊँ।
निज स्वरूप सौन्दर्य प्रगटकर अनर्घपद पाऊँ ॥श्रीअरनाथ ॥९॥

ॐ ह्रीं श्री अरनाथ जिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्ताय अर्घ्य नि ।

श्री पंचकल्याणक

फागुन शुक्ला तृतीया के दिन अपराजित तजकर आए।
मगल सोलह स्वप्न मात मित्रादेवी को दर्शाए ॥
नगर हस्तिनापुर के अधिपति नृपति सुदर्शन हर्षाए।
धनपति रत्नो की वर्षाकर अरहनाथ के गुण गाए ॥१॥

ॐ ह्रीं फाल्गुन शुक्ल तृतीया गर्भ कल्याणक प्राप्ताय श्री अरनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्य नि ।

मगसिर शुक्ला चतुर्दशी को अरनाथ जग में आए।
मेरु सुदर्शन पाडुक वन में पांडुक शिला, देव भाए ॥
एक चार वसुयोजन स्वर्णकलश इकसहस्त्र आठ लाए।
क्षीरोदधि सागर के जल से इन्द्र नव्हन कर हर्षाए ॥२॥

ॐ ह्रीं मगसिर शुक्लाढश्या जन्म कल्याणक प्राप्ताय श्री अरनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्य नि ।

मगसिर शुक्ला दशमी के दिन तप कल्याण हुआ अनुपम।
लौकांतिक देवों ने आ प्रभु का वैराग्य किया दृढतम ॥
चक्रवर्ति पद त्याग श्री अरनाथ स्वय दीक्षा धारी।
सब सिद्धो को वन्दन करके मौन तपस्या स्वीकारी ॥३॥

ॐ ह्रीं मगसिर शुक्लादश्या तप कल्याणक प्राप्ताय श्री अरनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्य नि ।

कार्तिक शुक्ल द्वादशी प्रभु ने केवलज्ञान लब्धि पाई।
छयालीस गुण सहित पूज्य अरहंत स्वपदवी प्रगटाई ॥
समवशरण की ऋद्धि हुई तीर्थंकर प्रकृति उदय आई।
अष्ट प्रातिहार्यो की छवि लख जग ने प्रभु महिमा गाई ॥४॥

ॐ ह्रीं कार्तिकशुक्लद्धादश्या ज्ञानकल्याणक प्राप्ताय श्री अरनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्य नि।

चैत्र मास की कृष्ण अमावस्या को योग अभाव किया।
अष्ट कर्म से रहित अवस्था पा निज पूर्ण स्वभाव लिया ॥
नाटक कूट शैल सम्मेदाचल से पद निर्वाण लिया।
इन्द्रादिक ने श्री अरजिन का भव्य मोक्ष कल्याण किया ॥५॥

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्ण आमावस्याया मोक्षकल्याणक प्राप्ताय श्री अरनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्य नि।

जयमाला

अष्टादशम तीर्थंकर प्रभु अरहनाथ को करूँ नमन।
सप्तम चक्री कामदेव चौदहवे अधिपति को वन्दन ॥१॥
मेघ विलय लख तुमको स्वामी पलभर में वैराग्य हुआ।
गए सहेतुक वन मे प्रभुवर दीक्षा से अनुराग हुआ ॥२॥
सोलह वर्ष रहे छदमस्थ और फिर पाया केवलज्ञान।
दिव्यध्वनि द्वारा जग के जीवो का किया परम कल्याण ॥३॥
गणधर थे प्रभु तीस मुख्य जिनमें से श्री कुन्थु गणधर।
प्रमुख आर्यिका श्री कुन्थुसेना थी समवशरण सुन्दर ॥४॥
मैं भी प्रभु उपदेश आपका निज अन्तर मे ग्रहण करूँ।
तत्व प्रतीति जगे मन मेरे आत्मरूप चिंतवन करूँ ॥५॥
अनन्तानुबन्धी अभाव कर दर्शन मोह अभाव करूँ।
चौथे गुणस्थान को पाऊँ समकित अगीकार करूँ ॥६॥
अप्रत्याख्यानावरणी हर एकदेश व्रत ग्रहण करूँ।
पंचम गुणस्थान को पाकर विशुद्धि की वृद्धि करूँ ॥७॥

प्रत्याख्यानावरण विनाशुं मैं मुनिपद को स्वीकार करूँ।
छठा सातवाँ गुणस्थान पा पंच महाव्रत को धारूँ ।।८।।
अष्टम गुणस्थान श्रेणीचढ शुक्ल ध्यानमय ध्यान धरूँ।
तीव्र निर्जरा द्वारा मै प्रभु घातिकर्म अवसान करूँ ।।९।।
कस संज्वलन का अभाव चारित्र मोह का नाश करूँ।
यथाख्यात चारित्र प्राप्तकर निज कैवल्य प्रकाश करूँ ।।१०।।
हो सयोग केवली अनन्त चतुष्टय का वैभव पाऊँ।
लोकालोक ज्ञान मे झलके निज सर्वज्ञ स्वपद पाऊँ ।।११।।
हो अयोग केवली प्रकृति पच्चासी का भी नाश करूँ।
उर्ध्वलोक में गमन करूँ निज सिद्धस्वरूप प्रकाश करूँ ।।१२।।
सादि अनत स्वपद को पाकर सिद्धालय में वास करूँ।
इस प्रकार क्रमक्रम से अपना मोक्षस्वरूप विकास करूँ ।।१३।।
जिस प्रकार अरनाथ देव तुम तीन लोक के भूप हुए।
निज स्वभाव के साधन द्वारा मुक्ति भूप चिद्रूप हुए ।।१४।।
उस प्रकार मै भी अपना पुरुषार्थ जगाऊँ वह बल दो।
रत्नत्रय पथ पर आ जाऊँ इस पूजन का यह फल दो ।।१५।।
ॐ ह्रीं श्री अरनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं नि स्वाहा।
मीन चिन्ह शोभित चरण अरहनाथ उरधार।
मन वच तन जो पूजते हो जाते भव पार ।।

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्री श्री अरहनाथ तीर्थकरेभ्यो नम ।

卐

श्री मल्लिनाथ जिन पूजन

मल्लिनाथ के चरण कमल को नित प्रति बारम्बार प्रणाम।
बालब्रह्मचारी योगीश्वर महामगलात्मक गुणधाम ।।
अष्टकर्म विध्वसक मिथ्यातिमिर विनाशक प्रभु निष्काम।
महाध्यानपति शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध वीतरागी अभिराम ।।

वर्तमान स्थूल दृष्टि से तेरा काम नहीं होगा।
बिना पराश्रित दृष्टि तजे निज मे विश्राम नहीं होगा ।।

आज आपकी पूजन करके रोकूँ रागादिक परिणाम।
ज्ञानावरणादि कर्मों की संतति को नाशूँ अविराम ।।

ॐ ह्रीं श्री मल्लिनाथ जिनेन्द्र अत्र अवतर-अवतर सवौषट्, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

परम पारिणामिक भावों का जल पवित्र कब पाऊँगा।
जन्म मरण दुख का विनाशकर वीत दोष बन जाऊँगा ।।
मल्लिनाथ प्रभु के अनन्तगुण पावन चित मे ध्याऊँगा।
चिदानन्द चित्चमत्कार मय निज चेतन पद पाऊँगा ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री मल्लिनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जल नि ।

परम पारिणामिक भावो का शिवचन्दन कब पाऊँगा।
इस संसारताप को क्षयकर वीतक्षोभ बन जाऊँगा।।मल्लिनाथ ।।२।।

ॐ ह्रीं श्री मल्लिनाथ जिनेन्द्राय ससारताप विनाशनाय चदन नि ।

परम परिणामिक भावो के निज अक्षत कब पाऊँगा।
भव समुद्र से पार उतरकर वीतद्वेष बन जाऊँगा ।।मल्लिनाथ ।।३।।

ॐ ह्रीं श्री मल्लिनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्ताय अक्षत नि ।

परम पारिणामिक भावो के नव प्रसून कब पाऊँगा।
महाशील की सुरभि प्राप्तकर वीतकाम बनजाऊँगा ।।मल्लिनाथ।।४।।

ॐ ह्री श्री मल्लिनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि ।

परम पारिणामिक भावो के उत्तम चरू कब पाऊँगा।
क्षुधा रोग संपूर्ण नाशकर वीतलोभ बन जाऊँगा ।।मल्लिनाथ।।५।।

ॐ ह्रीं श्री मल्लिनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि ।

परम पारिणामिक भावों की ज्ञान ज्योति कब पाऊँगा।
स्वपर प्रकाशक ज्ञान प्राप्तकर वीत मोह बनजाऊँगा ।।मल्लिनाथ।।६।।

ॐ ह्रीं श्री मल्लिनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि ।

परम पारिणामिक भावो की शुद्ध धूप कब पाऊँगा।
अष्टकर्म अरि का विनाशकर वीतकर्म बन जाऊँगा ।।मल्लिनाथ।।७।।

ॐ ह्री श्री मल्लिनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म विध्वसनाय धूप नि ।

अतर दृष्टि बदल कर अपनी हेय राग तद्रा को छोड़।
निज स्वरूप मे जाग्रत हो जा त्वरित भाव निद्रा को छोड़ ।।

परम पारिणामिक भावों का उत्तम फल कब पाऊँगा।
महामोक्ष फल प्राप्त करूँगा वीतराग बन जाऊँगा ।।मल्लिनाथ।।८।।

ॐ ह्रीं श्री मल्लिनाथ जिनेन्द्राय महामोक्ष फल प्राप्ताय फल नि ।

परम परिणामिक भावों का विमल अर्घ्य कब पाऊँगा।
निज अनर्घ्य पदवी को पाकर स्वयं सिद्ध बन जाऊँगा ।।मल्लिनाथ।।९।।

ॐ ह्रीं श्री मल्लिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्ताय अर्घ्य ।

श्री पंचकल्याणक

मिथलापुरी नगर के राजा कुम्भराज भूपति गुणधाम।
रानी प्रभावती माता ने देखे सोलह स्वप्न ललाम ।।
चैत्र शुक्ल एकम को त्याग अपराजित स्वर्ग विमान।
मल्लिनाथ आगमन जान सुर रत्नवृष्टि करते नित आन।।१।।

ॐ ह्री चैत्रशुक्ल प्रतिपदाया गर्भमगलप्राप्ताय श्री मल्लिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्य नि ।

मगसिर शुक्ला एकादशमी कुम्भराज नृप धन्य हुए।
जिनके आगन मे सुर सुरपति इन्द्राणी के नृत्य हुए ।।
जन्मोत्सव के मगल उत्सव गिरि सुमेरु पर धन्य हुए।
जय जय मल्लिनाथ जिन स्वामी पूजन कर सब धन्य हुए ।।२।।

ॐ ह्रीं मगसिर शुक्लएकादश्या जन्ममगल प्राप्ताय श्री मल्लिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्य नि ।

एकादशी शुक्ल मगसिर के दिन उर मे वैराग्य जगा।
जग का वैभव भोग नाशमय क्षण भंगुर निस्सार लगा ।।
तरु अशोक के निकट महाव्रत धारण कर दीक्षाधारी।
पचमुष्टि कचलोच किया प्रभु मल्लिनाथ कीबलिहारी ।।३।।

ॐ ह्री श्री मगसिर शुक्ला एकादशम्या तपोमगल प्राप्ताय श्री मल्लिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्य नि ।

छह दिन ही छहमस्थ रहे प्रभु, आत्मध्यान मे हो तल्लीन।
कर्मघाति चारो को क्षयकर पाया केवलज्ञान प्रवीण ।।

मै स्वय सिद्ध परिपूर्ण द्रव्य किंचित भी नहीं अधूरा हू।
चिन्मय चैतन्य धातु निर्मित मैं गुण अनत से पूरा हू॥

समवशरण मे पौष कृष्ण द्वितीया को शुभ उपदेश दिया।
मल्लिनाथ तीर्थंकर प्रभु ने मोक्ष मार्ग संदेश दिया ॥४॥

ॐ ह्रीं श्री पौषवदी द्वितीया ज्ञानमगल प्राप्ताय श्री मल्लिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि।

फाल्गुन शुक्ल पंचमी को अपरान्ह समय पाया निर्वाण।
संबलकूट शिखर सम्मेदाचल से हुए सिद्ध भगवान॥
महामोक्ष कल्याण महोत्सव इन्द्रादिक ने किया महान।
जय जय मल्लिजिनेश्वर सिद्धपति चहुंदिशि में गूंजा जयगान ॥५॥

ॐ ह्रीं श्री फागुन शुक्ल पचमीदिने मोक्षमगल प्राप्ताय श्री मल्लिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि।

जयमाला

महाकारुणिक महागुणाकर महाशिष्ट मोहारि जयी।
मल्लिनाथ मुनि ज्येष्ठ मुक्ति प्रियमुक्ति प्ररूपक मृत्युंजयी ॥१॥
तुम कुमार वय मे दीक्षा धर वीतराग भगवान हुए।
शत इन्द्रों से वन्दनीक प्रभु केवलज्ञान निधान हुए ॥२॥
अट्ठाईस हुए गणधर प्रभु मुख्य हुए विशाख गणधर।
मुख्यार्यिका बंधुसेना थी, श्रोता सार्वभौभ नृपवर ॥३॥
भव्य दिव्य उपदेश आपने दिया सकलजग को तत्काल।
जो निजात्म की शरण प्राप्त करता हो जाता स्वयंनिहाल ॥४॥
क्रोधमान दोनों कषाय हैं द्वेषरूप अतिक्रूर विभाव।
दोनों का जब क्षय होता है तो होता है द्वेष अभाव ॥५॥
मायालोभ कषाय राग की वृद्धि नित्य करती जाती।
इनके क्षय होने पर ही तो वीतरागता है आती ॥६॥
इनकी चार चौकडी के चक्कर में चहुगति दुख भरता।
द्रव्य क्षेत्र अरु कालभव भाव परिवर्तन पाँचों करता ॥७॥
अनन्तानुबन्धी कषाय तो घात स्वरूपाचरण करे।
घात देशसयम का यह अप्रत्याख्यानीवरण करे ॥८॥
घात सकल संयम का करती प्रत्यख्यानावरण कषाय।
यथाख्यात चारित्र घात करती हैं यह संज्वलन कषाय ॥९॥

दृषि ज्ञप्ति वृत्तिमय जीवन हो शुद्धातम तत्व मे हो प्रवृत्ति।
परिणाम शुद्ध हो अतर मै पर परिणामो से हो निवृत्त ॥

नरक त्रिर्यन्च देव नरगति की पाई आयु अनंतीबार।
सम्यक् ज्ञान बिना यह प्राणी अबतक भटका है ससार ॥१०॥
मनुज और त्रिर्यच आयु उत्कृष्ट तीन पल्यों की है।
मनुज त्रिर्यच जघन्य आयु केवल अन्तमुहूर्त की है ॥११॥
देव नरक गति की उत्कृष्ट आयु सागर तैंतिस की है।
देव नरक की जघन्य आयु दस सहस्त्र वर्षो की है ॥१२॥
पचेन्द्रिय के पचविषय अरु चार कषाय चार विकथा।
निद्रा नेह प्रमाद भेद पंदरह के क्षय से मिटे व्यथा ॥१३॥
जो प्रमाद का नाश करेगा अप्रमत्त बन जायेगा।
सप्तम गुणस्थान पायेगा श्रेणी चढ सुख पायेगा ॥१४॥
यह उपदेश हृदय मे धारूँ सर्व कषाय विनाश करूँ।
मोहमल्ल को जीतूँ स्वामी सम्यक्ज्ञान प्रकाश करूँ ॥१५॥
मै मिथ्यात्वतिमिर को हरकर अविरत को भी दूरकरूँ।
क्रम क्रम से योगों को हरकर अष्टकर्म चकचूर करूँ ॥१६॥
यही भावना है अन्तर में कब प्रभु पद निर्ग्रन्थ वरूँ।
पद निर्ग्रन्थ पथ पर चलकर मै अनंत भव अन्त करूँ ॥१७॥

ॐ ह्रीं श्री मल्लिनाथ जिनेन्द्राय गर्भजन्मतप ज्ञानमोक्ष कल्याणक प्राप्ताय पूर्णार्घ्यं नि।

मल्लिनाथपद कलशचिन्ह लख चरणकमल जो ले उरधार।
मन वच तन जो ध्यान लगाते वे हो जाते हैं भव पार ॥

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्रीं श्री मल्लिनाथ जिनेन्द्राय नम ।

卐

श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनपूजन

हे मुनिसुव्रत भगवान तुमने कर्म घाति स्वय हने।
कैवल्यज्ञान प्रकाशकर पाया परम पद आपने ॥
निज पर विवेक जगा हृदय मे पूर्ण शुद्धात्मा बने।
संसार को सन्मार्ग दिखला सिद्ध परमात्मा बने ॥

राग द्वेष शुभ अशुभ भाव से होते पुण्य पाप के बंध।
साम्य भाव पीयाषामृत पीने वाला ही है निर्बन्ध ।।

भव सिंधु की मझधार में डूबा मुझे तारो प्रभो।
दो भेद ज्ञान प्रकाश मुझको शीघ्र उद्धारो प्रभो ।।

ॐ ह्री श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्र अत्र अवतर अवतर संवौषट्, ॐ ह्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ , ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अब आत्म जल की सलिल धारा शुद्ध अन्तर मे धरूँ।
यह जन्म मरण अभाव करके स्वपद अजरामर वरूँ ।।
मैं मुनिसुव्रत भगवान का पूजन करूँ अर्चन करूँ।
निज आत्मा मे आपके ही रूप का दर्शन करूँ ।।१।।

ॐ ह्री श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल नि।

अब आत्म चन्दन दुख निकदन शुद्ध अन्तर में धरूँ।
भव भ्रमण ताप अभाव करके स्वपद अजरामर वरूँ ।।मैं मुनि ।।२।।

ॐ ह्री श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय ससारताप विनाशनाय चदन नि।

अब आत्म अक्षत धवल उज्जवल शुद्ध अन्तर मे धरूँ।
अक्षय अनत स्वरूप पाकर स्वपद अजरामर वरूँ ।।मै मुनि.।।३।।

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्ताय अक्षत नि।

अब आत्म पुष्प सुवासशिवमय शुद्ध अन्तर में धरूँ।
दुष्काम हर निष्काम बनकर स्वपद अजरामर वरूँ ।।मैं मुनि.।।४।।

ॐ ह्री श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि।

अब आत्ममय नैवेद्य पावन शुद्ध अन्तर मे धरूँ।
यह क्षुधाव्याधि अभाव करके स्वपद अजरामर वरूँ ।।मै मुनि.।।५।।

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य नि।

अब आत्म दीपक ज्योति झिलमिल शुद्ध अन्तर में धरूँ।
मिथ्यात्वमोह अभाव करके स्वपद अजरामर वरूँ ।।मैं मुनि.।।६।।

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय मोहाधकार विनाशनाय दीप नि।

अब आत्म धूप अनूप अविकल शुद्ध अन्तर में धरूँ।
धनघाति कर्म अभाव करके स्वपद अजरामर वरूँ ।।मै मुनि.।।७।।

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म विध्वसनाय धूप नि।

तेज पुज शुद्धातम तत्व जब निज अनुभव मे होता मस्त।
नय प्रमाण निक्षेप आदि का भी समूह हो जाता अस्त॥

निजआत्म की अनुभूति का फल शुद्ध अंतर में धरूँ।
सर्वोत्कृष्ट सुमोक्षफल ले स्वपद अजरामर वरूँ॥मैं मुनि.॥८॥

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्ताय फल नि।

वसु गुणमयी शुद्धात्मा का अर्घ अन्तर में धरूँ।
सब परविभाव अभाव करके स्वपद अजरामर वरूँ॥मैं मुनि॥९॥

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्ताय अर्घ्य नि।

श्री पंचकल्याणक

आनत स्वर्ग त्यागकर आए माता सोमा के उर मे।
श्रावण कृष्णा दूज हुआ गर्भोत्सव मंगल घर घर में॥
छप्पन देवी माता की सेवा करती अंत· पुर मे।
सुव्रतनाथ प्रभु बजी बधाई मधुर राजगृह के पुर में॥१॥

ॐ ह्रीं श्री श्रावण कृष्ण द्वितीयाया गर्भमगल प्राप्ताय श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्य नि।

शुभ वैशाख कृष्ण दशमी को जन्ममहोत्सव हुआ महान।
नृपति सुमित्र हर्ष से पुलकित देते है मुह मागा दान॥
सुरपति प्रभु को शीश विराजित कर पाडुकवन ले जाते।
सुव्रतनाथ अभिषेक क्षीरसागर जल से कर हर्षाते॥२॥

ॐ ह्री श्री बैशाख कृष्णदशम्या जन्म मगल प्राप्ताय श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्य नि।

प्रभु बैशाख कृष्ण दशमी को भव भोगों से हुए विरक्त।
यह संसार असार जानकर त्यागगृह परिवार समस्त॥
स्वयबुद्ध हो चंपकतरू के नीचे जिन दीक्षा धारी।
नाथ मुनिसुव्रत व्रत के स्वामी साधु हो गए अनगारी॥३॥

ॐ ह्री श्री बैशाख कृष्णदशम्या तपोमगल प्राप्ताय श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्य नि।

ग्यारह मास रहे छद्मस्थ तपस्वी मौन, सुव्रत भगवान।
त्रेसठ कर्म प्रकृति क्षय करके प्रभु ने पाया केवलज्ञान॥

आत्म द्रव्य तो है त्रिकाल अधिकारी गुण अनत का पिंड।
स्वय सिद्ध है वस्तु शाश्वत प्रभुता से सम्पन्न अखड ।।

गुणस्थान तेरहवां पाकर देव हुए सर्वज्ञ महान ।
वैशाख कृष्णनवमी को गूंजा समवशरण में जयजयगान ।।४।।

ॐ ह्रीं श्री बैशाखवदी नवम्या ज्ञानमगल प्राप्ताय श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

फाल्गुन कृष्ण द्वादशी को प्रभु गिरि सम्मेद पवित्र हुआ ।
मुनिसुव्रत निर्वाण महोत्सव संवलकूट पचित्र हुआ ।।
तन परमाणु उडे कपूरवत सब जग ने मंगल गाये ।
उर्ध्वलोक में गमन कर गए सिद्धशिला भी मुस्काए ।।५।।

ॐ ह्रीं श्री फाल्गुन कृष्ण द्वादश्या मोक्षमगल प्राप्ताय श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

जयमाला

जय मुनिसुव्रत तीर्थंकर बीसवें जिनेश पूर्ण परमेश ।
महातात्विक महाधार्मिक महापूज्य मुनि महामहेश ।।१।।
राजगृही मे गर्भ जन्म तप ज्ञान हुए चारों कल्याण ।
जल थल नभ में दशोदिशा में गूजा प्रभु का जयजयगान ।।२।।
अष्टादश गणधर थे प्रभु के प्रमुख मल्लिगणधर विद्वान ।
मुख्यआर्यिका पुष्पदत्ता थी श्रोता अजितंजय गुणवान ।।३।।
समवशरण में नाथ आपकी खिरी दिव्य ध्वनि कल्याणी ।
द्रव्यदृष्टि ही ज्ञानी हैं, पर्याय दृष्टि है अज्ञानी ।।४।।
गुण पर्यायों सहित द्रव्य है लक्षण जिसका शाश्वत सत् ।
द्रव्य ध्रौव्य उत्पाद व्यय सहित है स्वतंत्र सत्ता निश्चित ।।५।।
द्रव्य स्वतत्र सदा अपने में कोई लेख नहीं परतंत्र ।
गुण स्वतंत्र प्रत्येक द्रव्य के पर्याये भी सदा स्वतंत्र ।।६।।
कोई नहीं परिणमाता, परिणमन शील है द्रव्य स्वयं ।
पर परिणमन कराने का जो भाव वही मिथ्यात्व स्वयं ।।७।।
अपनी अपनी मर्यादा, स्वचतुष्टय में है द्रव्य सभी ।
सदा परिणमित होते रहते बिना परिणमन नही कभी ।।८।।
जीव द्रव्य तो है अनन्त अरु पुद्गल द्रव्य अनन्तानन्त है ।
धर्म अधर्म आकाश एक इक, काल असंख्य स्वमहिमावंत ।।९।।

है परिपूर्ण छहों द्रव्यों से पूरालोक अनादि अनत ।
जो स्वद्रव्य का आश्रय लेता वही जीव होता भगवंत ।।१०।।
जीव समास मार्गणा चौदह चौदह गुणस्थान जानो ।
यह व्यवहार, जीव की सत्ता निश्चय से अतीत मानो ।।११।।
सभी जीव द्रव्यार्थिकनय से सदाशुद्ध है सिद्धसमान ।
पर्यायार्थिकनय से देखो तो हैं जग जीव अशुद्ध महान ।।१२।।
आत्म द्रव्य है परमशुद्ध त्रैकालिक ध्रुव अनतगुणवान ।
दर्शन ज्ञानवीर्य सुखगुण से पूरित है त्रिकाल भगवान ।।१३।।
जो पर्यायो मे उलझा है वही जीव है मूढअजान ।
द्रव्यदृष्टि ही निजस्वद्रव्य का आश्रय ले होता भगवान ।।१४।।
अब तक प्रभु पर्यायदृष्टि रह मैंने जग मे दुख पाया ।
द्रव्यदृष्टि बनने का स्वामी अब अपूर्व अवसर आया ।।१५।।
यह अवसर यदि चूका तो प्रभु पुन जगत में भटकूंगा ।
भवसागर की भवरों में ही दुख पाऊँगा अटकूँगा ।।१६।।
मै भी स्वामी द्रव्यदृष्टि बन निजस्वभाव को प्रगटाऊँ ।
अष्टकर्म अरि पर जयपाकर सादिअनत स्वपद पाऊँ ।।१७।।
मै अनादि मिथ्यात्व पापहर द्रव्यदृष्टि बन करूँ प्रकाश ।
ध्रुव ध्रुव ध्रुव चैतन्यद्रव्य मैं, परभावों का करूँ विनाश ।।१८।।
पर्यायों से दृष्टि हटाकर निज स्वभाव मे आ जाऊँ ।
तुम चरणों की पूजन का फल द्रव्यदृष्टि अब बन जाऊँ ।।१९।।
महापुण्य सयोग मिला तो शरण आपकी आया हूँ ।
मैं अनादि से पर्यायों में मूढ बना भरमाया हूँ ।।२०।।
पाप ताप सन्ताप नष्ट हो मेरे हे मुनिसुव्रतनाथ ।
तुम चरणों की महाकृपा आशीर्वाद से बनूँ सनाथ ।।२१।।
संकटहरण मुनिसुव्रत स्वामी मेरे संकट दूर करो ।
द्रव्यदृष्टि दो प्रभु मेरी पर्याय दृष्टि चकचूर करो ।।२२।।

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं नि ।

कछुवा चिन्ह सुशोभित मुनिसुव्रत के चरणाम्बुज उरधार ।
भाव सहित जो पूजन करते वे हो जाते है भवपार ।।

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय नम

व्रत सयम बाहयोपचार है ज्ञान क्रिया अन्तर उपचार।
मान और सम्मान हलाहल विप सम इसे न कर स्वीकार ॥

श्री नमिनाथ जिनपूजन

जय नमिनाथ निरायुद्ध निर्गत निष्कषाय निर्भय निर्द्वद।
निष्कलंक निश्चल निष्कामी नित्य नमस्कृत नित्यानद ॥
मिथ्यातम अविरति प्रमाद कषाय योग बंध कर नाश।
कर्म प्रकृतियाँ पूर्ण नष्टकर लिया सूर्य शुद्धात्म प्रकाश ॥
मै चौरासी के चक्कर मे पड चहुंगति भरमाया हूँ।
भव का चक्र मिटाने को मैं पूजन करने आया हूँ ॥
यह विचित्र ससार और इसकी माया का करूँ अभाव।
आत्म ज्ञान की दिव्य प्रभा से हे प्रभु पाऊँ शुद्ध स्वभाव ॥

ॐ ह्रीं श्री नमिनाथ जिनेन्द्र अत्र अवतर अवतर सवौषट् ॐ ह्रीं श्री नमिनाथ जिनेन्द्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ , ॐ ह्रीं श्री नमिनाथ जिनेन्द्र अत्र मम सन्निहितो भव भव।

निज की उज्ज्वलता का मुझे कुछ ज्ञान नही।
इस जन्म मरण के रोग की पहचान नहीं ॥
नमिनाथ जिनेन्द्र महान त्रिभुवन के स्वामी।
दो मुझे भेद विज्ञान हे अन्तर्यामी ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री नमिनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल नि।

निज की शीतलता का मुझे कुछ ध्यान नहीं।
इस भव आतप के ताप की पहचान नही ॥नमिनाथजिनेन्द्र॥२॥

ॐ ह्रीं श्री नमिनाथ जिनेन्द्राय ससारताप विनाशनाय चदन नि।

निज की अखडता का मुझे प्रभु भान नहीं।
अक्षय पद की भी तो मुझे पहचान नहीं ॥नमिनाथजिनेन्द्र॥३॥

ॐ ह्रीं श्री नमिनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्ताय अक्षत नि।

निज शील स्वभावी द्रव्य का भी ज्ञान नही।
इस काम व्याधि विकराल की पहचान नहीं ॥नमिनाथजिनेन्द्र॥४॥

ॐ ह्रीं श्री नमिनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि।

जिन आत्मतत्व परिपूर्ण का भी ध्यान नहीं।
इस क्षुधारोग दुखपूर्ण की पहचान नहीं ॥नमिनाथजिनेन्द्र॥५॥

ॐ ह्रीं श्री नमिनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि।

ध्रुव की महिमा जाग्रत हो तो ध्रुव धाम दृष्टि मे आता है।
ध्रुव की धुन होते ही प्रचड यह जीव सिद्ध पद पाता है॥

निज ज्ञान प्रकाशक सूर्य का भी ज्ञान नहीं।
मिथ्यात्व मोह के व्योम की पहचान नहीं॥
नमिनाथ जिनेन्द्र महान त्रिभुवन के स्वामी।
दो मुझे भेद विज्ञान हे अन्तर्यामी॥६॥

ॐ ह्रीं श्री नमिनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि।

निर्दोष निरंजन रूप का भी भान नही।
यह कर्म कलंक अनादि की पहचान नहीं॥॥नमिनाथजिनेन्द्र॥७॥

ॐ ह्रीं श्री नमिनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म विध्वसनाय धूप नि।

निज अनुभव मोक्षस्वरूप का प्रभु ध्यान नही।
निज द्रव्य अनादि अनंत की पहचान नहीं॥नमिनाथजिनेन्द्र॥८॥

ॐ ह्रीं श्री नमिनाथ जिनेन्द्राय महामोक्ष प्रासाय फल नि।

निज चिदानन्द चैतन्य पद का ज्ञान नहीं।
अकलंक अडोल अनर्घ की पहचान नही॥नमिनाथजिनेन्द्र॥९॥

ॐ ह्रीं श्री नमिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घपद प्रासाय अर्घ्य नि।

श्री पंचकल्याणक

हुआ आगमन मात महादेवी उर में अपराजित त्याग।
स्वप्नफलों को जानजगा नृप विजयराज को अतिअनुराग॥
आश्विन कृष्णा द्वितीया के दिन हुआ गर्भ मगल विख्यात।
जय नमि जिनवर रत्न वृष्टि से होता निज आनन्दप्रभात॥१॥

ॐ ह्रीं श्री आश्विन कृष्णद्वितीया गर्भमगलप्रासाय श्री नमिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्य नि

चार प्रकार सुरों के गृह में आनन्द वाद्य हुए झंकृत।
सिंहासन हिल उठा इन्द्र का तीनों लोक हुए क्षोभित॥
नमिजिन जन्म पुरीमिथिला में जान हुए सुरगण पुलकित।
शुभ अषाढ कृष्ण दशमी को जिन अभिषेक किया हर्षित॥२॥

ॐ ह्रीं श्री अषाढकृष्णदशम्या जन्ममगल प्रामाय श्री नमिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्य नि

शुभ आषाढ कृष्ण दशमी को नमिजिन उर वैराग्य जगा।
उल्कापात देखकर प्रभु के मन मे भव का राग भगा॥
लौकान्तिक ने अभिनन्दनकर प्रभु का जय जयकार किया।
वन जा मौलश्री तरु नीचे सयम अंगीकार किया॥३॥

ॐ ह्रीं श्री अषाढकृष्णदशम्या तपो मगल प्रासाय श्री नमिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्य नि

हानि लाभ यश अपयश दुख सुख मे समता का गीत सुहाए।
राग द्वेष से विमुख बने तो नर पर्याय सफल हो जाए॥

मगसिर सुदि एकादशी प्रभु ने शुक्ल ध्यानध्याया।
वीतराग सर्वज्ञ हुए प्रभु केवलज्ञान पूर्ण पाया॥
समवशरण में सतरह गणधरप्रमुख सुप्रभ गणधर गुणवान।
मुख्यआर्यिका मार्गिणी, नमिजिनवर का सब गाते जयगान॥४॥

ॐ ह्रीं श्री मगसिरसुदीएकादशी दिने ज्ञानमगल प्राप्ताय श्री नमिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि

चतुर्दशी वैशाख कृष्ण की धारा प्रतिमायोग महान।
सर्व कर्म क्षयकर नमिजिन ने पाया मोक्ष स्वपद निर्माण॥
गिरि सम्मेदशिखर पर गूंजा इन्द्रादिक सुर का जयकार।
कूट मित्रधर से पद पाया अविनाशी अनन्त अविकार॥५॥

ॐ ह्रीं श्री वैशाखकृष्णचतुर्दश्या मोक्षमगल प्राप्ताय श्री नमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि

जयमाला

इक्कीसवे तीर्थकर नमिनाथ देव हैं आप महान।
मतिश्रुत अवधिज्ञान के धारीजन्मे जय जय दयानिधान॥
गृह परिवार राज्य सुख से वैराग्य जगा अंतस्तल में।
शुद्ध भावना द्वादश भा सब कुछ त्यागा प्रभु दो पल मे॥२॥
वस्त्राभूषण त्याग आपने पचमुष्टि कचलोच किया।
उन केशों को क्षीरोदधि में सुरपति ने जा क्षेप दिया॥३॥
नगर वीरपुर दत्तराज नृप ने प्रभु को आहार दिया।
प्रभु कर मे पयधारा दे सारा पातक संहार किया॥४॥
ज्ञान मन. पर्यय को पाया प्रभु छद्मस्थ रहे नवमास।
केवलज्ञान लब्धि को पाया शुक्ल ध्यानधर किया विकास॥५।
दे उपदेश भव्य जीवों को मोक्षमार्ग प्रभु दिखलाया।
शेष अघाति कर्म भी नाशे सिद्ध स्वपद को प्रगटाया॥६॥
यह संसार भ्रमण का चक्कर सदा सदा है अतिदुखदाय।
अशुभ कर्म परिणामों से ही मिलती है नारक पर्याय॥७॥
किचित शुभ मिश्रित माया परिणामों से होता तिर्यन्च।
शुभपरिणामों से सुर होता उसमें भी सुख कही न रंच॥८॥

भोगो की परिसीमित करने अनासक्ति के भाव जगा।
वीतरागता का फल पाने को विराग के बीज उगा॥

मिश्र शुभाशुभ परिणामों से होती है मनुष्य पर्याय।
शुद्ध आत्म परिणामों से होती है प्रकट सिद्ध पर्याय॥९॥
मै अपने परिणाम सुधारूँ पच महाव्रत ग्रहण करूॅ।
उग्रतपस्या संवरमय कर कर्म निर्जरा शीघ्र करूॅ॥१०॥
धर्म ध्यान चारों प्रकार का अन्तर मे प्रत्यक्ष धरूॅ।
चौंसठ ऋद्धि सहजमिल जाती किन्तु न उनका लक्ष्य करूॅ॥११॥
बुद्धि ऋद्धि अष्टादश होती क्रिया ऋद्धि नव मिल जाती।
ऋद्धि विक्रिया ग्यारह होती तीन ऋद्धि बल की आती है॥१२॥
सात ऋद्धियॉ-तप की मिलती अष्टऋद्धि औषधिहोती।
छहरस त्रिद्धि शीघ्र मिल जाती दो अक्षीण ऋद्धि होती॥१३॥
ऋद्धि सिद्धियों मे ना अटकू शुक्लध्यानमय ध्यान धरूॅ।
दोष अठारह रहित बनूॅ मै चार घाति अवसान करूॅ॥१४॥
पा नव केवल लब्धि रमा प्रभु वीतराग अरहन्त बनूॅ।
बनू पूर्ण सर्वज्ञदेव मै मुक्तिकंत भगवत बनूॅ॥१५॥
यही विनय है यही भावना यही लक्ष्य है अब मेरा।
जिन सिद्धत्वरुप प्रगटाऊँगा जो है त्रिकाल मेरा॥१६॥
ॐ ह्री श्री नमिनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं नि स्वाहा।
उत्पलनील कमल शोभित हैं चरणसिह नमिनाथ ललाम।
निज स्वभाव का जो आश्रय लेते वे पाते शिव सुखधाम॥

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्रीं श्री नमिनाथ जिनेन्द्राय नम।

卐

श्री नेमिनाथ जिनपूजन

जय श्री नेमिनाथ तीर्थंकर बाल ब्रह्मचारी भगवान।
हे जिनराज परम उपकारी करूणा सागर दया निधान॥
दिव्यध्वनि के द्वारा हे प्रभु तुमने किया जगतकल्याण।
श्री गिरनार शिखर से पाया तुमने सिद्धस्वपद निर्वाण॥

साम्यभाव रस की धारा से अतर को प्रक्षालित कर।
तम को हर ज्योतिर्मय बन अमरत्व शक्ति सचालित कर ।।

आज तुम्हारे दर्शन करके निज स्वरूप का आया ध्यान।
मेरा सिद्ध समान सदा पद यह दृढ निश्चय हुआ महान ।।

ॐ ह्री श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय अत्र अवतर-अवतर सवौषट्, अत्र तिष्ट तिष्ठ ठ ठ अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

समकित जल की धारा से तो मिथ्याभ्रम धुलजाता है।
तत्वो का श्रद्धान स्वयं को शाश्वत मंगल दाता है ।।
नेमिनाथ स्वामी तुम पद पंकज की करता हूँ पूजन।
वीतराग तीर्थंकर तुमको कोटि कोटि मेरा वन्दन ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय मिथ्यात्वमल विनाशनाय जल नि ।

सम्यक् श्रद्धा का पावन चन्दन भव ताप मिटाता है।
क्रोध कषाय नष्ट होती है निज की अरुचि हटाता है ।।नेमि.।।२।।

ॐ ह्री श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय क्रोधकषाय विनाशनाय चदन नि ।

भाव शुभाशुभ का अभिमानी मान कषाय बढाता है।
वस्तु स्वभाव जान जाता तो मान कषाय मिटाता है।।नेमि.।।३।।

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय मानकषाय विनाशनाय अक्षत नि ।

चेतन छल से परभावों का माया जाल बिछाता है।
भव भव की माया कषाय को समकित पुष्प मिटाता है।।नेमि.।।४।।

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय मायाकषाय विनाशनाय पुष्प नि ।

तृष्णा की ज्वाला से लोभी नहीं सुख पाता है।
सम्यक् चरु से लोभ नाशकर यह शुचिमय हो जाता है।।नेमि.।।५।।

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय लोभकषाय विनाशनाय नैवेद्य नि ।

अन्धकार अज्ञान जगत मे भव भव भ्रमण कराता है।
समकित दीप प्रकाशित हो तो ज्ञाननेत्र खुल जाता है।।नेमि.।।६।।

ॐ ह्री श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि ।

पर विभाव परिणति में फंसकर निज काधुआं उडाता है।
निज स्वरूप की गध मिले तो पर की गंध जलाता है।।नेमि.।।७।।

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय विभाव परिणति विनाशनाय धूप नि ।

निज स्वभाव फल पाकर चेतन महामोक्ष फल पाता है।
चहुंगति के बंधन कटते हैं सिद्ध स्वपद आ जाता है।।नेमि.।।८।।

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय महा मोक्षफल प्राप्ताय फल नि ।

नैसर्गिक अधिकार जीव का पूर्ण निराकुल सुख की प्राप्ति।
एक शुद्ध चैतन्य ज्ञान धन सुख सागर मे दुख की नास्ति।।

जल फलादि वसु द्रव्य अर्घ से लाभ न कुछ हो जाता।
जब तक निज स्वभाव में चेतन मग्न नहीं हो पाता।। नेमि.।।९।।

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि।

श्री पंचकल्याणक

कार्तिक शुक्ला षष्ठी के दिन शिव देवी उर धन्य हुआ।
अपराजित विमान से चयकर आये मोद अनन्य हुआ।
स्वप्न फलों को जान सभी के मन में अति आनन्द हुआ।
नेमिनाथ स्वामी का गर्भोत्सव मंगल सम्पन्न हुआ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री कार्तिकशुक्ल षष्ठया गर्भमगल प्राप्ताय श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि।

श्रावण शुक्ला षष्ठी के दिन शौर्यपुरी मे जन्म हुआ।
नृपति समुद्रविजय आगन में सुर सुरपति का नृत्य हुआ।।
मेरु सुदर्शन पर क्षीरोदधि जल से शुभ अभिषेक हुआ।
जन्म महोत्सव नेमिनाथ का परम हर्ष अतिरेक हुआ।।२।।

ॐ ह्रीं श्री श्रावणशुक्ल षष्ठया जन्ममगल प्राप्ताय श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि।

श्रावण शुक्ल षष्टमी को प्रभु पशुओं पर करुणा आई।
राजमती तज सहस्त्राम्र वन मे जा जिन दीक्षा पाई।।
इन्द्रादिक ने उठा पालिकी हर्षित मगलचार किया।
नेमिनाथ प्रभु के तप कल्याणक पर जय जयकार किया।।३।।

ॐ ह्रीं श्री श्रावणशुक्ल षष्ठया तपोमगल प्राप्ताय श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि।

आश्विन शुक्ला एकम को प्रभु हुआ ज्ञान कल्याण महान।
उर्जयंत पर समवशरण में दिया भव्य उपदेश प्रधान।।
ज्ञानावरण, दर्शनावरणी मोहनीय का नाश किया।
नेमिनाथ ने अन्तराय क्षयकर कैवल्य प्रकाश लिया।।४।।

ॐ ह्री श्री आश्विन शुक्ल प्रतिपदाया ज्ञानमगल प्राप्ताय श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि।

व्यसन मुक्त होते ही तेरा अतरग उज्ज्वल होगा।
स्वपर दृष्टि होते ही तेरा अतरमन निर्मल होगा ॥

श्री गिरनार क्षेत्र पर्वत से महामोक्ष पद को पाया।
जगती ने आषाढ शुक्ल सप्तमी दिवस मंगल गाया ॥
वेदनीय अरु आयु नाम अरु गोत्र अवसान किया।
अष्टकर्म हर नेमिनाथ ने परम पूर्ण निर्वाण लिया ॥५॥

ॐ ह्रीं श्री आषाढशुक्लसप्तम्या मोक्षमगल प्राप्ताय श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

जयमाला

जय नेमिनाथ नित्योदित जिन, जयनित्यानन्द नित्य चिन्मय।
जय निर्विकल्प निश्चल निर्मल, जय निर्विकार नीरज निर्मय ॥१॥
नृपराज समुद्र विजय के सुत माता शिव देवी के नन्दन।
आनन्द शौर्यपुरी में छाया जय-जय से गूजा पाण्डुक वन ॥२॥
बालकपन मे क्रीडा करते तुमने धारे अणुव्रत सुखमय।
द्वारिकापुरी मे रहे अवस्था पाई सुन्दर यौवन वय ॥
आमोद-प्रमोद तुम्हारे लख पूरा यादव कुल हर्षाता।
तब श्री कृष्ण नारायण ने जूनागढ से जोडा नाता ॥४॥
राजुल के परिणय करने को जूनागढ पहुचे वर बनकर।
जीवो की करुण पुकार सुनी जागा उर में वैराग्य प्रखर ॥५॥
पशुओ को बन्धन मुक्त किया कंगन विवाह का तोड दिया।
राजुल के द्वारे आकर भी स्वर्णिम रथ पीछे मोड लिया ॥६॥
रथत्याग चढे गिरनारी पर जा पहुँचे सहस्त्राम् वन मे।
वस्त्राभूषण सब त्याग दिये जिन दीक्षाधारी तनमन मे ॥७॥
फिर उग्र तपस्या के द्वारा निश्चय स्वरुप मर्मज्ञ हुए।
घातिया कर्म चारो नाशे छप्पन दिन मे सर्वज्ञ हुए ॥८॥
तीर्थंकर प्रकृतिउदय आई सुरहर्षित समवशरण रचकर।
प्रभु गधकुटी में अतरीक्ष आसीन हुए पद्मासन धर ॥९॥
ग्यारह गणधर मे थे पहले गणधर वरदत्त महाऋषिवर।
थी मुख्य आर्यिका राजमती श्रोता थे अगणित भव्यप्रकर ॥१०॥

दिव्यध्वनि खिरने लगी शाश्वत ओंकार धन गर्जन सी ।
शुभ बारहसभा बनी अनुपम सौंदर्यप्रभा मणि कंचनसी ।।११।।
जगजीवों का उपकार किया भूलों को शिव पथ बतलाया ।
निश्चय रत्नत्रय की महिमा का परम मोक्षफलदर्शाया ।।१२।।
कर प्राप्त चतुर्दश गुणस्थान योगों का पूर्णआश्रव किया ।
कर उर्ध्वगमन सिद्धत्व प्राप्तकर सिद्धलोक आवास लिया ।।१३।।
गिरनार शैल से मुक्त हुए तन के परमाणु उडे सारे ।
पावन मंगल निर्वाण हुआ सुरगण के गूंजे जयकारे ।।१४।।
नख केश शेष थे देवो ने माया मय तन निर्वाण किया ।
फिर अग्निकुमार सुरोने आकर मुकुटानल से तन निर्वाण किया ।।१५।।
पावनभस्मी का निज-निज के मस्तकपर सबने तिलक किया ।
मगल वाद्यो की ध्वनि गूंजी निर्वाणमहोत्सव पूर्णकिया ।।१६।।
कर्मो के बंधन टूट गये पूर्णत्व प्राप्त कर सुखी हुए ।
हम तो अनादि से है स्वामी भवदुख बंधन से दुखी हुए ।।१७।।
ऐसा अन्तरबल दो स्वामी हम भी सिद्धत्व प्राप्त कर ले ।
तुम पदचिन्हो पर चल प्रभुवर शुभ-अशुभ विभावों को हर ले ।।१८।।
परिणाम शुद्ध का अर्चनकर हम अन्तरध्यानी बन जावें ।
घातिया चार कर्मो को हर हम केवलज्ञानी बन जावें ।१९।।
शाश्वत शिवपद पाने स्वामी हम पास तुम्हारे आजायें ।
अपने स्वभाव के साधन से हम तीनलोक पर जयपाये ।।२०।।
निज सिद्धस्वपद पाने को प्रभुहर्षित चरणो मे आया हूँ ।
वसु द्रव्य सजाकर नेमीश्वर प्रभु पूर्ण अर्घ मै लाया हूँ ।।२१।।

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं नि स्वाहा ।

शख चिन्ह चरणो मे शोभित जय जय नेमि जिनेश महान ।
मन वच तन जो ध्यान लगाते वे हो जाते सिद्ध समान ।।

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय नम

आत्म सस्थित होना ही है मानव जीवन का उद्देश्य।
अनुसधाता बनो सत्य के उसके भीतर करो प्रवेश ॥

श्री पार्श्वनाथजिन पूजन

तीर्थकर श्री पार्श्वनाथ प्रभु के चरणों मे करूँ नमन।
अश्वसेन के राजदुलारे वामादेवी के नन्दन ॥
बाल ब्रह्मचारी भवतारी योगीश्वर जिनवर वन्दन।
श्रद्धा भाव विनय से करता श्री चरणो का मैं अर्चन ॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र अत्र अवतर-अवतर सवौषट, ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ। ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट।

समकित जल से तो अनादि की मिथ्याभ्राति हटाऊँ मैं।
निज अनुभव से जन्ममरण का अन्त सहज पाजाऊँ मै ॥
चिन्तामणि प्रभु पार्श्वनाथ की पूजन कर हर्षाऊँ मै।
सकटहारी मगलकारी श्री जिनवर गुण गाऊँ मै ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल नि।

तन की तपन मिटाने वाला चन्दन भेट चढाऊँ मैं।
भव आताप मिटाने वाला समकित चन्दन पाऊँ मै ॥चिन्ता ॥२॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय ससारताप विनाशनाय चदन नि।

अक्षत चरण समर्पित करके निजस्वभाव में आऊँ मैं।
अनुपम शान्त निराकुल अक्षय अविनश्वर पद पाऊँ मैं ॥चिन्ता.॥३॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्रासाय अक्षत नि।

अष्ट अगयुत सम्यक्दर्शन पाऊँ पुष्प चढाऊँ मै।
कामबाण विध्वस करूँ निजशील स्वभाव सजाऊँ ॥चिन्ता. ॥४॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि।

इच्छाओ की भूख मिटाने सम्यक् पथ पर आऊँ मै।
समकित का नैवेद्य मिले तो क्षुधारोग हर पाऊँ मै ॥चिन्ता.॥५॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि।

मिथ्यातम के नाश हेतु यह दीपक तुम्हे चढाऊँ मै।
समकित दीप जले अन्तर मे ज्ञानज्योति प्रगटाऊँ मै ॥चिन्ता.॥६॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि।

यदि अमरत्व प्राप्त करना है मृत्युन्जयी बनो सत्वर।
इन्द्रिय निग्रह सहित मनोनिग्रह से लो पापो को हर ।।

समकित धूप मिले तो भगवन् शुद्ध भाव में आऊँ मैं।
भाव शुभाशुभ धूम्र बने उड जायें धूप चढाऊँ मैं।।
चिन्तामणि प्रभु पार्श्वनाथ की पूजन कर हर्षाऊँ मैं।
संकटहारी मंगलकारी श्री जिनवर गुण गाऊँ मै ।।७।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म विध्वसनाय धूप नि ।

उत्तमफल चरणों में अर्पित आत्मध्यान ही ध्याऊँ मैं।
समकित का फल महामोक्षफल प्रभुअवश्य पा जाऊँ ।।८।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्ताय फल नि

अष्ट कर्म क्षय हेतु अष्ट द्रव्यों का अर्घ बनाऊँ मै।
अविनाशी अविकारी अष्टम वसुधापित बन जाऊँ मै ।।चिन्ता ।।९।।

ॐ ही श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्य नि ।

श्री पंचकल्याणक

प्राणत स्वर्ग त्याग आये माता वामा के उर श्रीमान।
कृष्ण दूज वैशाख सलोनी सोलह स्वप्न दिखे छविमान ।।
पन्द्रह मास रत्न बरसे नित मंगलमयी गर्भ कल्याण।
जय जय पार्श्वजिनेश्वर प्रभु परमेश्वर जयजय दया निधान ।।१।।

ॐ ह्रीं बैशाखकृष्ण द्वितीया गर्भकल्याणक प्राप्ताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्य नि ।

पौष कृष्ण एकादशमी को जन्मे, हुआ जन्म कल्याण।
ऐरावत गजेन्द्र पर आये तब सौधर्म इन्द्र ईशान ।।
गिरि सुमेरु पर क्षीरोदधि से किया दिव्यअभिषेक महान।
जय जय पार्श्वजिनेश्वरप्रभु परमेश्वर जय जय दयानिधि ।।२।।

ॐ ह्रीं पौषकृष्णएकादश्या जन्मकल्याणक प्राप्ताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्य नि ।

बाल ब्रह्मचारी व्रतधारी उर छाया वैराग्य प्रधान।
लौकांतिक देवों ने आकर किया आपका जय जय गान ।।
पौष कृष्ण एकदशमी को हुआ आपका तप कल्याण।
जय जय पार्श्व जिनेश्वरप्रभु परमेश्वर जय जय दयानिधान ।।३।।

ॐ ह्रीं पौषकृष्ण एकादश्या तपकल्याणक प्राप्ताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्य नि ।

कमठ जीव ने अहिक्षेत्र पर किया घोर उपसर्ग महान।
हुए न विचलित शुक्ल ध्यानधर श्रेणी चढे हुए भगवान ।।
चैत्र कृष्ण की चौथ हो गई पावन प्रगट केवलज्ञान।
जय जय पार्श्व जिनेश्वर प्रभु परमेश्वर जय जय दयानिधान ।।४।।

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्ण चतुर्थी दिनेज्ञानकल्याणक प्राप्ताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

श्रावण शुक्ल सप्तमी के दिन बने अयोगी हे भगवान।
अन्तिम शुक्ल ध्यानधर सम्मेदाचल से पाया पदनिर्वाण ।।
कूट सूवर्णभद्र पर इन्द्रादिक ने किया मोक्ष कल्याण।
जय जय पार्श्व जिनेश्वरप्रभु परमेश्वर जय जय दयानिधान ।।५।।

ॐ ह्री श्रावणशुक्ल सप्तम्या मोक्षकल्याणक प्राप्ताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

जयमाला

तेईसवे तीर्थकर प्रभु परम ब्रह्ममय परम प्रधान।
प्राप्त महा कल्याणपंचक · पार्श्वनाथ प्रणतेस्वर प्राण ।।१।।
वाराणसी नगर अति सुन्दर शिवसेन नृप परम उदार।
ब्राह्मी देवी के घर जन्मे जग मे छाया हर्ष अपार ।।२।।
मति श्रुति अवधि ज्ञान के धारी बाल ब्रह्मचारी त्रिभुवम।
अल्प आयु मे दीक्षाधर कर पच महाव्रत धरे महान ।।३।।
चार मास छद्मस्थ मौन रह वीतराग अरहन्त हुए।
आत्म ध्यान के द्वारा प्रभु सर्वज्ञ देव भगवन्त हुए ।।४।।
बैरी कमठ जीव ने तुमको नौ भव तक दुख पहुँचाया।
इस भव मे भी सवर सुर हो महा विध्न करने आया ।।५।।
किया अग्निमय घोर उपद्रव भीषण झझावत चला।
जल प्लावित हो गई धरा पर ध्यान आपका नहीं हिला ।।६।।
यक्षी पद्मावती यक्ष धरणेन्द्र विध्न हरने आये।
पूर्व जन्म के उपकारों से हो कृतज्ञ तत्क्षण आये ।।७।।

लोभ जीत सतोष शक्ति से तू फिर होगा कभी न क्लॉत।
मोह क्षोभ के क्षय होते ही कर्मो का होगा प्राणात ॥

प्रभु उपसर्ग निवारण के हित शुभ परिणाम हृदय छाये।
फण मण्डप अरु सिहासन रच जय जय जयप्रभु गुणसाये ॥८॥
देव आपने साम्य भाव धर निज स्वरूप को प्रगटाया।
उपसर्गो पर जय पाकर प्रभु निज कैवल्य स्वपद पाया ॥९॥
कमठ जीव की माया विनशी वह भी चरणो में आया।
समवशरण रचकर देवो ने प्रभु का गौरव प्रगटाया ॥१०॥
जगत जनो को ओंकार ध्वनिमय प्रभु ने उपदेश दिया।
शुद्ध बुद्ध भगवान आत्मा सबकी है सदेश दिया ॥११॥
दश गणधर थे जिनमें पहले मुख्य स्वयभू गणधर थे।
मुख्य आर्यिका सुलोचना थी श्रोता महासेन वर थे ॥१२॥
जीव, अजीव, आश्रव, सवर बन्ध निर्जरा मोक्ष महान।
ज्यो का त्यो श्रद्धान तत्व का सम्यक्दर्शन श्रेष्ठ प्रधान ॥१३॥
जीव तत्व तो उपादेय है, अरु अजीव तो है सब ज्ञेय।
आश्रव बन्ध हेय है साधन सवर निर्जर मोक्ष उपाये ॥१४॥
सात तत्व ही पाप पुण्य मिल नव पदार्थ हो जाते है।
तत्व ज्ञान बिन जग के प्राणी भव-भव में दुख पाते है ॥१५॥
वस्तु तत्व को जान स्वयं के आश्रय में जो आते है।
आत्म चितवन करके वे ही श्रेष्ठ मोक्ष पद पाते है ॥१६॥
हे प्रभु' यह उपदेश आपका मै निज अन्तर मे लाऊँ।
आत्मबोध की महाशक्ति से मै निर्वाण स्वपद पाऊँ ॥१७॥
अष्ट धर्म को नष्ट करूँ मै तुम समान प्रभु बन जाऊँ।
सिद्ध शिला पर सदा विराजूँ निज स्वभाव मे मुस्काऊँ ॥१८॥
इसी भावना से प्रेरित हो हे प्रभु ' की है यह पूजन।
तुव प्रसाद से एक दिवस मै पा जाऊँगा मुक्ति सदन ॥१९॥

ॐ ह्रीं श्री गर्भजन्मतज्ञाननिर्वाण कल्याणक प्राप्ताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं नि।

सर्प चिन्ह शोभित चरण पार्श्वनाथ उर धार।
मन, वच, तन जो पूजते वे होते भव पार ॥२०॥

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नम।

भाव शुभाशुभ रहित हृदय को गहन शान्ति होती है प्राप्त।
निर्मलता बढ़ती जाती है हो जाता उर सुख से व्याप्त ॥

श्री महावीर जिन पूजन

वर्धमान सुवीर वैशालिक श्री जिनवीर को।
वीतरागी तीर्थंकर हितंकर अतिवीर को ॥
इन्द्र सुर नर देव वंदित वीर सन्मति धीर को।
अर्चना पूजा करूँ मैं नमन कर महावीर को ॥
नष्ट हो मिथ्यात्व प्रगटाऊँ स्वगुण गम्भीर को ॥
नष्ट हो मिथ्यात्व प्रगटाऊँ स्वगुण गम्भीर को।
नीर क्षीर विवेक पूर्वक हरूँ भव क पीर को ॥

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्र अत्र अवतर-अवतर सवौषट्, ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ । ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

जल से प्रभु प्यासबुझाने का झूठा अभिमान किया अब तक।
परआश पिपासा नहीं बुझी मिथ्या भ्रममान किया अब तक ॥
भावो का निर्मल जल लेकर चिर तृषा मिटाने आया हूँ।
हे महावीर स्वामी ' निज हित में पूजन करने आया हूँ ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल नि ।

शीतलता हित चंदन चर्चित निज करता आया था अबतक।
निज शीतलस्वभाव नहीं समझा परभाव सुहाया था अब तक ॥
निजभावों का चंदन लेकर भवताप हटाने आया हूँ ॥हे महावीर ॥२॥

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय ससारतापविनाशनाय चदन नि ।

भौतिक वैभव का छाया में निज द्रव्य भुलाया था अब तक।
निजपद विस्मृतकर परपद का ही राग बढाया था अब तक ॥
भावो के अक्षत लेकर मैं अक्षय पद पाने आया हूँ ॥हेमहावीर ॥३॥

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षत नि ।

पुष्पो की कोमल मादकता में पडकर भरमाया अब तक।
पीडा न काम की मिटी कभी निष्काम न बन पाया अब तक ॥
भावो के पुष्प समर्पित कर मैं काम नशाने आया हूँ ॥हेमहावीर ॥४॥

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि ।

जो चलता है वह समीप है जो न चला वह तो है दूर।
आत्मा के साक्षात्कार की विधि है ज्ञान कला भरपूर ।।

नैवेद्य विविध खाकर भी तो यह दुख न मिटपाई अब तक।
तृष्णा का उदर न भरपाया, पर की महिमा गाई अब तक ।।
भावों के चरु लेकर अब मैं तृष्णाग्निबुझाने आया हूँ ।।
हे महावीर स्वामी ! निज हित में पूजन करने आया हूँ ।।५।।
ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य नि ।
मिथ्याभ्रम अन्धकारछाया सन्मार्ग न मिल पाया अबतक।
अज्ञान अमावस के कारण निज ज्ञान न लख पाया अबतक ।।
भावों का दीप जला अन्तर आलोक जगाने आया हूँ।।हेमहावीर।।६।।
ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय मोहाधकार विनाशनाय दीप नि ।
कर्मो की लीला मे पडकर भवभार बढाया है अब तक।
संसार द्वंद के फंदे से निज धूम्र उडाया है अब तक ।।
भावों की धूप चढाकर मैं वसु कर्म जलाने आया हूँ।।हेमहावीर ।।७।।
ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूप नि ।
सयोगी भावो से भव ज्वाला में जलता आया अब तक।
शुभ के फल में अनुकूल सयोगो को पा इतराया अब तक ।।
भावों का फल ले निजस्वभाव काशिव फुलपाने आया हूँ।।हेमहावीर।।८।।
ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्ताय फल नि ।
अपने स्वभाव के साधन का विश्वास नहीं आया अब तक।
सिद्धत्व स्वयं से आता है आभास नही पाया अब तक ।।
भावों का अर्घ्य चढाकर मै अनुपमपद पाने आया हूँ।।हेमहावीर।।९।।
ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्य नि ।

श्री पंचकल्याणक

धन्य तुम महावीर भगवान धन्य तुम वर्धमान भगवान।
शुभ आषाढ शुक्ला षष्ठी को हुआ गर्भ कल्याण ।।
माँ त्रिशला के उर में आये भव्य जनों के प्राण।
धन्य तुम महावीर भगवान ।।१।।
ॐ ह्रीं श्री आषाढशुक्लाषष्ठया गर्भमगल प्राप्ताय महावीरजिनेन्द्राय अर्घ्य नि ।
चैत्र शुक्ल शुभ त्रयोदशी का दिवस पवित्र महान।
हुए अवतरित भारत भू पर जग को दुखमय जान ।।धन्य.।।२।।
ॐ ह्री श्री चैत्रशुक्लत्रयोदश्या जन्मकल्याणक प्राप्ताय महावीरजिनेन्द्राय अर्घ्य नि ।

धर्मात्मा को जग मे अपना केवल शुद्धातम प्रिय है।
निज स्वभाव ही उपादेय है और सभी कुछ अप्रिय है ॥

जग को अथिर जान छाया मन में वैराग्य महान।
मगसिर कृष्णदशमी के दिन तप हित किया प्रयाण ॥धन्य॥३॥
ॐ ह्रीं श्री मगसिर कृष्णदशम्या तपकल्याणक प्राप्ताय महावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।
शुक्ल ध्यान के द्वारा करके कर्म घाति अवसान।
शुभ वैशाख शुक्ल दशमी को पाया केवलज्ञान ॥धन्य॥४॥
ॐ ह्रीं श्री बैशाखशुक्ल दशम्या ज्ञानकल्याणक प्राप्ताय महावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।
श्रावण कृष्ण एकम के दिन दे उपदेश महान।
दिव्यध्वनि से समवशरण मे किया विश्व कल्याण ॥धन्य. ॥५॥
ॐ ह्रीं श्रावणकृष्णएकम् दिव्यध्वनि प्राप्ताय महावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।
कार्तिक कृष्ण अमावस्या को पाया पद निर्वाण।
पूर्ण परम पद सिद्ध निरन्जन सादि अनन्त महान ॥धन्य.॥६॥
ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णअमावश्या मोक्षपद प्राप्ताय महावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

जयमाला

जयमहावीर त्रिशला नन्दन जय सन्मति वीर सुवीर नमन।
जय वर्धमान सिद्धार्थ तनय जय वैशालिक अतिवीर नमन ॥१॥
तुमने अनादि से नित निगोद के भीषण दुख को सहन किया।
त्रस हुए कई भव के पीछे पर्याय मनुज मे जन्म लिया ॥२॥
पुरुरवा भील के जीवन से प्रारम्भ कहानी होती है।
अनगिनती भव धारे जैसी मति हो वैसी गति होती है॥३॥
पुरुषार्थ किया पुण्योदय से तुम भरत पुत्र मारीच हुए।
मुनि बने और फिर भ्रमित हुए शुभ अशुभभाव के बीच हुए ॥४॥
फिर तुम त्रिपृष्ठ नारायण बन, हो गये अर्धचक्री प्रधान।
फिर भी परिणाम नहीं सुधरे भव भ्रमण किया तुमने अजान ॥५॥
फिर देव नरक त्रिर्यन्च मनुज चारोगतियों में भरमाये।
पर्याय सिंह की पुन मिली पांचों समवाय निकट आये ॥६॥
अजितंजय और अमितगुण चारणमुनि नभ से भूपरआये।
उपदेश मिला उनका तुमको नयनों में आंसू भर आये ॥७॥

इन्द्रिय सुख दुखमयी जानकर चलो अतीन्द्रिय सुख के देश।
पूर्ण अतीन्द्रिय शुद्ध आत्मा के भीतर अब करो प्रवेश ।।

सम्यक्त्व हो गया प्राप्त तुम्हें, मिथ्यात्व गया, व्रतग्रहण किया।
फिर देव हुए तुम सिहकेतु सौधर्म स्वर्ग मे रमण किया ।।८।।
फिर कनकोज्ज्वलविद्याधर हो मुनिव्रत से लातवस्वर्ग मिला।
फिर हुए अयोध्या के राजा हरिषेण साधुपद हृदयखिला ।।९।।
फिर महाशुक्र सुरलोक मिला चयकरचक्री प्रियमित्र हुए।
फिर मुनिपद धारण करके प्रभु तुम सहस्त्रार मे देव हुए ।।१०।।
फिर हुए नन्दराजा मुनि बन तीर्थकर नाम प्रकृतिबाधी।
पुष्पोत्तर में हो अच्युतेन्द्र भावना आत्मा की साधी ।।११।।
तुम स्वर्गयान पुष्पोत्तर तज मां त्रिशला के उर में आये।
छह मास पूर्व से जन्मदिवस तक रत्न इन्द्र ने बरसाये ।।१२।।
वैशाली के कुण्डलपुर मे हे स्वामी तुमने जन्म लिया।
सुरपति ने हर्षित गिरि सुमेरु पर क्षीरोदधि अभिषेककिया ।।१३।।
शुभ नाम तुम्हारा वर्द्धमान रख प्रमुदित हुआ इन्द्रभारी।
बालकपन मे क्रीडा करते तुम मति श्रुतिअवधिज्ञानधारी ।।१४।।
सजय अरु विजय महामुनियो को दर्शन का विचार आया।
शिशु वर्द्धमान के दर्शन मे शंका का समाधानपाया ।।१५।।
मुनिवर ने सन्मति नाम रखा वे नमस्कार कर चले गये।
तुम आठवर्ष की अल्पआयु मे ही अणुव्रत मे ढले गये ।।१६।।
सगम नामक एक देव परीक्षा हेतु नाग बनकर आया।
तुमने निशक उसके फणपर चढ नृत्यकिया वह हर्षाया ।।१७।।
तत्क्षण हो प्रगट झुकामस्तक बोला स्वामी शत शत वदन।
अति वीर वीर हे महावीर अपराधक्षमा कर दो भगवन् ।।१८।।
गजराज एक ने पागल हो आतकित सबको कर डाला।
निर्भय उस पर आरुढ हुए पल भर मे शान्त बनाडाला ।।१९।।
भव भोगो से होकर विरक्त तुमने विवाह से मुख मोडा।
बस बाल ब्रह्मचारी रहकर कदर्प शत्रु का मद तोडा ।।२०।।
जब तीस वर्ष के युवा हुए वैराग्य भाव जगा मन में।
लौकातिक आये धन्य धन्य दीक्षा ली ज्ञातखण्ड वन मे ।।२१।।

घर मे तेरे आग लगी है शीघ्र बुझा अब तो मतिमद।
विषय कषायो की ज्वाला मे अब तो जलना कर दे बद ॥

नृपराज बकुल के गृहजाकर पारणा किया गौ दुग्धलिया।
देवो ने पचाश्चर्य किये जन जन ने जय जयकार किया ॥२२॥
उज्जयनी की शमशानभूमि मे जाकर तुमने ध्यान किया।
सात्यि की तनय भव रुद्र कुपित हो गया महाव्यवधान किया ॥२३॥
घोर उपसर्ग रुद्र ने किया तुम आत्म ध्यान में रहे अटल।
नतमस्तक रुद्र हुआ तब ही उपसर्ग जयी हुए सफल ॥२४॥
कौशाम्बी मे उस सती चन्दना दासी का उद्धार किया।
हो गया अभिग्रह पूर्ण चन्दना के कर से आहार लिया ॥२५॥
नभ से पुष्पो की वर्षा लख नृप शतानीक पुलकित आये।
वैशाली नृप चेतक बिछुडी चन्दना सुता पा हर्षाये ॥२६॥
सगमक देव तुमसे हारा जिसने भीषण उपसर्ग किये।
तुम आत्मध्यान मे रहे अटल अन्तर में समता भाव लिये ॥२७॥
जितनी भी बाधाये आई उन सब पर तुमने जय पाई।
द्वादश वर्षों की मौन तपस्या और साधना फल लाई ॥२८॥
मोहारि जयी श्रेणी चढकर तुम शुक्ल ध्यान मे लीन हुए।
ऋजुकूला के तट पर पाया कैवल्यपूर्ण स्वाधीन हुए ॥२९॥
अपने स्वरूप मे मग्न हुए लेकर स्वभाव का अवलम्बन।
घातियाकर्म चारो नाशे प्रगटाया केवलज्ञान स्वधन ॥३०॥
अन्तर्यामी सर्वज्ञ हुए तुम वीतराग अरहन्त हुए।
सुरनरमुनि इन्द्रादिक बन्दित त्रैलोक्यनाथ भगवत हुए ॥३१॥
विपुलाचल पर दिव्यध्वनि के द्वारा जग कोउपदेश दिया।
जग की असारता बतलाकर फिर मोक्षमार्ग सदेश दिया ॥३२॥
ग्यारह गणधर मे हेस्वामी! श्री गौतम गणधर प्रमुख हुए।
आर्यिका मुख्य चदना सती श्रोता श्रेणिक नृप प्रमुख हुए ॥३३॥
सोई मानवता जागउठी सुर नर पशु सबका हृदय खिला।
उपदेशामृत के प्यासो को प्रभु निर्मल सम्यक् ज्ञान मिला ॥३४॥
निज आत्मतत्व के आश्रय से निजसिद्धस्वपदमिल जाता।
तत्वो के सम्यक् निर्णय से निज आत्मबोध हो जाता है ॥३५॥

टाल अरे तू पचाश्रव को पाल अरे तू पचाचार।
परम अहिंसा तप सयमधारी बन कर तज विषय विकार ॥

यह अनंतानुबंधी कषाय निज पर विवेक से जाती है।
बस भेदज्ञान के द्वारा ही रत्नत्रय निधि मिल जाती है ॥३६॥
इस भरतक्षेत्र में विचरण कर जगजीवों का कल्याण किया।
सद्दर्शन ज्ञान चारित्रमयी रत्नत्रय पथ अभियान किया ॥३७॥
तुम तीस वर्ष तक कर विहार पावापुर उपवन में आये।
फिर योग निरोध किया तुमने निर्वाण गीत सबने गाये ॥३८॥
चारों अघातिया नष्ट हुए परिपूर्ण शुद्धता प्राप्त हुई।
जा पहुंचे सिद्धशिलापर तुम दीपावली जग विख्यात हुई ॥३९॥
हे महावीर स्वामी! अब तो मेरा दुख से उद्धार करो।
भवसागर में डूबा हू मै हे प्रभु ! इस भव का भार हरो ॥४०॥
हे देव ! तुम्हारे दर्शनकर निजरुप आज पहिचाना है।
कल्याण स्वयं से ही होगा यह वस्तुतत्व भी जाना है ॥४१॥
निज पर विवेक जागा उर में समकित की महिमा आई है।
यह परम वीतरागी मुद्रा प्रभु मन मे आज सुहाई है ॥४२॥
तुमने जो सम्यक् पथ सबको बतलाया उसको आचरलूँ।
आत्मानुभूति के द्वारा मैं शाश्वत सिद्धत्व प्राप्त कर लूँ ॥४३ ॥
मै इसी भावना से प्रेरित होकर चरणो में आया हूँ।
श्रद्धायुत विनयभाव से मै यह भक्ति सुमनप्रभु लाया हूँ ॥४४॥
तुमको है कोटि कोटि सादर वन्दन स्वामी स्वीकार करो।
हे मंगल मूर्ति तरण तारण अब मेरा बेडा पार करो ॥४५ ॥

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्तायअर्घ्य नि ।

सिंह चिन्ह शोभित चरण महावीर उरधार।
मन, वच, तन जो पूजते वे होते भव पार ॥

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय नम ।

卐

नरक और पशु गति के दुख की सही वेदना सदा अपार।
स्वर्गों के नश्वर सुख पाकर भूला निज शिव सुख आगार ॥

श्री तीर्थंकर गणधरवलय पूजन

वृषभादिक श्री वीर जिनेश्वर तीर्थकर चौबीस महान।
इनके चौदह सौ उन्सठ गणधर को मैं वन्दूं धर ध्यान ॥
ऋद्धि सिद्धि मंगल के दाता गणधर चार ज्ञान धारी।
मति श्रुत अवधि मनः पर्यय ज्ञानी भव ताप पाप हारी ॥
पंच महाव्रत पच समिति त्रय गुप्ति सहित जग मे नामी।
आठों मद अरु सप्त भयों से रहित महामुनि शिवगामी ॥
बुद्धि बीज पादानुसारिणी आदि ऋद्धियों के स्वामी।
द्वादशाग की रचना करते सर्व सिद्धियों के धामी ॥
वृषभसेन आदिक गौतम गणधर को निजप्रति करूँ प्रणाम।
भक्तिभाव से चरण पूजकर मै पाऊँ सिद्धों का धाम ॥

ॐ ह्रीं श्री सर्व गणधर देव समूह अत्र अवतर अवतर सवौषट् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

एकत्व विभक्त आत्मा प्रभु निज वैभव से परिपूर्ण स्वयम्।
यह जन्ममरण से रहित ध्रौव्यशाश्वत शिवशुद्धस्वरुपपरम ॥
मै चौबीसों तीर्थंकर के गणधरों को करूँ नमन।
श्री द्वादशाग जिनवाणी के हे रचनाकार तुम्हें वन्दन ॥

ॐ ह्रीं श्री सर्वगणधरदेवाय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल नि।

है श्रुत परिचित अनुभूतभोग, बंधन की कथा सुलभ जग में।
भवताप हार एकत्वरूप, निज अनुभव अति दुर्लभ जग में ॥मैं.॥२॥

ॐ ह्रीं श्री सर्वगणधरदेवाय ससारतापविनाशनाय चदन नि।

निज ज्ञायक भाव नहीं प्रमत्त या अप्रमत्त है क्षण भर भी।
अक्षयअखंड निजनिधिस्वामी इसमें न राग है कणभर भी ॥मैं.॥३॥

ॐ ह्रीं श्री सर्वगणधरदेवाय अक्षयपद प्राप्तये अक्षत नि।

जड़ पुद्गल रागादिक विकार इनसे मेरा सम्बन्ध नही।
निष्काम अतीन्द्रिय सुखसागर मुझमें पर का कुछ द्वंद नहीं॥मैं.॥४॥

ॐ ह्रीं श्री सर्वगणधरदेवाय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि।

आकिंचन दृष्टि होते ही, सुख का सागर लहराता।
सब धर्मों का सहज समन्वय, यहॉ पूर्ण है हो जाता।।

भूतार्थ आश्रित भव्य जीव ही सम्यक् दृष्टि ज्ञानधारी।
सम्यक् चारित्र धार हरता है क्षुधा व्याधि की बीमारी ।।मैं.।।५।।
ॐ ह्रीं श्री सर्वगणधरदेवाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य नि ।
जिन वच में जो रमते पल में वे मोह वमन कर देते हैं।
वे स्वपर प्रकाशक स्वय ज्योतिसुखधाम परम पद लेते हैं।।मैं।।६।।
ॐ ह्रीं श्री सर्वगणधरदेवाय मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि ।
जीवादिक नवतत्वो में भी निज की श्रद्धाप्रतीति समकित।
मैं भेद ज्ञान पा हो जाऊ प्रभु अष्टकर्म रज से विरहित ।।मै.।।७।।
ॐ ह्रीं श्री सर्वगणधरदेवाय अष्टकर्म दहनाय धूप नि ।
चित्चमत्कार उद्योतवान चैतन्य मूर्ति निज परम श्रेय।
मैं स्वयं मोक्षमंगलमय हूं पर भाव सकल है सदा हेय ।।मै.।।८।।
ॐ ह्रीं श्री सर्वगणधरदेवाय मोक्षफल प्राप्ताय फल नि ।
मै हू अबद्ध अस्पृष्ट, नियत, अविशेष अनन्त गुण कार हूँ।
मै हू अनर्घ पद का स्वामी प्रभु केवलज्ञान दिवाकर हूँ। मै.।।९।।
ॐ ह्रीं श्री सर्वगणधरदेवाय अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्य नि ।

जयमाला

चौबीसो जिनराज के श्री गणधर भगवान।
विनय भाव से मै नमूं पाऊँ सम्यकज्ञान ।।१।।
तीर्थकर गणधर की संख्या और मुख्य गणधर के नाम।
भक्तिभाव से अर्घ चढाऊॅ विनय सहित मैं करूँ प्रणाम ।।२।।
ऋषभदेव के चौरासी गणधर मे वृषभसेन नामी।
अजितनाथ के नब्बे मे थे केसरिसेन ज्ञानधामी ।।३।।
सम्भव के एक सौ पाँच मे चारुदत्त गणधर स्वामी।
अभिनन्दन के एक सौ तीन मे वज्रचमर ऋषि गुणधामी ।।४।।
सुमतिनाथ के एक शतक सोलह में, हुए वज्रस्वामी।
पदमप्रभ के एक शतक ग्यारह मे प्रमुख चमर नामी ।।५।।
श्री सुपार्श्व के पंचानवे प्रमुख बलदत्त महा विद्वान।
चन्द्रप्रभ के तिरानवे में मुख्य श्री वैदर्भ महान ।।६।।

शाश्वत भगवान विराजित है आनद कद तेरे भीतर ।
पुद्‌गल तन मे अपनत्व मान देखा न कभी निज रुप प्रखर ।।

पुष्पदन्त के अट्‌ठासी मे मुख्य नाग ऋषि हुए प्रधान ।
शीतल जिनके सत्तासी मे हुए कुन्थु मुनि श्रेष्ठ महान ।।७।।
प्रभु श्रेयांसनाथ के गणधर हुए सतत्तर धर्म प्रधान ।
वासुपूज्य के छयासठ मे थे गणधर मन्दर महामहान ।।८।।
विमलनाथ के पचपन गणधर में थे जय ऋषिराज स्वरूप ।
श्री अनन्तजिन के पचास गणधर में मुख्य अरिष्ट अनूप ।।९।।
धर्मनाथ के तिरतालीस गणधरों में थे सेन महन्त ।
शातिनाथ के थे छत्तीस मुख्य चक्रायुध श्री भगवन्त ।।१०।।
कुन्थुनाथ प्रभु के थे पैतिस मुख्य स्वयंभू गणधर थे ।
अरहनाथ के तीस गणधरों मे भी कुम्भ ऋषीश्वर थे ।।११।।
मल्लिनाथ के अट्‌ठाइस गणधर में मुख्य विशाख प्रधान ।
मुनिसुव्रत के अट्‌ठारह मे मुख्य हुए मुनि मल्लि महान ।।१२।।
श्री नमिनाथ जिनेश्वर के सतरह गणधरों में सप्रभ देव ।
नेमिनाथ के ग्यारह गणधर में वरदत्त हुए स्वयमेव ।।१३।।
पार्श्वनाथ प्रभु के दस गणधर मे थे मुख्य स्वयंभू नाम ।
महावीर के ग्यारह गणधर, इन्द्रभूति गौतम गुणधाम ।।१४।।
ये चौदह सौ उन्सठ गणधर इनकी महिमा अपरम्पार ।
केवलज्ञान लब्धि को पाकर सभी हुए भवसागर पार ।।१५।।
तीर्थंकर प्रभु शुक्ल ध्यान धर जब जाते हैं केवलज्ञान ।
देवो द्वारा समवशरण की रचना होती दिव्य महान ।।१६।।
द्वादश सभासहज जुडती है अन्तरीक्ष प्रभु पद्मासन ।
गणधर के आते ही होती प्रभु की दिव्य ध्वनि पावन ।।१७।।
मेघगर्जनासम निजध्वनि का बहता है अतिसलिलप्रवाह ।
ओंकार ध्वनि सर्वांगों से झरती देती ज्ञान अथाह ।।१८।।
दिव्य ध्वनि खिरते ही गणधर तत्क्षण उसे झेलते हैं।
छठे सातवें गुणस्थान मे बारम्बार खेलते हैं ।।१९।।
छहछह घडी दिव्यध्वनि खिरतीचारसमय नितमंगलमय।
वस्तुतत्व उपदेश श्रवणकर भव्य जीव होते निज मय ।।२०।।

छह द्रव्यो से भी श्रेष्ठ द्रव्य, नव तत्वो से भी परम तत्व।
सच्चिदानन्द आनद कद सर्वोत्कृष्ट निज आत्म तत्व॥

जिन जीवों की जो भाषा उसमें हो जाती परिवर्तित।
सात शतक लघु और महाभाषा अष्टादशमयी अमित॥२१॥
रच देते अंतर्मुहुर्त में द्वादशागमय जिनवाणी।
दिव्यध्वनि बन्द होने पर व्याख्या करते जग कल्याणी॥२२॥
गणधर का अभाव हो तो दिव्यध्वनि रूप प्रवृत्ति नहीं।
जिन ध्वनि अगर नही हो तो सशय की कभी निवृत्ति नहीं॥२३॥
तीर्थंकर की दिव्य ध्वनि गणधर होने पर ही खिरती।
गणधर समुपस्थित न अगर हों वाणी कभी नही खिरती॥२४॥
इसीलिये तो महावीर प्रभु की दिव्य ध्वनि रुकी नही।
छयासठदिन तक रहामौन सारी जगती अति चकित रही॥२५॥
इन्द्रभूति गौतम जब आए मुनि बन गणधर हुए स्वयम्।
तभी दिव्यध्वनि गूंजउठी जिन प्रभु की मेघगर्जना सम॥२६॥
जीवों का कल्याण हो गया जन जन मे आनंद छाया।
दिव्य ध्वनि का लाभ श्री गौतम गणधर द्वारा पाया॥२७॥
यह निमित्त नैमित्तिक है संबंध स्वय मिल जाता है।
अपने अपने कारण से जो होना है हो जाता है॥२८॥
यदि गणधर होते नहीं तो जिनवाणी कैसे मिलती।
नय प्रमाण निक्षेप आदि की बंद कली कैसे खिलती॥२९॥
गणधर देवों का जग के जीवो पर है अनंत उपकार।
विनयभाव से गणधर देवों की हम करते जयजयकार॥३०॥
गणधर प्रभुल की परम कृपा से खुला मोक्ष का पावन द्वार।
सर्व सिद्धियों के दाता हैं गणधर स्वामी मगलकार॥३१॥
निज स्वभाव साधन हम पाये ऐसी कृपा कोर कर दो।
रत्नत्रय पथ पर आ जायें ऐसी दिव्य भोर कर दो॥३२॥
परभावो से दूर रहे हम निज स्वरूप का ध्यान करें।
द्रव्य दृष्टि बनकर हे स्वामी महामोक्ष अभियान करें॥३३॥
जय जय परम ऋषीश्वर स्वामी मंगलमय प्रभु गणधर देव।
आत्मज्ञान की ज्योति किरण पा हम भी सिद्ध बने स्वयमेव॥३४॥

ध्यान अवस्था की सीमा मे आते ही होता आनन्द।
रागातीत ध्यान होते ही होती सभी कषाये मद ॥

ॐ ह्रीं श्री सर्वगणधर देवाय अनर्घ्य पद प्राप्तये पूर्णार्घ्य नि स्वाहा।

गणधर प्रभुओ के चरण जो लेते उर धार।
मन वच तन से पूँजते हो जाते भवपार ॥

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्रीं श्री सर्व ऋद्धि धारक गणधराय न

卐

श्री तीर्थंकर निर्वाण क्षेत्र पूजन

अष्टापद कैलाश श्री सम्मेदाचल चम्पापुर धाम।
उर्ज्जयत गिरनार शिखर पावापुर सबको करूँ प्रणाम ॥
ऋषभादिक चौबीस जिनेश्वर मुक्ति वधु के कंत हुए।
पंच तीर्थो से तीर्थकर परम सिद्ध भगवन्त हुए ॥

ॐ ह्रीं श्री तीर्थकर निर्वाण क्षेत्राणि अत्र अवतर अवतर सवौषट्। ॐ ह्रीं श्री तीर्थकर निर्वाण क्षेत्रादि अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ ॐ ह्रीं श्री तीर्थकर निर्वाण क्षेत्रादि अत्र मम सन्निहितोभव भव वषट्।

जन्म मरण से व्यथित हुआ हूँ भव अनादि से दुखपाया।
परम पारिणामिक स्वभाव का निर्मल जल पाने आया ॥
अष्टापद सम्मेदशिखर, चम्पापुर, पावापुर, गिरनार।
चौबीसो तीर्थकर की निर्वाण भूमि वन्दू सुखकार ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री तीर्थकर निर्वाणक्षेत्रेभ्योजन्मजरा मृत्यु विनाशनाय जल नि।

भव आतप से दग्ध हुआ मै प्रतिफल दुख अनन्त पाया।
परम पारिणामिक स्वभाव का निज चदन पाने आया ॥अष्टा.॥२॥

ॐ ह्री श्री तीर्थकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो ससार ताप विनाशनायचंदनं नि।

भव समुद्र मे चहुँ गति की भवरो मे डूबा उतराया।
परम पारिणामिक स्वभाव से अक्षयपद पाने आया ॥अष्टा.॥३॥

ॐ ह्रीं श्री तीर्थकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षत नि.।

काम भोग बन्धन मे पडकर शील स्वभाव नहीं पाया।
परम पारिणामिक स्वभाव के सहज पुष्प पाने आया ॥ अष्टां ॥४॥

ॐ ह्रीं श्री तीर्थकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्प नि।

बौद्धिकता होती परास्त है आध्यात्मिकता के आगे।
निज सौख्यभाव जगते ही पाप पुण्य डर कर भागे ॥

तृष्णा की ज्वाला में जल जल तृप्त नहीं मैं हो पाया।
परम पारिणामिक स्वभाव के शुचिमय चरुपाने आया ॥अष्टा.॥५॥
ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि ।
सम्यकज्ञान बिना प्रभु अबतक निजस्वरूप ना लख पाया।
परम पारिणामिक स्वभाव की दीप ज्योति पाने आया ॥अष्टा.॥६॥
ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि ।
अष्ट कर्म की क्रूर प्रकृतियों में ही निज को उलझाया।
परम पारिणामिक स्वभाव की सजल धूप पाने आया ॥अष्टा.॥७॥
ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो अष्ट कर्म दहनाय धूप नि ।
मोक्ष प्राप्ति के बिना आज तक सुख का एक न कण पाया।
परम पारिणामिक स्वभाव के शिवमय फल पाने आया ॥अष्टा.॥८॥
ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो मोक्ष फल प्राप्तये फल नि ।
शुद्ध त्रिकाली अपना ज्ञायक आत्म स्वभाव न दर्शाया।
परम पारिणामिक स्वभाव से पद अनर्घ पाने आया ॥अष्टा.॥९॥
ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्य नि ।

जयमाला

श्री चौबीस जिनेश को वन्दन करूँ त्रिकाल।
तीर्थंकर निर्वाण भू हरे कर्म जजाल ॥१॥
अष्टापद कैलाश आदिप्रभु ऋषभदेव पद करूँ प्रणाम।
चम्पापुर में वासुपूज्य जिनवर के पद बन्दूँ अभिराय ॥२॥
उर्ज्जयन्त गिरनार शिखर पर नेमिनाथ पद मे वन्दन।
पावापुर में वर्धमान प्रभु के चरणों को करूँ नमन ॥३॥
बीस तीर्थंकर सम्मेदाचल के पर्वत पर वन्दू।
बीस टोक पर बीस जिनेश्वर सिद्ध भूमि को अभिनन्दूँ ॥४॥
कूट सिद्धवर अजितनाथ के चरण कमल को नमन करूँ।
धवलकूट पर सम्भवजिन पद पूजूँ निज का मनन करूँ ॥५॥
मैं आनन्दकूट पर अभिनन्दन स्वामी को करूँ नमन।
अविचलकूट सुमति जिनवर के पद कमलों मे है वंदन ॥६॥

जब स्वपर विवेक सूर्य जगता होता जीवत मनो मंथन।
समकित स्वर झकृत होते ही खिलखिल जाता है अतर्मन ।।

मोहनकूट प्रदमप्रभु के चरणों में सादर करूँ नमन।
कूट प्रभास सुपार्श्वनाथ प्रभु के मैं पूजूँ भव्य चरण ।।७।।
ललितकूट पर चन्दा प्रभु को भाव सहित सादर वन्दूँ।
सुप्रभकूट सुविधि जिनवर श्री पुष्पदन्त पद अभिनन्दूँ ।।८।।
विद्युतकूट श्री शीतल जिनवर के चरण कमल पावन।
संकुल कूट चरण श्रेयांसनाथ के पूजूँ मन भावन ।।९।।
श्री सुवीरकुल कूट भाव से विमलनाथ के पद बन्दू।
चरण अनन्तनाथ स्वामी के कूट स्वयंभू पर बन्दू ।।१०।।
कूट सुदत्त पूजता हूँ मै धर्मनाथ के चरण कमल।
नमूँ कुन्दप्रभ कूट मनोहर शान्तिनाथ के चरण विमल ।।११।।
कुन्थुनाथ स्वामी को वन्दू कूट ज्ञानधर भव्य महान।
नाटक कूट श्री अरनाथ जिनेश्वर पद का ध्याऊँ ध्यान ।।१२।।
संवल कूट मल्लि जिनवर के चरणो की महिमा गाऊँ।
निर्जरकूट श्री मुनिसुव्रत चरण पूजकर हर्षाऊँ ।।१३।।
कूट मित्रधर श्री नमिनाथ तीर्थकर पद करूँ प्रणाम।
स्वर्णभद्र श्री पार्श्वनाथ प्रभु को नित वन्दूँ आठो याम ।।१४।।
तीर्थकर निर्वाण भूमियाँ तीर्थ क्षेत्र कहलाती है।
मुनियों की निर्वाण भूमियाँ सिद्ध क्षेत्र कहलाती हैं ।।१५।।
गर्भ जन्म तप ज्ञान भूमियाॅ अतिशय क्षेत्र कहलाती हैं।
इन सब तीर्था की यात्रा से उर पवित्रता आती है ।।१६।।
अपना शुद्ध स्वभाव लक्ष्य में लेकर जो निज ध्यान धरूँ।
सादि अनन्त समाधि प्राप्त कर परम मोक्ष निर्वाण वरूँ ।।१७।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थकर निर्वाण क्षेत्रेभ्यो पूर्णार्घ्य नि स्वाहा।

सिद्ध भूमि जिनराज की महिमा अगम अपार।
निज स्वभाव जो साधते वे होते भव पार ।।

इत्याशीर्वाद

जाप्यमन्त्र - ॐ ह्रीं श्री तीर्थकर निर्वाण क्षेत्रेभ्यो नम ।

श्री त्रिकाल चौबीसी जिन पूजन

**श्री निर्वाण आदि तीर्थंकर भूतकाल के तुम्हें नमन।
श्री वृषभादिक वीर जिनेश्वर वर्तमान के तुम्हें नमन ॥
महापद्म अनंतवीर्य तीर्थंकर भावी तुम्हें नमन।
भूत भविष्यत् वर्तमान की चौबीसी को करूँ नमन ॥**

ॐ ह्रीं भरत क्षेत्र सबधी भूत भविष्य वर्तमान जिन तीर्थकर समूह अत्र अवतर अवतर ॐ ह्रीं भूत भविष्य वर्तमान जिन तीर्थकर समूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ । ॐ ह्रीं भूत भविष्य, वर्तमान जिन तीर्थकर समूह अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

**सात तत्व श्रद्धा के जल से मिथ्या मल को दूर करूँ।
जन्म जरा भय मरण नाश हित पर विभाव चकचूर करूँ ॥
भूत भविष्यत् वर्तमान की चौबीसी को नमन करूँ।
क्रोध लोभ मद माया हरकर मोह क्षोभ को शमन करूँ ॥१॥**

ॐ ह्रीं भूत भविष्य वर्तमान जिनतीर्थकरेभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल नि ।

**नव पदार्थ को ज्यो का त्यो लख वस्तु तत्व पहचान करूँ।
भव आताप नशाऊँ मैं निज गुण चदन बहुमान करूँ ॥भूत.॥२॥**

ॐ ह्रीं भूत भविष्य वर्तमान जिनतीर्थकरेभ्यो ससारतापविनाशनाय चन्दन नि ।

**षट्द्रव्यो से पूर्ण विश्व में आत्म द्रव्य का ज्ञान करूँ।
अक्षय पद पाने को अक्षत गुण से निज कल्याण करूँ ॥भूत.॥३॥**

ॐ ह्रीं भूत भविष्य वर्तमान जिनतीर्थकरेभ्यो अक्षयपद प्राप्ताय अक्षत नि ।

**जानूँ मै पचास्ति काय को पच महाव्रत शील धरूँ।
काम व्याधि का नाश करूँ निज आत्म पुष्प की सुरभि वरूँ ॥भूत.॥४॥**

ॐ ह्रीं भूत भविष्य वर्तमान जिनतीर्थकरेभ्यो कामबाणविध्वसनाय पुष्प नि ।

**शुद्ध भाव नैवेद्य ग्रहण कर क्षुधारोग को विजय करूँ।
तीन लोक चौदह राजू ऊँचे मे मोहित अब न फिरूँ ॥भूत.॥५॥**

ॐ ह्रीं भूत भविष्य वर्तमान जिनतीर्थकरेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि ।

**ज्ञान दीप की विमल ज्योति से मोह तिमिर क्षय कर मानूँ।
त्रिकालवर्ती सर्व द्रव्य गुण पर्यायें युगपत जानूँ ॥भूत ॥६॥**

ॐ ह्रीं भूत भविष्य वर्तमाल जिनतीर्थंकरेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीप नि ।

निज से तू अनभिज्ञ अपरिचित पर से क्यो सबधित है।
दुष्कर्मों मे दत्त चित्त है भोगो से स्पदित है ।।

निज समान सब जीव जानकर षट कायक रक्षा पालूँ।
शुक्ल ध्यान की शुद्ध धूप से अष्ट कर्म क्षय कर डालूँ ।।भूत.।।७।।
ॐ ह्रीं भूत भविष्य वर्तमान जिनतीर्थंकरेभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूप नि ।
पंच समिति त्रय गुप्ति पंच इन्द्रिय निरोध व्रत पचाचार।
अट्ठाईस मूल गुण पालूँ पंच लब्धि फल मोक्ष अपार ।।भूत.।।८।।
ॐ ह्रीं भूत भविष्य वर्तमान जिनतीर्थंकरेभ्यो मोक्षफल प्राप्ताय फल नि ।
छयालीस गुण सहित दोष अष्टादश रहित बनूँ अरहत।
गुण अनत सिद्धों के पाकर लूं अनर्घ पद हे भगवंत ।।भूत ।।९।।
ॐ ह्रीं भूत भविष्य वर्तमान जिनतीर्थंकरेभ्यो अनर्घ पद प्राप्ताय अर्घ नि ।

श्री भूतकाल चौबीसी

जय निर्वाण, जयति सागर, जय महासाधु, जय विमल, प्रभो।
जय शुद्धाभ, देव जय श्रीधर, श्री दत्त, सिद्धाभ, विभो ।।१।।
जयति अमल प्रभु, जय उद्धार, देव जय अग्नि देव संयम।
जय शिवगण, पुष्पांजलि, जय उत्साह, जयति परमेश्वर नम ।।२।।
जय ज्ञानेश्वर, जय विमलेश्वर, जयति यशोधर, प्रभु जय जय।
जयति कृष्णमति, जयति ज्ञानमति, जयति शुद्धमति जय जय जय।।३।।
जय श्रीभद्र, अनंतवीर्य जय भूतकाल चौबीसी जय।
जंबूद्वीप सुभरत क्षेत्र के जिन तीर्थंकर की जय जय ।।४।।
ॐ ह्रीं भरत क्षेत्र सबधी भूतकाल चतुर्विंशति जिनेन्द्राय अर्घ नि ।

श्री वर्तमान काल चौबीसी

ऋषभदेव, जय अजितनाथ, प्रभु संभव स्वामी, अभिनदन।
सुमतिनाथ, जय जयति पद्मप्रभु, जय सुपार्श्व, चदा प्रभु जिन।।१।।
पुष्पदत, शीतल, जिन स्वामी जय श्रेयांस नाथ भगवान।
वासुपूज्य, प्रभु विमल, अनंत, सु धर्मनाथ, जिन शाति महान ।।२।।
कुन्थुनाथ, अरनाथ, मल्लि, प्रभु मुनिसुव्रत, नमिनाथ, जिनेश।
नेमिनाथ, प्रभु पार्श्वनाथ, प्रभु महावीर, प्रभु महा महेश ।।३।।
पूज्य पच कल्याण विभूषित वर्तमान चौबीसी जय।
जंबूद्वीप सुभरत क्षेत्र के तीर्थंकरेभ्यो प्रभ की जय जय ।।४।।
ॐ ह्रीं भरत क्षेत्र सबधी वर्तमान चतुर्विंशति जिनेन्द्राय अर्घ्य नि ।

साक्षात अरहत देव का भी उपदेश न मगलमय।
अपने को यदि नहीं जान पाया तो सभी उदगलमय ॥

श्री भविष्यकाल चौबीसी

जय प्रभु महापद्म सुरप्रभ, जय सुप्रभ, जयति स्वयंप्रभु, नाथ।
सर्वायुद्ध, जयदेव, उदयप्रभ, प्रभादेव, जय उदक नाथ ॥१॥
प्रश्नकीर्ति, जयकीर्ति जयति जय पूर्णबुद्धि, नि.कषाय, जिनेश।
जयति विमल प्रभु जयति बहुल प्रभु, निर्मल, चित्र गुप्ति, परमेश ॥२॥
जयति समाधि गुप्ति, जय स्वयभू, जय कंर्दप, देव जयनाथ।
जयति विमल, जय दिव्यवाद, जय जयति अनतवीर्य, जगन्नाथ ॥३॥
जबूद्वीप सु भरत क्षेत्र के तीर्थंकर प्रभु की जय जय ॥
ॐ ह्री भरत क्षेत्र सबधी भविष्यकाल चतुर्विंशति जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि।

जयमाला

तीन काल त्रय चौबीसी के नमूँ बहात्तर तीर्थंकर।
विनय भक्ति से श्रद्धापूर्वक पाऊँ निज पद प्रभु सत्वर ॥१॥
मैने काल अनादि गवाया पर पदार्थ मे रच पचकर।
पर भावो में मग्न रहा मैं निज भावो से बच बचकर ॥२॥
इसीलिए चारों गतियों के कष्ट अनंत सहे मैंने।
धर्म मार्ग पर दृष्टि न डाली कर्म कुपथ गहे मैंने ॥३॥
आज पुण्य सयोग मिला प्रभु शरण आपकी मैं आया।
भव भव के अघ नष्ट हो गए मानो चितामणि पाया ॥४॥
हे प्रभु मुझको विमल ज्ञान दो सम्यक् पथ पर आ जाऊँ।
रत्नत्रय की धर्मनाव चढ भव सागर से तर जाऊँ ॥५॥
सम्यक् दर्शन अष्ट अंगसह अष्ट भेद सह सम्यक ज्ञान।
तेरह विध चारित्र धारलू द्वादश तप भावना प्रधान ॥६॥
हे जिनवर आशीर्वाद दो निज स्वरुप मै रमजाऊँ।
निज स्वभाव अवलबन द्वारा शाश्वत निज पद प्रगटाऊँ ॥७॥
ॐ ह्री भूत, भविष्य, वर्तमान जिन तीर्थंकरेभ्यो पूर्णार्घ्यं नि।
तीन काल का त्रय चौबीसी की महिमा है अपरम्पार।
मन वच तन जो ध्यान लगाते वे हो जाते भव से पार ॥८॥

इत्याशीर्वाद

जाप्य - ॐ ह्री श्री भूत भविष्य वर्तमान तीर्थंकरेभ्यो नम।

दर्शन पाठ

देव आपके दर्शन पाकर उमगा है उर में उल्लास।
सम्यक् पथ पर चलकर मैं भी आऊंनाथ आप के पास ॥१॥
भक्ति आपकी सदा हृदय में रहे अडोल अकंप अनन्त।
तुम्हें जानकर निज को जानूं यही भावना है भगवंत ॥२॥
रागादिक विकार सब नाशूँ दुष्प्रवृत्तियाँ कर संहार।
मोक्ष मार्ग उपदेष्टा प्रभु तुम भव्य जनो के हो आधार ॥३॥
प्रभो आपके दर्शन का फल यही चाहता हूँ दिन रात।
स्व पर भेद विज्ञान प्राप्त कर पाऊँ मंगलमयी प्रभात ॥४॥
जय हो जय हो जय हो जय हो परमदेव त्रिभुवन नामी।
ध्रुव स्वभाव का आश्रय लेकर बन जाऊँ शिव पथगामी ॥५॥

चतुर्विंशति तीर्थंकर
पंच - निर्वाण - क्षेत्र
पूजन-विधान

जिनागम मे वर्तमान चतुर्विंशति तीर्थंकरो में से प्रथम तीर्थकर भगवान ऋषभदेव कैलाश पर्वत से अन्तिम तीर्थकर भगवान महावीर स्वामी पावापुर से भगवान नेमिनाथ गिरनार पर्वत से भगवान वासुपूज्य चम्पापुर से तथा शेष २० तीर्थंकर महान तीर्थराजसम्मेद शिखर जी से मोक्ष पधारे। इन तीर्थकरों की पावन निर्माण भूमिया वन्दनीय है। एक लघु विधान के रूप में हैं। धर्मार्थी बधु इसे एक दिन मे सम्पन्न कर सकते है। सामान्य पूज्य स्थापना एवं विसर्जन की जो विधि इस संग्रह में अन्यत्र दी गई है। उसका अनुसरण करके नित्य पूज्य करके विधान किया जा सकता है।

यदि हम प्रत्यक्ष में वहां जाकर इन क्षेत्रों की पूजन अर्चन न कर सके तो यही से हो इन क्षेत्रों की पूजन विधान करके अपने आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त करें। यही भावना है।

निज मे ही सन्तुष्ट रहू मै निज मे ही रमण करू।
फिर क्यो चारो गति मे भटकू फिर क्यो भव मे भ्रमण करु ॥

श्री अष्टापद कैलाश निर्वाण क्षेत्र पूजन

अष्टापद कैलाश शिखर पर्वत को बन्दू बारम्बार।
ऋषभदेव निर्वाण धरा की गूज रही है जय जयकार ॥
बाली महाबालि मुनि आदिक मोक्ष गये श्री नागकुमार।
इस पर्वत की भाव वंदना कर सुख पाऊँ अपरम्पार ॥
वर्तमान के प्रथम तीर्थकर को सविनय नमन करूँ।
श्री कैलाश शिखर पूजन कर सम्यक् दर्शन ग्रहण करूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टापद कैलाश तीर्थक्षेत्र अत्र अवतर अवतर सवौषट्, ॐ ह्री श्री अष्टापद कैलाश तीर्थक्षेत्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ ह्रीं श्री अष्टापद कैलाश तीर्थक्षेत्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

ज्ञानानद स्वरूप आत्मा सम्यक् जल से है परिपूर्ण।
ध्रुव चैतन्य त्रिकाली आश्रय से हो जन्म मरणसब चूर्ण ॥
ऋषभदेव चरणाम्बुज पूजूँ वन्दू अष्टापद कैलाश।
नागकुमार बालि आदिक ने पाया चिन्मय मोक्ष प्रकाश ॥१॥

ॐ ह्री श्री अष्टापद कैलाशतीर्थक्षेत्रेभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनायजल नि।

ज्ञानानद स्वरूप आत्मा में है चित्चमत्कार की गध।
ध्रुव चैतन्य त्रिकाली के आश्रय से होता कभी न बध ॥ऋषभ.॥२॥

ॐ ह्री श्री अष्टापद कैलाशतीर्थक्षेत्रेभ्यो ससारताप विनाशनाय चदन नि।

सहजानद स्वरूप आत्मा मे अक्षय गुण का भंडार।
ध्रुव चैतन्य त्रिकाली के आश्रय से मिट जाता संसार ॥ऋषभ.॥३॥

ॐ ह्री श्री अष्टापद कैलाशतीर्थक्षेत्रेभ्यो अक्षयपद प्राप्ताय अक्षत नि।

सहजानद स्वरूप आत्मा मे है शिव सुख सुरभि अपार।
ध्रुव चैतन्य त्रिकाली के आश्रय से जीता काम विकार ॥ऋषभ ॥४॥

ॐ ह्री श्री अष्टापद कैलाशतीर्थक्षेत्रेभ्यो कामबाणविध्वसनाय पुष्प नि।

पूर्णानन्द स्वरूप आत्मा मे है परम भाव नैवेद्य।
ध्रुव चैतन्य त्रिकाली के आश्रय से हो जाता निर्वेद ॥ऋषभ.॥५॥

ॐ ह्री श्री अष्टापद कैलाशतीर्थक्षेत्रेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि।

अगर द्वैत पर दृष्टि रहेगी तो भव विभ्रम दूर नहीं।
निज अद्वैत दृष्टि होगी तो फिर निज के प्रतिकूल नहीं ।।

पूर्णानन्द स्वरूप आत्मा पूर्ण ज्ञान का सिंधु महान ।
ध्रुव चैतन्य त्रिकाली के आश्रय से होते कर्म विनाश ।।ऋषभ.।।६।।
ॐ ह्रीं श्री अष्टापद कैलाशतीर्थक्षेत्रेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि ।
नित्यानंद स्वरूप आत्मा मे है ध्यान धूप की वास ।
ध्रुव चैतन्य त्रिकाली के आश्रय से होते कर्म विनाश ।।ऋषभ.।।७।।
ॐ ह्रीं श्री अष्टापद कैलाशतीर्थक्षेत्रेभ्यो दुष्टाष्टकर्मविध्वसनाय धूप नि ।
सिद्धानंद स्वरूप आत्मा में तो शिव फल भरे अनन्त ।
ध्रुव चैतन्य त्रिकाली के आश्रय से होता मोक्ष तुरन्त ।।ऋषभ.।।८।।
ॐ ह्रीं श्री अष्टापद कैलाशतीर्थक्षेत्रेभ्यो मोक्षफल प्राप्ताय फल नि ।
शुद्धानन्द स्वरूप आत्मा है अनर्घ्य पद का स्वामी ।
ध्रुव चैतन्य त्रिकाली के आश्रय से हो त्रिभुवन नामी ।।ऋषभ।।९।।
ॐ ह्रीं श्री अष्टापद कैलाशतीर्थक्षेत्रेभ्यो अनर्घपद प्राप्ताय पूर्णार्घ्य नि ।

जयमाला

अष्टापद कैलाश से आदिनाथ भगवान ।
मुक्त हुए निज ध्यानधर हुआ मोक्ष कल्याण ।।१।।
श्री कैलाश शिखर अष्टापद तीन लोक मे है विख्यात ।
प्रथम तीर्थंकर स्वामी ने पाया अनुपम मुक्ति प्रभात ।।२।।
इसी धरा पर ऋषभदेव को प्रगट हुआ था केवलज्ञान ।
समवशरण मे आदिनाथ की खिरीदिव्यध्वनि महामहान ।।३।।
राग मात्र को हेय जान जो द्रव्य दृष्टि बन जायेगा ।
सिद्ध स्वपद की प्राप्ति करेगा शुद्ध मोक्ष पद पायेगा ।।४।।
सम्यक्दर्शन की महिमा को जो अन्तर में लायेगा ।
रत्नत्रय की नाव बैठकर भव सागर तर जायेगा ।।५।।
गुणस्थान चौदहवाँ पाकर तीजा शुक्ल ध्यान ध्याया ।
प्रकृति बहात्तर प्रथम समय में हर कर अनुपमपद पाया ।।६।।
अंतिम समय ध्यान चौथा ध्या देह नाश कर मुक्त हुए ।
जा पहुंचे लोकाग्र शीश पर मुक्ति वधू से युक्त हुए ।।७।।

सत्य स्वरूप आग्रह करके परम शान्त हो जाऊगा।
पर का आग्रह मानूगा तो पूर्ण भ्रान्त हो जाऊगा ॥

तन परमाणु खिरे कपूरवत शेष रहे नख केश प्रधान।
मायामय तन रच देवों ने किया अग्नि सस्कार महान ॥८॥
बालि महाबालि मुनियो ने तप कर यहाँ स्वपद पाया।
नागकुमार आदि मुनियों ने सिद्ध स्वपद को प्रगटाया ॥९॥
यह निर्वाण भूमि अति पावन अति पवित्र अतिसुखदायी।
जिसने द्रव्य दृष्टि पाई उसको ही निज महिमा आयी ॥१०॥
भरत चक्रवर्ती के द्वारा बने बहात्तर जिन मन्दिर।
भूत भविष्यत् वर्तमान भरत की चौबीसी सुन्दर ॥११॥
प्रतिनारायण रावण की दुष्टेच्छा हुई न किचित पूर्ण।
बाली मुनि के एक अंगूठे से हो गया गर्व सब चूर्ण ॥१२॥
मंदोदरी सहित रावण ने क्षमा प्रार्थना की तत्क्षण।
जिन मुनियो के क्षमा भाव से हुआ प्रभावित अतर मन ॥१३॥
मै अब प्रभु चरणों की पूजन करके निज स्वभाव ध्याऊँ।
आत्म ज्ञान की प्रचुर शक्ति पा निजस्वभाव में मुस्काऊँ ॥१४॥
राग मात्र को हेय जानकर शुद्ध भावना ही पाऊँ।
एक दिवस ऐसा आए प्रभु तुम समान मै बन जाऊँ ॥१५॥
अष्टापद कैलाश शिखर को बार बार मेरा वंदन।
भाव शुभाशुभ का अभाव कर नाश करूँ भव दुख क्रन्दन ॥१६॥
आत्म तत्व का निर्णय करके प्राप्त करूँ सम्यक् दर्शन।
रत्नत्रय की महिमा पाऊँ धन्य धन्य हो यह जीवन ॥१७॥
ॐ ह्री श्री अष्टापद कैलाशतीर्थक्षेत्रेभ्यो पूर्णार्घ्य नि स्वाहा।
अष्टापद कैलाश की महिमा अगम अपार।
निज स्वरूप जो साधते हो जाते भवपार ॥

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ह्री श्री अष्टापद कैलाशतीर्थ क्षेत्रेभ्यो नम ।

भोग-तृप्ति तृष्णा आशा अज्ञान विपति नहीं है लेश।
बधन-से मै सदा रहित हू मुक्त स्वरूपी मेरा वेश ॥

श्री तीर्थराज सम्मेदशिखर निर्वाण क्षेत्र पूजन

तीर्थराज सम्मेदाचल जय शाश्वत तीर्थ क्षेत्र जय जय।
मुनि अनंत निर्वाण गये हैं पाया सिद्ध स्वपद शिवमय ॥१॥
अजितनाथ, संभव, अभिनन्दन, सुमति, पद्म, प्रभु मगलमय।
श्री सुपार्श्व चन्दा प्रभु स्वामी पुष्पदन्त शीतल गुणमय ॥२॥
जय श्रेयास विमल, अनंत प्रभु धर्म, शान्ति जिन कुन्थसदय।
अरह, मल्लि, मुनिसुव्रत स्वामी नमिजिन, पार्श्वनाथ जय जय ॥३॥
बीस जिनेश्वर मोक्ष पधारे इस पर्वत से जय जय जय।
महिमा अपरम्पार विश्व में निज स्वभाव की जय जय जय ॥४॥

ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र अत्र अवतर अवतर सवोषट्, ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ, ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अगणित सागर पी डाले पर प्यास न कभी बुझा पाया।
अनुपम सुखमय निर्मल शीतल समता जल पीने आया ॥
तीर्थराज सम्मेद शिखर की पूजन कर उर हर्षाया।
बीस तीर्थंकर की यह निर्वाण भूमि लख सुख पाया ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रेभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल नि।

पर भावो के सतापों में उलझ उलझ अति दुःख पाया।
ज्ञानानन्दी शुद्ध स्वभावी निज चंदन लेने आया ॥तीर्थराज.॥२॥

ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रेभ्यो ससारताप विनाशनाय चदन नि।

निज चैतन्य रुप को भूला पर ममत्व मे भरमाया।
अक्षय चेतन पद पाने को चरण शरण में मैं आया ॥तीर्थराज.॥३॥

ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रेभ्यो अक्षय पद प्राप्तये अक्षत नि।

पर द्रव्यो से राग हटाने का पुरुषार्थ न कर पाया।
शील स्वभाव शान्तपाने को कामनाश करने आया ॥तीर्थराज.॥४॥

ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रेभ्यो कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि।

तीन लोक का अन्न प्राप्तकर भूख न कभी मिटा पाया।
क्षुधाव्याधि का रोगनशाने निज स्वभाव पाने आया ॥तीर्थराज.॥५॥

शुद्ध आत्मा की उपासना है विश्व कल्याण मयी।
यही मुक्ति का मार्ग शाश्वत यह शाश्वत निर्वाणामयी ॥

ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि ।

मोह तिमिर के कारण अब तक सम्यक् ज्ञान नही पाया।
आत्मदीप की ज्योतिजगाने भेद ज्ञान करने आया ॥तीर्थराज.॥६॥

ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि ।

आत्म ध्यान बिन भव की भीषण ज्वाला में जल दु खपाया।
अष्टकर्म सम्पूर्ण जलाने ध्यान अग्नि पाने आया ॥तीर्थराज.॥७॥

ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रेभ्यो अष्टकर्म विनाशनाय धूप नि ।

पुण्य फलों में तीव्र राग कर सदा पाप ही उपजाया।
पाप पुण्य से रहित शुद्ध परमातम पद पाने आया ॥तीर्थराज.॥८॥

ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फल नि ।

है अनादि भव रोग न इसकी औषधि अब तक कर पाया।
निज अनर्घ पद पाने का अब तो अपूर्व अवसर आया ॥तीर्थराज.॥९॥

ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रेभ्यो अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्य नि ।

जयमाला

सम्मेदाचल शीश से तीर्थकर मुनिराज।
सिद्ध हुए सम श्रेणी में ऊपर रहे विराज ॥१॥
प्रभु चरणाम्बुज पूज कर धन्य हुआ मैं आज।
भाव सहित बन्दन करूँ निज शिब सुख के काज ॥२॥
जय जय शाश्वत सम्मेदाचल तीर्थ विश्व में श्रेष्ठ प्रधान।
भूत भविष्यत् वर्तमान के तीर्थंकर पाते निर्वाण ॥३॥
परम तपस्या भूमि सुपावन है अनन्त मुनिराजों की।
शुभ पवित्र निर्वाण धरा है यह महान जिनराजों की ॥४॥
लक्ष लक्ष वृक्षो की हरियाली से पर्वत शोभित है।
वातावरण शान्तमय सुन्दर लख कर यह जग मोहित है ॥५॥
शीतल अरु गन्धर्व सलिल निर्झर जल धारायें न्यारी।
भाँति भाँति के पक्षीगण करते है कलरव मनहारी ॥६॥
पर्वत पारसनाथ मनोरम यह सम्मेदशिखर अनुपम।
भाव सहित जो बन्दन करते उनका क्षय होता भ्रमतम ॥७॥

भोग-तृप्ति तृष्णा आशा अज्ञान विपति नहीं है लेश।
बधन-से मै सदा रहित हू मुक्त स्वरूपी मेरा वेश ॥

बीस टोंक पर बीस तीर्थंकर के चरण चिन्ह अभिराम।
शेष टोक पर चार जिनेश्वर श्री मुनियों के चरण ललाम ॥८॥
प्रथम टोक है कुन्थनाथ की प्रातः रवि बन्दन करता।
अन्तिम पार्श्वनाथ प्रभु की है संध्या सूर्य नमन करता ॥९॥
कूट सिद्धवर अजितनाथ का धवलकूट सुमतिजिन का।
अभिनन्दन आनन्दकूट जय अविचलकूट सुमतिजिन का ॥१०॥
मोहनकूट पद्मप्रभु का है प्रभु सुपार्श्व का प्रभासकूट।
ललितकूट चंदाप्रभु स्वामी पुष्पदन्त जिन सुप्रभुकूट ॥११॥
विद्युतकूट श्री शीतलजिन श्रेयांस का संकुलकूट।
श्री सुवीरकुलकूट विमलप्रभु नाथ अनन्त स्वयंप्रभुकूट ॥१२॥
जय प्रभु धर्म सुदत्तकूट जय शांति जिनेश कुन्दप्रभुकूट।
कूटज्ञानधर कुन्थनाथ का अरहनाथ का नाटक कूट ॥१३॥
संवर कूट मल्लि जिनवर का, निर्जर कूटमुनि सुव्रतनाथ।
कूट मित्रधर श्री नमि जिनका स्वर्णभद्र प्रभु पारसनाथ ॥१४॥
सर्व सिद्धवर कूट आदिप्रभु वासुपूज्य मन्दारगिरि।
उर्जयन्त है कूटि नेमि प्रभु सन्मति का महावीर श्री ॥१५॥
चौबीसों तीर्थंकर प्रभु के गणधर स्वामी सिद्ध भगवान्।
गणधरकूट भाव से पूजूँ मै भी जाऊँ पद निर्वाण ॥१६॥
बीसकूट से बीस तीर्थंकर ने पाया मोक्ष महान।
इसी क्षेत्र से तो असंख्य मुनियों ने पाया है निर्वाण ॥१७॥
भव्य गीत सम्यक् दर्शन का सहज सुनाई देता है।
रत्नत्रय की महिमा का फल यहाँ दिखाई देता है ॥१८॥
सिद्ध क्षेत्र है तीर्थ क्षेत्र है पुण्य क्षेत्र है अति पावन।
भव्य दिव्य पर्वतमालायें ऊची नीची मन भावन ॥१९॥
मधुवन मे मन्दिर अनेक हैं भव्य विशाल मनोहारी।
वृषभादिक चौबीस जिनेश्वर की प्रतिभाएँ सुखकारी ॥२०॥
नन्दीश्वर की सुन्दर रचना श्री बाहुबलि के दर्शन।
ऊंचा मानस्तम्भ सुशोभित पार्श्वनाथ का समवशरण ॥२१॥

शुद्ध आत्मा की उपासना है विश्व कल्याण मयी।
यही मुक्ति का मार्ग शाश्वत यह शाश्वत निर्वाणामयी ॥

पुण्योदय से इस पर्वत की सफल यात्रा हो जाये।
नरक और पशुगति का निश्चित बध नही होने पाये ॥२२॥
मैं सम्यक्त्व ग्रहण कर प्रभु कब तेरह विधि चारित्र धरूँ।
पच महाव्रत धार साधु बन इस भू पर निर्भय विचरूँ ॥२३॥
सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्र तप आराधना चार चितधार।
शुद्ध आत्मा अनुभव से नित प्रति हो स्वरूप साधना अपार ॥२४॥
नित द्वादश भावना चिन्तवन करके दृढ वैराग्य धरूँ।
भेदज्ञान कर परणति तज निज परणति मे रमण करूँ ॥२५॥
इसी क्षेत्र से महामोक्ष फल सिद्ध स्वपद को मैं पाऊँ।
अष्ट कर्म को नष्ट करूँ मैं परम शुद्ध प्रभु बन जाऊँ ॥२६॥
मन वच काया शुद्धि पूर्वक भाव सहित की है पूजन।
यह ससार भ्रमण मिट जाए हे प्रभु ! पाऊँ मुक्ति गगन ॥२७॥
ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रेभ्यो पूर्णार्घ्यं नि स्वाहा।
श्री सम्मेदशिखर का दर्शन पूजन जो मन करते हैं।
मुक्तिकन्त भगवंत सिद्ध बन भवसागर से तरते है ॥

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रेभ्यो नम ।

卐

श्री चंपापुर निर्वाण क्षेत्र पूजन

वासुपूज्य तीर्थकर की निर्वाण भूमि चम्पापुर धाम।
शुद्ध हृदय से बदन कर प्रभु चरणाम्बुज मे करूँ प्रणाम ॥
जल थल नभ मे वासुपूज्य प्रभु का ही गूज रहा जयगान।
जल फलादि वसु द्रव्य सजाकर पूजन करता हूँ भगवान ॥
ॐ ह्रीं श्री चपापुर तीर्थक्षेत्र अत्र अवतर-अवतर सवौषट अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ , अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।
पावन समता रस नीर चरणो मे लाया।
मिथ्यात्व पाप का नाश करने मै आया ॥

मूर्च्छा भाव नहीं है मुझ मे सर्व शल्य से हू नि शल्य।
आत्म भावना के अतिरिक्त नहीं है मुझमे कोई शल्य ।।

चंपापुर क्षेत्र महान दर्शन सुखकारी।
जय वासुपूज्य भगवान प्रभु मंगलकारी ।।१।।
ॐ ह्रीं श्री चपापुर तीर्थक्षेत्रभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल नि ।
समता रस चंदनसार अति शीतल लाया।
क्रोधादि कषाऐं नाश करने मैं आया ।।चंपापुर .।।२।।
ॐ ह्रीं श्री चपापुर तीर्थक्षेत्रभ्यो ससारताप विनाशनाय चन्दन नि ।
त्रैकालिक ज्ञायक भाव निज अक्षत लाया।
अक्षय निधि पाने नाथ चरणों मे आया ।।चंपापुर ।।३।।
ॐ ह्रीं श्री चपापुर तीर्थक्षेत्रभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षत नि ।
निज अतररूप मनोज्ञ शील सुमन लाया।
प्रभु विषय वासना नाश करने मै आया ।।चंपापुर.।।४।।
ॐ ह्रीं श्री चपापुर तीर्थक्षेत्रभ्यो कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि ।
धुन जागीनिज ध्रुवधाम की तो चरु लाया।
अष्टादश दोष विनाश करने मैं आया ।।चंपापुर ।।५।।
ॐ ह्रीं श्री चपापुर तीर्थक्षेत्रभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि ।
निज आत्मज्ञान का दीप ज्योतिर्मय लाया।
अज्ञान अधेरा नष्ट करने मैं आया ।। चपापुर .।।६।।
ॐ ह्रीं श्री चपापुर तीर्थक्षेत्रभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि ।
निज आत्म स्वरूप अनुप सुधूप अति शुचिमय लाया।
वसु कर्मो को विध्वस करने मै आया ।।चंपापुर .।।७।।
ॐ ह्रीं श्री चपापुर तीर्थक्षेत्रभ्यो अष्ट कर्म दहनाय धूप नि ।
शिवमय अनुभव रस पूर्ण उत्तम फल लाया।
निज शुद्ध त्रिकाली सिद्ध पद पाने आया ।।चपापुर.।।८।।
ॐ ह्रीं श्री चपापुर तीर्थक्षेत्रभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फल नि ।
परिणाम शुद्ध का अर्घ्य चरणो में लाया।
अष्टम वसुधा का राज्य पाने को आया ।।चपापुर ।।९।।
ॐ ह्रीं श्री चपापुर तीर्थक्षेत्रभ्यो अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्य नि ।

जिनके मन मे अभिलाषा है होती उनको सिद्धि नहीं।
अभिलाषा वाले को होती शुद्ध भाव की बुद्धि नहीं ।।

जयमाला

सिद्ध क्षेत्र चंपापुरी भरत क्षेत्र विख्यात।
वासुपूज्य जिनराज ने किए कर्म वसु घात ।।१।।
और अनेकों मुनि हुए इसी क्षेत्र से सिद्ध।
विनय सहित वन्दनकरूँ चरणाम्बुज सुप्रसिद्ध ।।२।।
जय जय वासुपूज्य तीर्थंकर जय चपापुर तीर्थ महान।
गर्भ जन्म तप ज्ञान भूमि निर्वाण क्षेत्र अतिश्रेष्ठ प्रधान ।।३।।
नृप वसुपूज्य सुमाता विजया के नंदन संसार प्रसिद्ध।
वासुपूज्य अभयकर नामी बाल ब्रह्मचारी सुप्रसिद्ध ।।४।।
स्वर्ग त्याग माता उर आए हुए रत्न वर्षा पावन।
जन्म समय सुरपति से न्व्हनकिया सुमेरु पर मन भावन ।।५।।
यह ससार असार जानकर लघुवय मे दीक्षाधारी।
लौकांतिक ब्रम्हर्षिसुरों ने धन्य ध्वनि उच्चारी ।।६।।
सोलह वर्ष रहे छद्मस्थ किया चपापुर वन में ध्यान।
निज स्वभाव से घातिकर्म विनशाये हुआ ज्ञान कल्याण ।।७।।
केवलज्ञान प्राप्त कर स्वामी वीतराग सर्वज्ञ हुए।
दे उपदेश भव्य जीवों को पूर्ण देव विश्वज्ञ हुए ।।८।।
समवशरण रचकर देवो ने प्रभु का जय जयकार किया।
मुख्य सुगणधर मदर ऋषि ने द्वादशांग उद्धार किया ।।९।।
चपापुर के महोद्यान मे अतिम शुक्ल ध्यान ध्याया।
चउ अघातिया भी विनाश से परम मोक्ष पद प्रगटाया ।।१०।।
जिन जिनपति जिन देव जगेष्ट परम पूज्य त्रिभुवननामी।
मै अनादि से भव समुद्र मे डूबा पार करो स्वामी ।।११।।
चपापुर मे हुए आप के पाचों कल्याणक सुखकार।
चरण कमल वदन करता हूँ जागा उन मे हर्ष अपार ।।१२।।
यहा अनेकों भव्य जिनालय प्रभु की महिमा गाते है।
जो प्रभु का दर्शन करते उनके संकट टल जाते हैं ।।१३।।
चपापुर के तीर्थक्षेत्र को बार बार मेरा वदन।
सम्यक् दर्शन पाऊँगा मै नाश करूँगा भव बधन ।।१४।।

ॐ ह्रीं श्री चपापुर तीर्थक्षेत्रभ्यो पूर्णार्घ्यं नि स्वाहा।

इच्छा से चिन्ता होती है चिन्ता से होता है क्लेश।
मुझे न कोई भी चिन्ता है मुझमे चिन्ता नही न लेश ॥

चंपापुर के तीर्थ की महिमा अपरम्पार।
निज स्वभाव जो साधते हो जाते भवपार॥

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ ही श्री चपापुर तीर्थ क्षेत्रेभ्यो नम ।

卐

श्री गिरनार निर्वाण क्षेत्र पूजन

उर्जयंत गिरनार शिखर निर्वाण क्षेत्र को करूँ नमन।
नेमिनाथ स्वामी ने पाया, सिद्ध शिला का सिंहासन॥
शंबु प्रद्युम्न कुमार आदि अनिरुद्ध मुनीश्वर को वंदन।
कोटि बहात्तर सातशतक मुनियो ने पाया मुक्ति सदन॥
महा भाग्य से शुभ अवसर पा करता हूँ प्रभु पद पूजन।
नेमिनाथ की महा कृपा से पाऊँ मै सम्यक् दर्शन॥

ॐ ही श्री गिरनाथ तीर्थक्षेत्र अत्र अवतर अवतर सवौषट्, ॐ हीं श्री गिरनार तीर्थक्षेत्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ ॐ हीं श्री गिरनार तीर्थक्षेत्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

मै शुद्ध पावन नीर लाऊँ भव्य समकित उर धरूँ।
मै शुभ अशुभ परभाव हर कर स्वय को उज्जवल करूँ॥
मै उर्जयन्त महान गिरि गिरनार की पूजा करूँ।
मैं नेमि प्रभु के चरण पकज युगल निज मस्तक धरूँ॥१॥

ॐ हीं श्री गिरनार तीर्थक्षेत्रेभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल नि ।

मै सरस चदन शुद्ध भावो का सहज अन्तर धरूँ।
मै शुभ अशुभ भवताप हर कर स्वयं को शीतल करूँ॥मैं.॥२॥

ॐ हीं श्री गिरनार तीर्थक्षेत्रेभ्यो ससारताप विनाशनाय चदन नि ।

मै धवल अक्षत भावमय ले आत्म का अनुभव करूँ।
मै शुभ अशुभ भव रोग हर कर स्वय अक्षयपद वरूँ॥मै.॥३॥

ॐ ही श्री गिरनार तीर्थक्षेत्रेभ्यो अक्षयपद प्राप्ताय अक्षत नि ।

मै चिदानद अनूप पावन सुमन मन भावन धरूँ।
मै लाख चौरासी गुणोत्तर शील की महिमा वरूँ॥मैं.॥४॥

ॐ हीं श्री गिरनार तीर्थक्षेत्रेभ्यो कामबाणविध्वसनाय पुष्प नि ।

पर से पृथक्भूत होने पर ज्ञान भावना जाती है।
निज स्वभाव से सजी साधना देख कलुषता भगती है॥

मैं सरल सहजानद मय नैवेद्य शुचिमय उर धरूँ।
मैं अमल अतुल अखंड चिन्मय सहज अनुभव रस वरूँ॥मै.॥५॥
ॐ ह्रीं श्री गिरनार तीर्थक्षेत्रेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि ।
मै भेद ज्ञान प्रदीप से मिथ्यात्व के तम को हरूँ।
मैं पूर्ण ज्ञान प्रकाश केवलज्ञान ज्योति प्रभा वरूँ॥मै.॥६॥
ॐ ह्रीं श्री गिरनार तीर्थक्षेत्रेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि ।
मै भावना भवनाशिनी की धूप निज अन्तर धरूँ।
वसु कर्मराज से मुक्त होकर निरजन पद आदरूँ॥मैं.॥७॥
ॐ ह्रीं श्री गिरनार तीर्थक्षेत्रेभ्यो दुष्टाष्टकर्म विध्वसनाय धूप नि ।
मै शुद्ध भावों के अमृतफल प्राप्त कर शिव सुख भरूँ।
मै अतीन्द्रिय आनन्द कद अनत गुणमय पद वरूँ॥मैं.॥८॥
ॐ ह्री श्री गिरनार तीर्थक्षेत्रेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फल नि ।
मै पारिणामिक भाव का ले अर्घ निज आश्रय करूँ।
मैं शुद्ध सादि अनत शाश्वत परमसिद्ध स्वपद वरूँ॥मैं॥९॥
ॐ ह्रीं श्री गिरनार तीर्थक्षेत्रेभ्यो अनर्घपद प्राप्तये पूर्णार्घ्य नि ।

जयमाला

उर्जयत गिरनार, को निशि दिन करूँ प्रणाम।
निज स्वभाव की शक्ति से लूँ सिद्धो का धाम॥१॥
प्रथम टोंक पर नेमिनाथ प्रभु के जिन मदिर बने विशाल।
स्वर्ण शिखर ध्वज दड आदि से है शोभायमान तिहुँकाल॥२॥
राजुल गुफा बनी अति सुन्दर सयम का पथ बतलाती।
वीतराग निर्ग्रथ भावनामयी मोक्ष पथ दर्शाती॥३॥
चरण चिन्ह ऋषियो के पावन देते वीतराग सदेश।
नेमिनाथ ने भव्य जनो को दिया विरागमयी उपदेश॥४॥
द्वितीय टोकपर श्री मुनियो के चरण कमल है दिव्य ललाम।
भाव पूर्वक अर्घ्य चढाकर मैं लू प्रभु निज में विश्राम॥५॥
तृतीय टोक पर ऋषि मुनियो के चरणाम्बुज अतिशोभित है।
दर्शनार्थी दर्शन करके इन पर होते मोहित हैं॥६॥

चौथी टोक महान कठिन है इस पर चरण चिन्ह सुखकार।
निज स्वभाव की पावन महिमा सुरनर मुनि गाते जयकार ॥७॥
श्री कृष्ण रुकमणी पुत्र श्री कामदेव प्रद्युनकुमार।
ले विराग सयम धर मुक्त हुए पहुँचे भव सागर पार ॥८॥
शम्बुकुमार तथा अनिरुद्धकुमार आदि मुनि मुक्त हुए।
निज स्वभाव साधन के द्वारा पाया सिद्ध स्वपद निर्वाण ॥१०॥
इन्द्रादिक देवों ने हर्षित किया जहॉ पचम कल्याण।
कोटि कोटि मुनियो ने तप कर पाया सिद्ध स्वपद ॥११॥
एक शिला पर प्रभु की अनुपम मूर्ति जहाँ उत्कीर्ण प्रधान।
चरण चिन्ह श्री नेमिनाथ प्रभु के है जग में श्रेष्ठ महान ॥१२॥
इसी टोंक से चउ अघातिया कर्मो का करके अवसान।
एक समय मे सिद्ध शिला पर नाथ विराजे महा महान ॥१३॥
नेमिनाथ के दर्शन होते चढकर दस सहस्र सोपान।
हो जाती है पूर्ण यात्रा होता उर मे हर्ष महान ॥१४॥
फिर जाते है सहस्रा वन जहाँ हुआ था तप कल्याण।
नेमिनाथ के चरणाम्बुज मे अर्घ्य चढाते यात्री आन ॥१५॥
जिन दीक्षा लेकर प्रभु जी ने जहॉ घोर तप किया महान।
चार घातिया कर्म नष्ट कर पाया प्रभु ने केवलज्ञान ॥१६॥
राजुल ने भी यही दीक्षा लेकर किया आत्म कल्याण।
और अनेको यादव वशी आदि हुए मुनि महा महान ॥१७॥
मै भी प्रभु के पद चिन्हो पर चलकर महामोक्ष पाऊँ।
भेद ज्ञान की ज्योति जलाकर सम्यकदर्शन प्रगटाऊँ ॥१८॥
सम्यक्ज्ञान चरित्र शक्ति का पूर्ण विकास करूँ स्वामी।
निश्चय रत्नत्रय से मै सर्वज्ञ बनूँ अन्तर्यामी ॥१९॥
चार घातिया कर्म नष्ट कर पद अरहत सहज पाऊँ।
फिर अघातिया कर्म नाशकर स्वयं सिद्ध प्रभु बन जाऊँ ॥२०॥
पद अनर्घ्य पाने को स्वामी व्याकुल है यह अन्तर्मन।
जल फलादि वसु द्रव्य अर्घ्य चरणो में करता हूँ अर्पण ॥२१॥

नेमिनाथ स्वामी तुम पद पंकज की करता हूँ पूजन।
वीतराग तीर्थंकर तुमको कोटि कोटि मेरा वन्दन ॥२२॥

ॐ ह्रीं श्री गिरनार तीर्थक्षेत्रेभ्यो पूर्णार्घ्यं नि स्वाहा।

नेमिनाथ निर्वाण भू बन्दूँ बारम्बार।
उर्जयत गिरनार से हो जाऊँ भवपार ॥

इत्याशीर्वाद

जाप्यमन्त्र - ॐ ह्रीं श्री गिरनार तीर्थक्षेत्रेभ्यो नम।

卐

श्री पावापुर निर्वाण क्षेत्र पूजन

श्री पावापुर तीर्थक्षेत्र को भक्तिभाव से करूँ प्रणाम।
जल मन्दिर में महावीर स्वामी के चरणकमल अभिराम ॥
इसी भूमि से मोक्ष प्राप्त कर परम सिद्धपुरी का धाम।
विनय सहित पूजन करता हूँ पाऊँ निजस्वरूप विश्राम ॥

ॐ ह्रीं श्री पावापुर तीर्थक्षेत्र अत्र अवतर अवतर सवौषट्, ॐ ही श्री पावापुर तीर्थक्षेत्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ ॐ ह्रीं श्री पावापुर तीर्थक्षेत्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

प्रभु पद्म सरोवर नीर प्रासुक लाया हूँ।
मिथ्यात्व दोष को क्षीण करने आया हूँ ॥
पावापुर तीर्थ महान भारत मे नामी।
जय महावीर भगवान त्रिभुवन के स्वामी ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री पावापुर तीर्थक्षेत्रेभ्यो जन्मजरा मृत्यु विनाशनाय जल नि।

बावन चदन तरु सार उत्तम लाया हूँ।
निज शान्त स्वरूप अपार पाने आया हूँ ॥पावापुर ॥२॥

ॐ ह्रीं श्री पावापुर तीर्थक्षेत्रेभ्यो ससारताप विनाशनाय चदन नि।

धवलोज्ज्वल तदुल पुन्ज भगवन लाया हूँ।
प्रभु निज शुद्धातम कुन्ज, पाने आया हूँ ॥पावापुर .॥३॥

ॐ ह्रीं श्री पावापुर तीर्थक्षेत्रेभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षत नि।

कल्पद्रुम सुमन मनोज्ञ सुरभित लाया हूँ।
अंतर का स्वपर विवेक पाने आया हूँ ॥पावापुर.॥४॥

जन्म जरा मरणादि व्याधि से रहित आत्मा ही अद्धैत।
परम भाव परिणामो से भी विरहत कहीं इसमे द्धैत ॥

ॐ ह्रीं श्री पावापुर तीर्थक्षेत्रेभ्यो कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि ।

चरू विविध भाँति के दिव्य अनुपम लाया हूँ।
चैतन्य स्वभाव सुभव्य पाने आया हूँ ॥पावापुर ॥५॥

ॐ ह्रीं श्री पावापुर तीर्थक्षेत्रेभ्यो मोहाधकार विनाशनाय दीप नि ।

ज्योतिर्मय दीप प्रकाश नूतन लाया हूँ।
अज्ञान मोह का नाश करने आया हूँ ॥पावापुर.॥६॥

ॐ ह्रीं श्री पावापुर तीर्थक्षेत्रेभ्यो मोहाधकार विनाशनाय दीप नि ।

भावों की अनुपम धूप शुचिमय लाया हूँ।
निज आतमरूप अनूप पाने आया हूँ ॥पावापुर.॥७॥

ॐ ह्रीं श्री पावापुर तीर्थक्षेत्रेभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूप नि ।

सुर कल्प वृक्ष फल आज पावन लाया हूँ।
शिवसुखमय मोक्ष स्वराज पाने आया हूँ ॥पावापुर ॥८॥

ॐ ह्रीं श्री पावापुर तीर्थक्षेत्रेभ्यो मोक्षफल प्राप्ताय फल नि ।

निज अनर्घ अनूठा देव पावन लाया हूँ।
निज सिद्ध स्वपद स्वयमेव पाने आया हूँ ॥पावापुर.॥९॥

ॐ ह्रीं श्री पावापुर तीर्थक्षेत्रेभ्यो अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्य नि ।

जयमाला

पावापुर जिनतीर्थ को निज प्रति करूँ प्रणाम।
महावीर निर्वाण भू सुन्दर सुखद ललाम ॥१॥
त्रिशलानदन नृप सिद्धार्थराज के पुत्र सुवीर जिनेश।
कुडलपुर के राजकुवर वैशालिक सन्मति नाथ महेश ॥२॥
गर्भ जन्म कल्याण प्राप्तकर भी न बने भोगों के दास।
बाल ब्रह्मचारी रहकर भवतन भोगो से हुए उदास ॥३॥
तीस वर्ष मे दीक्षा लेली बारह वर्ष किया तप ध्यान।
पाप पुण्य परभाव नाशकर प्रभु ने पाया केवलज्ञान ॥४॥
समवशरण रचकर इन्द्रो ने किया ज्ञान कल्याण महान।
खिरी दिव्यध्वनि विपुलाचल पर सबने किया आत्मकल्याण ॥५॥
तीस वर्ष तक कर विहार सन्मति पावापुर मे आये।
शुक्ल ध्यानधर योग निरोध किया जगती मगल गाये ॥६॥

अ इ उ ऋ लृ उच्चारण मे लगता है जितनाकाल।
कर्मप्रकृति पच्चासीक्षयकर जा पहुंचे त्रिभुवन के भाल ॥७॥
कार्तिक कृष्ण अमावस्या का ऊषाकाल महान हुआ।
वर्धमान अतिवीर वीर श्री महावीर निर्वाण हुआ ॥८॥
धन्य हो गई पावानगरी धन्य हुआ यह भारत देश।
अष्टादश गणराज्यो के राजो ने उत्सव किया विशेष ॥९॥
तन कपूरवत उडा शेष नख केश रहे शोभा शाली।
इन्द्रादिक ने मायामय तन रचकर की थी दीवाली ॥१०॥
अग्निकुमार सुरो ने मुकुटानल से तन को भस्म किया।
सभी उपस्थित लोगो ने भस्मी का सिर पर तिलक लिया ॥११॥
पद्म सरोवर बना स्वय ही जल मदिर निर्माण हुआ।
खिले कमल दल बीच सरोवर प्रभु का जय जयगान हुआ ॥१२॥
चतुर्निकाय सुरो ने आकर किया मोक्ष कल्याण महान।
वीतरागता की जय गूजी वीतरागता का बहुमान ॥१३॥
श्वेतभव्य जल मदिर अनुपम रक्तवर्ण का सेतु प्रसिद्ध।
चरण चिन्ह श्री महावीर के अति प्राचीन परम सुप्रसिद्ध ॥१४॥
शुक्ल पक्ष मे धवल चद्रिका की किरणे नर्तन करती।
भव्य जिनालय पद्म सरोवर की शोभा मनको हरती ॥१५॥
तट पर जिन मदिर अनेक है दिव्य भव्य शोभाशाली।
महावीर की प्रतिमाए खडगासन पद्मासन वाली ॥१६॥
वृषभादिक चौबीस जिनेश्वर प्रभु की प्रतिमाए पावन।
विनय सहित वदन करता हूँ भाव सहित दर्शन पूजन ॥१७॥
जीवादिक नव तत्वो पर प्रभु सम्यक् श्रद्धा हो जाए।
आत्म तत्व का निश्चय अनुभव इस नर भव मे हो जाए ॥१८॥
यही भावना यही कामना भी एक उद्देश्य प्रधान।
पावापुर की पूजन का फल करूँ आत्मा का ही ध्यान ॥१९॥
यह पवित्र भू परम पूज्य निर्वाण भावना की जननी।
जो भी निज का ध्यान लगाए उसको भव सागर तरणी ॥२०॥

धीर वीर गभीर शल्य से रहित सयमी साधु महान।
इनके पद चिन्हो पर चल कर तू भी अपने को पहचान ॥

ॐ ह्रीं श्री पावापुर तीर्थक्षेत्रेभ्यो पूर्णार्घ्यं नि स्वाहा।

पावापुर के तीर्थ की महिमा अपरम्पार।
निज स्वरूप जो जानते हो जाते भवपार ॥

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र - ॐ श्री पावापुर तीर्थक्षेत्रेभ्यो नम ।

महाअर्घ्य

श्री अरहत देव को पूजूॅ श्री सिद्ध प्रभु को पूजूॅ।
आचार्यों के चरणाम्बुज, श्री उपाध्याय के पद पूजूॅ ॥१॥
सर्व साधु पद पूजूॅ, श्री जिन द्वादशाग वाणी पूजूॅ।
तीस चौबीसी बीस विदेही, जिनवर सीमधर पूजूॅ ॥२॥
कृत्रिम अकृत्रिम तीन लोक के जिनगृह जिन प्रतिमा पूजूॅ।
पंचमेरु नन्दीश्वर पूजूॅ तेरह दीप चैत्य पूजूॅ ॥३॥
सोलहकारण दशलक्षण रत्नत्रय धर्म सदा पूजूॅ।
भूत भविष्यत् वर्तमान की त्रय जिन चौबीसी पूजूँ ॥४॥
श्री वृषभादिक वीर जिनेश्वर ऋषि गणधर स्वामी पूजूॅ।
श्री जिनराज सहस्रनाम श्री मोक्ष शास्त्र आदि पूजूॅ ॥५॥
श्री पच कल्याणक पूजूॅ विविध विधान महा पूजूॅ।
गौतम स्वामी, कुन्दकुन्द आचार्य समयसार पूजूॅ ॥६॥
चम्पापुर पावापुर गिरनारी कैलाश शिखर पूजूॅ।
श्री सम्मेद शिखर पर्वत जिनवर निर्वाण क्षेत्र पूजूॅ ॥७॥
तीर्थकर की जन्म भूमि अतिशय अरु सिद्ध क्षेत्र पूजूॅ।
श्री जिन धर्म श्रेष्ठ मगलमय महा अर्घ्य दे मै पूजूॅ ॥८॥

ॐ ह्रीं भावपूजा, भाव बन्दना त्रिकाल पूजा, त्रिकाल बन्दना, करवी करावी, भावना भाववी, श्री अरहत्त जी, सिद्ध जी, आचार्य जी, उपाध्याय जी, सर्व साधु जी पचपरमेष्ठिभ्यो नम। प्रथमानुयोग करणानुयोग चरणानुयोग, द्रव्यानुयोगेभ्यो नम। दर्शनविशुद्धयादि षोडसकारणेभ्यो नम। उत्तमक्षमादि दशलक्षणधर्मेभ्यो नम। सम्यक्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यकचारित्र रत्नत्रयेभ्यो नम । जल विषे, थलविषे आकाशविषे गुफाविषे, पहाडविषे नगर नगरीविषे

पर कर्त्तव्य विकल्प त्याग कर , सकल्पो को दे तू त्याग ।
सागर की चचल तरग सम मुझे डुबो देगी तू भाग ।।

कृत्रिम अकृत्रिम जिन बिम्बेभ्यो नम । विदेशक्षेत्र स्थित विद्यमान बीस तीर्थंकरेभ्यो नम । पाच भरत पाच एरावत दश क्षेत्र सम्बन्धी तीस चोबीसीके सात सौ बीस तीर्थकरेभ्यो नम । नन्दीश्वर द्वीप स्थित बावन जिन चैत्यालयेभ्यो नम । श्री सम्मेदशिखर कैलाशगिर, चपापुर पावापुर गिरनार तीर्थकर सिद्ध क्षेत्रेभ्यो नम । पावागढ, तुगीगिरी, गजपथ, मुक्तागिर सिद्धवर कूट, ऊन बडवानी पावागिरि कुण्डलपुर सोनागिर राजगृही मन्दारगिरी, द्रोणगिरि अहार जी आदि समस्त सिद्धक्षेत्रेभ्यो नम । जैनबिद्री मूलबद्री मक्सी, अयोध्या कम्पिलापुरी आदि अतिशय क्षेत्रेभ्यो नम । समस्त तीर्थकर पचकल्याणतीर्थक्षेत्रेभ्यो नम । श्री गौतम स्वामी, कुन्दकुन्दाचार्य एव चारणऋद्धिधारी सात परम ऋषिभ्यो नम । इति उपर्युक्तेभ्य सर्वेभ्यो अर्घ्य नि स्वाहा ।

शान्तिपाठ

इन्द्र नरेन्द्र सुरो से पूजित वृषभादिक श्री वीर महान ।
साधु मुनीश्वर ऋषियों द्वारा वन्दित तीर्थकर विभुवान ॥१॥
गणधर भी स्तुति कर हारे जिनवर महिमा महामहान ।
अष्ट प्रातिहार्यो से शोभित समवशरण मे विराजमान ॥२॥
चौतीसो अतिशय से शोभित छयालीस गुण के धारी ।
दोष अठारह रहित जिनेश्वर श्री अरहत देव भारी ॥३॥
तरु अशोक सिंहासन भामण्डल सुर पुष्पवृष्टि त्रयछत्र ।
चौसठ चमर दिव्य ध्वनि पावन दुन्दुभि देवोपम सर्वत्र ॥४॥
मति श्रुति अवधिज्ञान के धारी जन्म समय से हे तीर्थेश ।
निज स्वभाव साधन के द्वारा आप हुए सर्वज्ञ जिनेश ॥५॥
केवलज्ञान लब्धि के धारी परम पूज्य सुख के सागर ।
महा पचकल्याणक विभूषित गुण अनन्त के ही आगर ॥६॥
सकल जगत में पूर्णशाति हो, शासन हो धार्मिक बलवान ।
देश राष्ट्रपुर ग्राम लोक में शतत शांति हो हे भगवान ॥७॥
उचित समय पर वर्षा हो दुर्भिक्ष न चोरी मारी हो ।
सर्व जगत के जीव सुखी हो सभी धर्म के धारी हो ॥८॥

रोग शोक भय व्याधि न होवे ईति भीति का नाम नहीं।
परम अहिंसा सत्य धर्म हो लेश पाप का काम नहीं ॥९॥
आत्म ज्ञान की महाशक्ति से परम शांति सुखकारी हो।
ज्ञानी ध्यानि महा तपस्वी स्वामी मंगलकारी हो ॥१०॥
धर्म ध्यान में लीन रहूँ मैं प्रभु के पावन चरण गहूँ।
जब तक सिद्ध स्वपद ना पाऊँ सदा आपकी शरण लहूँ ॥११॥
श्री जिनेन्द्र के धर्मचक्र से प्राणि मात्र का हो कल्याण।
परम शान्ति हो, परम शांति हो, परमशांति हो हे भगवान ॥१२॥

शाति धारा

कायोत्सर्ग पूर्वक -नौबार णमोकार मत्र का जाप्य।

क्षमापना पाठ

जो भी भूल हुई प्रभु मुझ से उसकी क्षमा याचना है।
द्रव्य भाव की भूल न हो अब ऐसी सदा कामना है ॥१॥
तुम प्रसाद से परम सौख्य हो ऐसी विनय भावना है।
जिन गुण सम्पत्ति का स्वामी हो जाऊँ यही साधना है ॥२॥
शुद्धातम का आश्रय लेकर तुम समान प्रभु बन जाऊँ।
सिद्ध स्वपद पाकर हे स्वामी फिर न लौट भव मे आऊँ ॥३॥
ज्ञान हीन हूँ क्रिया हीन हूँ द्रव्य हीन हूँ हे ज़िनदेव।
भाव सुमन अर्पित हैं हे प्रभु पाऊँ परम शांति स्वयमेव ॥४॥
पूजन शाति विसर्जन करके निज आतम का ध्यान धरूँ।
जिन पूजन का यह फल पाऊँ मैं शाश्वत कल्याण करूँ ॥५॥
मगलमय भगवान वीर प्रभु मगलमय गौतम गणधर।
मगलमय श्री कुन्द कुन्द मुनि मंगल जिनवाणी सुखकर ॥६॥
सर्व मंगलो मे उत्तम है णमोकार का मत्र महान।
श्री जिनधर्म श्रेष्ठ मंगलमय अनुपम वीतराग विज्ञान ॥७॥

पुष्पाजलि क्षिपामि

जिनालय दर्शन पाठ

श्री जिन मदिर झलक देखते ही होता है हर्ष महान।
सर्व पाप मल क्षय हो जाते होता अतिशय पुण्य प्रधान ॥१॥

अतरग बहिरग परिग्रह तजने का ही कर अभ्यास।
इसके बिना नहीं तू होगा साधू कभी भी न कर विश्वास ॥

जिन मंदिर के निकट पहुचते ही जगता उर मे उल्लास।
धवल शिख र का नील गगन से बाते करता उच्च निवास ॥२॥
स्वर्ण कलश की छटा मनोरम सूर्य किरण आभा सी पीत।
उच्च गगन में जिन ध्वज लहराता तीनों लोकों को जीत ॥३॥
तोरण द्वारों की शोभा लख पुलकित होते भव्य हृदय।
सोपानों से चढ मदिर मे करते हैं प्रवेश निर्भय ॥४॥
नि सहि नि सहि उच्चारण कर शीष झुका गाते जयगान।
जिन गुण सपति प्राप्ति हेतु मदिर मे आए है भगवान ॥५॥

जिन दर्शन पाठ

धर्म चक्रपति जिन तीर्थंकर वीतराग जिनवर स्वामी।
अष्टादश दोषो से विरहित परम पूज्य अंतर्यामी ॥१॥
मोह मल्ल को जीता तुमने केवल ज्ञान लब्धि पायी।
विमल कीर्ति की विजय पताका तीन लोक में लहरायी ॥२॥
निज स्वभाव का अवलंबन ले मोह नाश सर्वज्ञ हुए।
इन्द्रिय विषय कषाय जीत कर निज स्वभाव मर्मज्ञ हुए ॥३॥
भेद ज्ञान विज्ञान प्राप्त कर आत्म ध्यान तल्लीन हुए।
निर्विकल्प परमात्म परम पद पाया परम प्रवीण हुए ॥४॥
दर्शन ज्ञान वीर्य सुख मडित गुण अनत के पावन धान।
सर्व ज्ञेय ज्ञाता होकर भी करते निजानंद विश्राम ॥५॥
महाभाग्य से जिनकुल जिनश्रुत जिन दर्शन मैने पाया।
मिथ्यातम के नाश हेतु प्रभु चरण शरण मैं आया ॥६॥
तृष्णा रुपी अग्नि ज्वाला भव भव संतापित करती है।
विषय भोग वासना हृदय मे पाप भाव ही भरती है ॥७॥
इस ससार महा दुख सागर से प्रभु मुझको पार करो।
केवल यही विनय है मेरी अब मेरा उद्धार करो ॥८॥

णमो जिणाण-जियभवाण

ध्रौव्य तत्व का निर्विकल्प बहुमान हो गया उसी समय।
भव तन मे रहते रहते भी मुक्त हो गया उसी समय॥

मोक्षशास्त्र - तत्वार्थ सूत्र

(आचार्य उमा स्वामी)

मोक्षमार्गस्य नेत्तारं भेत्तार कर्मभूभृतां।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वाना वंदे तद्गुणलब्धये॥

त्रैकाल्यं द्रव्यषट्कं नवपदसहित जीवषट्कायलेश्या ·।
पंचान्ये चास्तिकाया व्रतसमितिगतिज्ञानचारित्रभेदा॥१॥
इत्येतन्मोक्षमूलं त्रिभुवनमहितै प्रोक्तमर्हद्भिरीशैः।
प्रत्येति श्रद्दधाति स्पृशति च मतिमान् य स वै शुद्ध दृष्टि॥२॥
सिद्धे जयप्पसिद्धे, चउविहाराहणाफलं पत्ते।
वंदिता अरंहते, वोच्छं आराहणा कमसो॥३॥
उज्झोवणमुज्झवणंणिव्वाहण साहण च णिच्छरणं।
दंसणणाणचरित्तं तवाणमाराहणा भणिया॥४॥

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग.॥१॥ तत्त्वार्थ श्रद्धान सम्यग्दर्शनं॥२॥ तन्निसर्गादधिगमाद्वा॥३॥ जीवाजीवास्रवबधसंवर निर्जरा मोक्षास्तत्त्वम्॥४॥ नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यास .॥५॥ प्रमाण नयैरधिगमः॥६॥ निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधानतः॥७॥ सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालातरभावाल्पबहुत्वैश्च॥८॥ मतिश्रुतावधिमन· पर्ययकेवलानि ज्ञानम्॥९॥ तत्प्रमाणे॥१०॥ आद्ये परोक्षम्॥११॥ प्रत्यक्षमन्यत्॥१२॥ मतिः स्मृति संज्ञाचिंताभिनिबोधइत्यनर्थांतरम्॥१३॥ तदिंद्रियानिंद्रियनिमित्तम्॥१४॥ अवग्रहेहावायधारणा·॥१५॥ बहुबहुविधक्षिप्रानि सृतानुक्तध्रुवाणां सेतराणा॥१६॥ अर्थस्य॥१७॥ व्यंजनस्यावग्रह.॥१८॥ न चक्षुरनिंद्रियाभ्यां॥१९॥ श्रुतं मतिपूर्व द्वयनेकद्वादशभेदं॥२०॥ भवप्रत्ययोवधिर्देवनारकाणां॥२१॥ क्षयोपशमनिमित्तः षड्विकल्प· शोषाणां॥२२॥ ऋजुविपुलमती मनः पर्यय·॥२३॥ विशुद्धयप्रतिपाताभ्यां तद्विशेष·॥२४॥विशुद्धि-

सर्व विभाव भिन्न भासित होते ही प्रगटा सहज स्वरूप।
गुरु अनन्त का पिंड आत्मा है आनन्द अभेद स्वरूप॥

क्षेत्र-स्वामि-विषयोम्योऽवधि मन· पर्ययथोः॥२५॥ मतिश्रुतयोर्निबंधो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु॥२६॥ रुपिष्ववधे .॥२७॥ तदनतभागे मनः पर्ययस्य॥२८॥ सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य॥२९॥ एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्य.॥३०॥ मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च॥३१॥ सदसतोरविशेषाद्य-दृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत्॥३२॥ नैगमसंग्रहव्यवहारर्जु सूत्रशब्दसमभिरुढैवभूता नयाः॥३३॥

इति तत्वार्थधिगमे मोक्षशास्त्रे प्रथमोऽध्याय॥१॥

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रच्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च॥१॥ द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम्॥२॥ सम्यक्त्वचारित्रे॥३॥ ज्ञानदर्शनदानलाभ-भोगोपभोगवीर्याणि च॥४॥ ज्ञानाज्ञान दर्शनलब्ध यश्चतुस्त्रित्रिपंचभेदाः सम्यक्त्वचारित्रसयमासंयमाश्च॥५॥ गति कषाय लिंग मिथ्यादर्शनाज्ञाना संयता सिद्धलेश्याश्चतुश्चतुश्त्र्ये कैकैकैकषड्भेदाः॥६॥ जीवभव्याभव्यत्वानि च॥७॥ उपयोगो लक्षणम्॥८॥ स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः॥९॥ ससारिणोमुक्ताश्च॥१०॥ समनस्काऽमनस्काः॥११॥ संसारिणस्त्रसस्थावरा॥१२॥ पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावरा·॥१३॥ द्वींद्रियादयस्त्रसा॥१४॥ पंचेंद्रियाणि॥१५॥ द्विविधानि॥१६॥ निर्वृत्युपकरणे द्रव्येंद्रियम्॥१७॥ लब्ध्युपयोगौ भावेंद्रियम्॥१८॥ स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुः श्रोत्राणि॥१९॥ स्पर्शरसगंधवर्ण-शब्दास्तदर्थाः॥२०॥ श्रुतमनिद्रियस्य॥२१॥ वनस्पत्यंतानामेकम्॥२२॥ कृमिपिपीलिकाभ्रमर-मनुष्यादिनामेकैकवृद्धानि॥२३॥ संज्ञिन· समनस्का॥२४॥ विग्रहगतौ कर्मयोग॥२५॥ अनुश्रेणि गतिः॥२६॥ अविग्रहा जीवस्य॥२७॥ विग्रहवती च संसारिणः प्राक्चतुर्भ्य॥२८॥ एकसमयाऽविग्रहा॥२९॥ एकंद्वौत्रीन्वानाहारकः॥३०॥ संमूर्छन

द्रव्य अनादि अनंत एक परिपूर्ण शुद्ध ज्ञायक गतिमान।
स्वपर प्रकाशक ज्ञान स्वरूपी है सर्वांश अमित छविमान॥

गर्भोपपादा जन्म ॥३१॥ सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चेकशस्तद्योनय· ॥३२॥ जरायुजांडजपोतानां गर्भः॥३३॥ देवनारकाणामुपपाद. ॥३४॥ शेषाणां सम्मूर्च्छनम् ॥३५॥ औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानि शरीराणि ॥३६॥ परं परं सूक्ष्मम् ॥३७॥ प्रदेशतोऽसख्येयगुणंप्राक्तैजसात् ॥३८॥अनंतगुणे परे ॥३९॥ अप्रतिघाते ॥४०॥ अनादिसंबंधे च ॥४१॥ सर्वस्य ॥४२॥ तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥४३॥निरुपभोगमंत्यम् ॥४४॥ गर्भसंमूर्च्छनजमाद्यम् ॥४५॥ औपपादिकं वैक्रियिकम् ॥४६॥ लब्धिप्रत्यय च ॥४७॥ तैजसमपि ॥४८॥ शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसयतस्यैव ॥४९॥ नारकसंमूर्च्छिनो नपुसकानि ॥५०॥ न देवा.॥५१॥ शेषास्त्रिवेदा.॥५२॥ औपपादिकचरमोत्तमदेहाऽसंख्येय वर्षा युषोऽन पवर्त्यायुषः ॥५३॥

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे द्वितीयोऽध्याय ॥२॥

रत्नशर्कराबालुकापंकधूमतमोमहातम· प्रभाभूमयो धनांबुवाता काश प्रतिष्ठा. सप्ताऽधोऽधः ॥१॥ तासुत्रिंशत्पंचविंशतिपंचदशदशत्रिपचो नैक नरकशतसहस्त्रानि पंच चैव यथाक्रमम् ॥२॥ नारका नित्याऽशुभतर लेश्यापरिणामदेह वेदनाविक्रिया·॥३॥ परस्परोदीरित–दु.खा ॥४॥ संक्लिष्टाऽसुरोदीरितदु.खाश्च प्राक् चतुर्थ्याः ॥५॥ तेष्वेक त्रिसप्तदश सप्तदशद्वाविंशतित्रय- स्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थिति ॥६॥ जंबूद्वीपलवणोदादय· शुभनामानो द्वीपसमुद्रा.॥७॥ द्विर्द्विर्विष्कंभाः पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतय· ॥८॥ तन्मध्येमेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्त्रविष्कंभो जंबूद्वीपः ॥९॥ भरत हैमवत हरिविदेह रम्यक हैरण्यवतैरावतवर्षा· क्षेत्राणि ॥१०॥ तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महा हिमवन्निषिधनीलरुक्मिशिखरिणो वर्षधरपर्वताः ॥११॥ हेमार्जुन तप नीयवैडूर्यरजतहेममयाः ॥१२॥ मणिविचित्रपार्श्वा उपरिमूले च

तुल्यविस्तारा: ॥१३॥ पद्ममहापद्मतिगिछकेशरिमहापुंडरीक-पुंडरीका हृदास्तेषामुपरि ॥१४॥ प्रथमो योजनसहस्त्रायामस्तदर्द्धविष्कंभो हृद:॥१५॥ दशयोजनावगाह. ॥१६॥ तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ॥१७॥ तद्द्विगुणद्विगुणा हृदा. पुष्कराणि च ॥१८॥ तन्निवासिन्यो देव्य श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्य· पल्योपमस्थितय· ससामानिकपरिषत्का ॥१९॥ गंगासिंधुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकांतासीतासीतोदा नारी नर कांतासुवर्णरूप्यकूलारक्तारक्तोदा सरितरतन्मध्यगा·॥२०॥ द्वयोर्द्वयो पूर्वा· पूर्वगा·॥२१॥ शेषास्त्वपरगा·॥२२॥ चतुदर्शनदीसहस्त्रपरिवृता गंगासिंध्वादयो नद्य. ॥२३॥ भरत षड्विंशतिपंचयोजनशतविस्तार षट्चैकोनविंशतिभागा योजनस्य ॥२४॥ तद्द्विगुणद्विगुणविस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहांता. ॥२५॥ उत्तरा दक्षिणतुल्या ॥२६॥ भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्या ॥२७॥ ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिता ॥२८॥ एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हैमवतकहारिवर्षकदैवकुरवका.॥२९॥ तथोत्तरा ॥३०॥ विदेहेषु संख्येयकाला ॥३१॥ भरतस्य विष्कंभो जंबूद्वीपस्य नवतिशतभाग.॥३२॥ द्विर्धातकीखंडे ॥३३॥ पुष्करार्द्धे च ॥३४॥ प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्या ॥३५॥ आर्याम्लेच्छाश्च ॥३६॥ भरतैरावतविदेहा कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्य. ॥३७॥ नृस्थिती परावरे त्रिपल्योपमांतर्मुहुर्ते ॥३८॥ तिर्यग्योनिजानां च ॥३९॥

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे तृतीयोऽध्याय ॥३॥

देवाश्चतुर्णिकाया ॥१॥ आदितस्त्रिषु पीतांत लेश्या·॥२॥ दशाष्ट पंच द्वादशविकल्पा कल्पोपपन्नपर्यता ॥३॥ इन्द्र सामानिक त्रायस्त्रिंशत्पारिषदात्मरक्षलोकपालानीकप्रकीर्णकाभियोग्यकिल्विषिकाश्चैकश:॥४॥ त्रायस्त्रिंशलोकपालवर्ज्या व्यंतरज्योतिष्का· ॥५॥ पूर्वयोर्द्वीन्द्रा । ॥६॥ कायप्रवीचारा आ

ज्ञानमयी वैराग्य भाव उपयुक्त हो गया उसी समय।
द्रव्य दृष्टि से सदा शुद्ध निज भाव हो गया उसी समय॥

ऐशानात् ॥७॥ शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचाराः॥८॥ परेऽप्रवीचाराः ॥९॥ भवनवासिनोसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवात स्तनितो दधिद्वीपदिक्कुमाराः ॥१०॥ व्यंतराः किन्नरकिंपुरुषमहोरगगंधर्वयक्ष राक्षसभूतपिशाचाः॥११॥ ज्योतिष्का सूर्याचद्रमसौ ग्रह नक्षत्र प्रकीर्णक तारकाश्च ॥१२॥ मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥१३॥ तत्कृतः काल विभागः ॥१४॥ बहिरवस्थिताः ॥१५॥ वैमानिकाः॥१६॥ कल्पोपपन्ना कल्पातीताश्च ॥१७॥ उपर्युपरि ॥१८॥ सौधर्मेशानसानत्कुमार-माहेन्द्र ब्रह्मब्रह्मोत्तरलांतवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रशतार-सहस्त्रारेष्वानतप्राणतयो रारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजयवैजयंतजयंतापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥१९॥ स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्या विशुद्धींद्रियावधिविषयतोधिकाः॥२०॥ गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीनाः ॥२१॥ पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु ॥२२॥ प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः ॥२३॥ ब्रह्मलोकालया लौकांतिकाः॥२४॥ सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिता-व्याबाधारिष्टाश्च ॥२५॥ विजयादिषु द्विचरमाः ॥२६॥ औपपादिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्यो नयः ॥२७॥ स्थितिरसुर-नाग-सुपर्ण-द्वीपशेषाणां सागरोपम त्रिपल्योपमार्द्धहीन मिताः॥२८॥ सौधर्मेशानसागरोपमेऽधिके॥२९॥ सानत्वकुमार माहेन्द्रयोः सप्त ॥३०॥ त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपंच-दशभिरधिकानितु॥३१॥ आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च॥३२॥ अपरा पल्योपममधिकम्॥३३॥ परतः परतः पूर्वापूर्वानंतरा॥३४॥ नारकाणां च द्वितीयादिषु॥३५॥ दशवर्षसहस्त्राणि प्रथमायाम् ॥३६॥ भवनेषु च ॥३७॥ व्यंतराणां च ॥३८॥ परापल्योपममधिकम् ॥३९॥ ज्योतिष्काणां च ॥४०॥ तदष्ट भागोऽपरा ॥४१॥ लौकांतिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ॥४२॥

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः॥४॥

जीव तत्व का आलबन सवर निर्जरा मोक्ष हित रूप।
है आलबन अजीव तत्व का आस्त्रव बध अहित दुख रूप ॥

अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ॥१॥ द्रव्याणि ॥२॥ जीवाश्च ॥३॥ नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥४॥ रूपिणः पुद्गलाः ॥५॥ आआकाशादेक द्रव्याणि ॥६॥ निष्क्रियाणि च ॥७॥ असख्येया प्रदेशा धर्माधर्मैक जीवानाम् ॥८॥ आ आकाशस्यानंताः॥९॥ संख्येयासंख्येयाश्च पुद्लानां ॥१०॥ नाणो· ॥११॥ लोकाकाशेऽवगाह ॥१२॥ धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥१३॥ एकप्रदेशादिषुभाज्य· पुद्गलानां॥१४॥ असंख्येयभागादिषु जीवाना ॥१५॥ प्रदेशसंहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत् ॥१६॥ गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरूपकार· ॥१७॥ आकाशस्यावगाह· ॥१८॥ शरीरवाङ्मन· प्राणापाना· पुद्गलानाम् ॥१९॥ सुखदु खजीवितमरणोपग्रहाश्च ॥२०॥ परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥२१॥ वर्तनापरिणाम क्रियापरत्वापरत्वे च कालस्य ॥२२॥ स्पर्शरसगधवर्णवत· पुद्गलाः॥२३॥ शब्दबंधसौक्ष्म्यस्थौल्य-संस्थानभेदतमश्छाया तपोद्योतवंतश्च ॥२४॥ अणवस्कंधाश्च ॥२५॥ भेदसघातेभ्यः उत्पद्यंते ॥२६॥ भेदादणु ॥२७॥ भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः ॥२८॥ सद्द्रव्य लक्षणम् ॥२९॥ उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत् ॥३०॥ तद्भावाव्ययं नित्यं ॥३१॥ अर्पितानर्पितसिद्धे ॥३२॥ स्निग्धरूक्षत्वादबन्ध·॥३३॥ न जघन्यगुणानाम् ॥३४॥ गुणसाम्ये सद्दशानाम् ॥३५॥ द्व्यधिकादिगुणानाम् तु ॥३६॥ बधेऽधिकौपारिणामिकौ च ॥३७॥ गुणपर्ययवद्द्रव्यम् ॥३८॥ कालश्च ॥३९॥ सोऽनंतसमय· ॥४०॥ द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणा· ॥४१॥ तद्भावः परिणामः॥४२॥

इति तत्वार्थधिगमे मोक्षशास्त्रे पचमोऽध्याय ॥५॥

कायवाङ्मन कर्मयोग· ॥१॥ स आस्रवः॥२॥ शुभः पुण्यस्याशुभ·पापस्य॥३॥ सकषायाकषायो· सापरायिकेर्यापथयो ॥४॥ इंद्रियकषाया व्रत क्रियाः पंचपंचविशतिसख्याः पूर्वस्य भेदाः ॥५॥ तीव्र मंद ज्ञाताज्ञात भावाधिकरण वीर्यविशेषेभ्यस्तद्विशेष·

हित का कारण त्वरित ग्रहण कर त्वरित अहित कारण का त्याग।
आत्म तत्व से जो विरुद्ध है उसका कारण से धार विराग ॥

॥६॥ अधिकरणं जीवा-जीवा. ॥७॥ आद्यसंरंभसमारसमारम्मारमन योगकृतकारितानुमतकषायविशेषैस्त्रिरित्रिरस्त्रिश्चतुश्चैकशः ॥८॥ निर्वर्तनानिक्षेपसंयोगनिसर्गाः द्विचतुर्द्विर्त्रिभेदा. परं ॥९॥ तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यान्तरासायादनोपघाता ज्ञानदर्शनावर्णयोः ॥१०॥ दु ख शोकतापाक्रंदनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभय-स्थानान्यसद्वेद्यस्य ॥११॥ भूतव्रत्यनुकंपादानसरागसंयमादियोगः क्षांति· शौचमिति सद्वेद्यस्य ॥१२॥ केवलिश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य ॥१३॥ कषायोदया तीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्य ॥१४॥ बह्वारभपरिग्रहत्व नारकस्यायुष ॥१५॥ माया तैर्यग्योनस्य ॥१६॥ अल्पारंभपरिग्रहत्व मानुषस्य ॥१७॥ स्वभावमार्दवं च ॥१८॥ निःशीलव्रततत्वं च सर्वेषाम् ॥१९॥ सरागसंयमसंयमासंयमाकामनिर्जराबालतपासि दैवस्य ॥२०॥ सम्यक्त्वं च॥२१॥ योगवक्रता विसंवादन चाशुभस्य नाम्न. ॥२२॥ तद्विपरीतं शुभस्य ॥२३॥ दर्शनाविशुद्धिर्विनयसंपन्नताशीलव्रतेष्व नतीचारोऽभीक्ष्ण ज्ञानो पयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी साधुसमाधिर्वैयावृत्यकरणमर्हदाचार्य बहुश्रुतप्रवचन भक्तिरावस्यकापरिहाणिमार्गप्रभावना प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थंकरत्वस्य॥२४॥ परात्म-निन्दा-प्रशसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचर्गोत्रस्य ॥२५॥ तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ॥२६॥ विघ्न करणमंतरायस्य ॥२७॥

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे षष्ठोऽध्याय

हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ॥१॥ देशसर्वतोणुमहती ॥२॥ तत्स्थैर्यार्थ भावना पच पच ॥३॥ वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानिपंच॥४॥ क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पंच ॥५॥ शून्यागार विमोचितावासपरोपरोधाकरण भैक्ष्यशुद्धिसद्धर्मा - विसंवादा· पंच॥६॥ स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहरांगनिरीक्षण-

यह व्यवहार हेय है फिर भी स्वत मार्ग मे आता है।
एक मात्र निश्चय ही शवाश्वत मुक्ति पूरी पहुँचाता है ॥

पूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीर संस्कारत्यागा· पंच ॥७॥ मनोज्ञामनोज्ञेंद्रिय विषयरागद्वेषवर्जनानि पच ॥८॥ हिंसादिष्विहामुत्रापाया वद्यदर्शनम् ॥९॥ दु.खमेववा ॥१०॥ मैत्रीप्रमोदका रुण्यमाध्यस्थ्यानि च सत्त्वगुणाधिकक्लिश्य मानाविनयेषु॥११॥ जगत्कायस्वभावौ वा सवेगवैराग्यार्थम् ॥१२॥ प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा ॥१३॥ असदभिधानमनृतम् ॥१४॥ अदत्तादानं स्तेयम् ॥१५॥ मैथुनमब्रह्म ॥१६॥ मूर्छा परिग्रह ॥१७॥ नि·शल्योव्रती ॥१८॥ अगार्यनगारश्च ॥१९॥ अणुव्रतोऽगारी ॥२०॥ दिग्देशानर्थदडविरतिसामयिक-प्रोषधोपवासोपभोगपरिभोगपरिमाणातिथि संविभागव्रतसपन्नश्च ॥२१॥ मारणांतिकी सल्लेखना जोषिता ॥२२॥ शंकाकाक्षाविचिकित्सान्यदृष्टिप्रशसासंस्तवा सम्यग्दृष्टे रतीचारा ॥२३॥ व्रतशीलेषु पचपंच यथाक्रमम् ॥२४॥ बधवधच्छेदातिभारा रोपणान्नपान निरोधाः॥२५ ॥ मिथ्योपदेशरहोभ्याख्यानकूटलेख-क्रियान्यासापहारसाकारमंत्रभेदा ॥२६॥ स्तेनप्रयोगतदाहृतादान विरुद्ध राज्याति क्रमहीनाधिकमानोन्मानप्रतिरुपकव्यवहारा. ॥२७॥ परविवाह करणेत्वरिकापरिगृहीतापरिगृहीतागमनानंगक्रीडा कामतीव्राभिनिवेशा ॥२८॥ क्षेत्रवारतुहिरण्यसुवर्णधनधान्य-दासीदासकुप्यप्रमाणातिक्रमा ॥२९॥ ऊर्ध्वास्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्र वृद्धिस्मृत्यंतराधानानि ॥३०॥ आनयनप्रेष्य प्रयोगशब्दरूपानुपातपुद्लक्षेपा· ॥३१॥ कदर्पकौत्कुच्य-मौखर्यासमीक्ष्याधि करणोपभोगपरिभोगानर्थक्यानि ॥३२॥ योग दुष्प्रणिधानानादरस्मृत्य नुपरथानानि॥३३॥अप्रत्यवेक्षिता प्रमार्जितोत्सर्गादान सस्तरोपक्रमणा नादरस्मृत्यनुपस्थाना नि. ॥३४॥ सचित्तसंबधसमिश्राभिषवदु: पक्वाहारा ॥३५॥ सचित्तनिक्षेपापिधानपरव्यपदेशमात्सर्यकालातिक्रमा ॥३६॥ जीवित मरणाशसामित्रानुरागसुखानुबंधनिदानानि ॥३७॥

निश्चय नाम अभेद वस्तु का और भेद का है व्यवहार।
अज्ञानी व्यवहाराश्रित है ज्ञानी का निश्चय आधार ॥

अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानं ॥३८॥ विधिद्रव्यदातृ-पात्रविशेषात्तद्विशेष ॥३९॥

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे सप्तमोऽध्याय ॥७॥

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बंधहेतव. ॥१॥ सकषायत्वाज्जीव कर्मणोयोग्यान्पुद्गलानादत्ते स बधः ॥२॥ प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशा-स्तद्विधय ॥३॥ आद्यो ज्ञानदर्शना-वरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रांतरायाः ॥४॥ पंचनवद्व्यष्टा-विंशतिचतुर्द्विचत्वारिंशद्द्विपंचभेदा यथाक्रमम् ॥५॥ मतिश्रुतावधिमन पर्यय केवलानाम् ॥६॥ चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रा निद्रानिद्रा प्रचला-प्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धयश्च ॥७॥ सद्सद्वेद्ये ॥८॥ दर्शनचारित्रमोहनीयाकषायकषाय-वेदनीयाख्यास्त्रिद्विनवषोडश भेदा. सम्यक्त्वमिथ्यात्व-तदुभयान्यकषायकषायौहास्यरत्यरतिशोक भय जुगुप्सा-स्त्रीपुन्नपुंसकवेदा अनतानुबंध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यान संज्वलनविकल्पाश्चैकश· क्रोधमानमायालोभाः ॥९॥ नारकतैर्यग्योनमानुषदैवानि ॥१०॥ गतिजातिशरीरांगोपांग-निर्माणबधनसंघातसस्थानसंहननस्पर्शरसगंध-वर्णानुपूर्व्या-गुरुलघूपघातपरघातातपोद्योतोच्छ्वास विहायोगतय. प्रत्येकशरीर त्रस सुभगसुस्वरशुभसूक्ष्म पर्याप्ति स्थिरादेय यश. कीर्ति सेतराणि तीर्थकरत्व च॥११॥ उच्चैर्नीचैश्च ॥१२॥ दानलाभभोगोपभोगवीर्याणाम् ॥१३॥ आदितस्तिसृणामंतरायस्य च त्रिंशत्सागरोपम कोटीकोट्य परा स्थिति ॥१४॥ सप्ततिर्मोहनीयस्य ॥१५॥ विंशतिर्नामगोत्रयो ॥१६॥ त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुष ॥१७॥ अपरा द्वादशमुहूर्ता वेदनीयस्य ॥१८॥ नामगोत्रयोरष्टौ ॥१९॥ शेषाणामंतर्मुहूर्ता॥२०॥ विपाकोनुभव ॥२१॥ स यथानाम् ॥२२॥ ततश्च निर्जरा ॥२३॥ नामप्रत्यया· सर्वतो योगविशेषात्सूक्ष्मैक क्षेत्रावगाहस्थिता सर्वात्म

पर्यायो के भवर जाल मे उलझा स्वय दुख पाता है।
निज स्वरूप से सदा अपरिचित रह भव कष्ट उठाता है ॥

प्रदेशेष्वनंतानंतप्रदेशाः ॥२४॥ सद्वेद्यशुभायु र्नामगोत्राणि पुण्यम् ॥२५॥ अतोऽन्यत्पापम् ॥२६॥

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रेऽष्टमोध्याय ॥८॥

आश्रवनिरोधः संवर ॥१॥ स गुप्तिसमिति धर्मानुप्रेक्षा-परीषहजयचारित्रै ॥२॥ तपसा निर्जरा च ॥३॥ सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः ॥४॥ ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितय. ॥५॥ उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्य-शौचसंयमतपस्त्यागाकिचन्यब्रह्मचर्याणि धर्मा ॥६॥ अनित्याशरणससारैकत्वान्यत्वा-शुच्यास्त्रावसंवर निर्जरालोकबोधिदुर्लभ धर्म स्वाख्यातत्वानुचिंतनमनुप्रेक्षा ॥७॥ मार्गाच्यवननिर्जरार्थ परिषोढव्या. परीषहा ॥८॥ क्षुत्पिपासाशीतोष्ण दशमशकनाग्न्यार-तिस्त्रीचर्यानिषद्या-शय्याक्रोशवधयाचनाऽलाभरोगतृण स्पर्श मल सत्कारपुरस्कारप्रज्ञाऽज्ञानाऽदर्शनानि ॥९॥ सूक्ष्मसांपरा य छद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश ॥१०॥ एकादश जिने ॥११॥ बादरसांपराये सर्वे॥१२॥ ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ॥१३॥ दर्शनमोहांतराययोरदर्शनालाभौ ॥१४॥ चारित्रमोहे नाग्न्या रति स्त्रीनिषद्याक्रोशयाचनासत्कार पुरस्कारा ॥१५॥ वेदनीये शेषा ॥१६॥ एकादयोभाज्या युगपदेकस्मिन्नैकोनविंशते॥१७॥ सामायिकछेदोपस्थापनापरिहार विशुद्धि सूक्ष्मसांपराययथाख्यात मिति चारित्रमम्॥१८॥ अनशनावमौदर्यवृत्ति परिसख्यान-रसपरित्यागविविक्त शय्यासनकायक्लेशा बाह्य तप ॥१९॥ प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्यस्वाध्याय व्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम् ॥२०॥ नवचतुर्दशपंचद्विभेदायथाक्रम प्राग्ध्यानात् ॥२१॥ आलोचनाप्रतिक्रमणदुमयविवेकव्युत्सर्गतपश्छेदपरिहारोपस्थापना ॥२२॥ ज्ञानदर्शनचारित्रोपचारा· ॥२३॥ आचार्योपाध्याय तपस्वि शैक्ष्य ग्लानगणकुलसंघसाधुमनोज्ञानाम् ॥२४॥ वाचनापृच्छनानुप्रेक्षाम्नाय धर्मोपदेशा ॥२५॥ बाह्याभ्यंतरोपध्यो

लोकाकाश प्रमाण असंख्य प्रदेशी जीव त्रिकाली है।
जो ऐसा मानता जीव वह अनुपम वैभवशाली है।।

।।२६।।उत्तम संहननस्येकाग्र चिन्ता-निरोधो ध्यान मान्तर्मुहूतात् ।।२७।। आर्त्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि ।।२८।। परे मोक्षहेतू ।।२९।। आर्त्तममनोज्ञस्य संप्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहार ।।३०।। विपरीतं मनोज्ञस्य ।।३१।। वेदनायाश्च ।।३२।। निदानं च ।।३३।। तदविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानां ।।३४।।हिंसाऽनृतस्तेय विषय संरक्षणणेभ्यो रौद्रम विरत देश विरतयो. ।।३५।। आज्ञापायविपाक-सस्थानविचयाय धर्म्यम् ।।३६।। शुक्ले चाद्ये पूर्वविद.।।३७।। परे केवलिन. ।।३८।। पृथक्त्वैकत्व वितर्कसूक्ष्मक्रिया-प्रतिपातिव्युपरतक्रियानिवर्तीनि ।।३९।। त्र्यैकयोगकाययोगायोगानां ।।४०।। एकाश्रये सवितर्कवीचारे पूर्वे ।।४१।। अवीचारद्वितीय ।।४२।। वितर्क श्रुतम् ।।४३।। वीचारोऽर्थव्यंजन योगसंक्रांति. ।।४४।। सम्यग्दृष्टि श्रावक विरतानंन्तविजोयकदर्शन-मोहक्षपकोपशमकोपशांत मोहक्षपक क्षीण मोहजिना क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जरा· ।।४५।। पुलाकबकुशकुशील निर्ग्रथस्नातका निर्ग्रथा·।।४६।। सयम श्रुतप्रतिसेवना तीर्थलिगलेश्योपपादस्थानविकल्पत. साध्या ।।४७।।

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे नवमोऽध्याय ।।९।।

मोहक्षयाज्ज्ञान दर्शनावरणांतरायक्षयाच्च केवलम् ।।१।। बधहेत्वभाव निर्जराभ्यांकृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्ष ।।२।। औपशमिकादि भव्यत्वानां च।।३।। अन्यत्र केवल सम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्य· ।।४।।तदनतरमूर्ध्वगच्छत्या-लोकातात्।।५।। पूर्वप्रयोगादसंगत्वाद्बंधच्छेदात्तथागति परिणामाच्च ।।६।। आविद्धकुलालचक्रवद्धयपगतलेपालाबुवदेरंड बीजवदग्नि शिखावच्चा।।७।। धर्मास्तिकायाभावात् ।।८।। क्षेत्रकालगतिलिग तीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबोधितज्ञानावगाहनातर सख्याल्पबहुत्वत साध्या ।।९।।

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे दशमोऽध्याय ।।१०।।

पाप पुण्य का फल बधन है शुद्ध भाव से होता मुक्त।
शुद्ध भाव से जो सुदूर है वही जीव पर से सयुक्त ॥

कोटिशत द्वादश चैव कोट्यो लक्ष्याण्यशीतिरत्र्यधिकानि चैव।
पचाशदष्टौ च सहस्त्रसख्यामेतद्श्रुत पचपदं नमामि ॥१॥
अरहंत भासियत्थं गणहरदेवेहि गथिय सव्व ।
पणमामि भत्तिजुतो, सुदणाणमहोवयं सिरसा ॥२॥
अक्षरमात्रपदस्वरहीन व्यजनसधिविवर्जितरेफम् ।
साधुभिरत्र मम क्षमितव्यं को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे ॥३॥
दशाध्याये परिच्छिन्ने तत्वार्थे पठिते सति।
फलं स्यादुपवासस्य भाषितं मुनिपुंगवै ॥४॥
तत्वार्थ सूत्रकर्त्तार गृद्धपिच्छोपलक्षितम् ।
वदे गणीन्द्रसंजातमुमास्वामिमुनीश्वरम् ॥५॥
जं सक्कइ त कीरइ, जं पण सक्कइ तहेव सद्दहणं ।
सद्दहमाणो जीवो पावइ अजरामरं ठाणम् ॥६॥
तवयरणं वयधरण, सजमसरण च जीवदयाकरणम् ।
अते समाहिमरण, चउविह दुक्ख णिवारेई ॥७॥

इति तत्वार्थसूत्रापरनाम तत्वार्थाधिगमेमोक्षशास्त्र समाप्तम् ।

卐

जय बोलो सम्यक् दर्शन की

जय बोलो सम्यक् दर्शन की। रत्नत्रय के पावनधन की॥
यह मोह ममत्व भगाता है, शिव पथ मे सहज लगाता है।
जय निज स्वभाव आनद धन की ॥ जय बोलो ॥१॥
परिणाम सरल हो जाते हैं, सारे सकट टल जाते है।
जय सम्यक् ज्ञान परम धन की ॥ जय बोलो ॥२॥
जय तप सयम फल देते हैं, भव को बाधा हर लेते है।
जय सम्यक् चारित पावन की ॥ जय बोलो ॥३॥
निज परिणति रूचि जुड जाती है, कर्मो की रज उड जाती है।
जय जय जय मोक्ष निकेतन की ॥ जय बोलो ॥४॥

निन्दा करने वाले का उपकार मानता समभावी।
निज मे सावधान रहता है होता कभी न भव भावी ॥

श्री मानतुंगाचार्य विरचित आदिनाथ भक्तामर स्त्रोत

भक्तामरप्रणतमौलिमणिप्रभाणा ।
मुद्योतकं दलित–पाप–तमो–वितानम् ।
सम्यक् प्रणम्य जिन पाद युग युगादा
वालम्बन भवजले पततां जनानाम् ॥१॥

य. सस्तुतः सकल–वाङ्मय–तत्वबोधा –
दुद्भूत–बुद्धि पटुभि सुरलोक–नाथै ।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितय–चित्त हरैरुदारै .
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥२॥

बुद्धया विनापि विबुधार्चित–पाद–पीठ
स्तोतु समुद्यतमतिर्विगत–त्रपोऽहम् ।
बालं विहाय जलं सस्थितमिन्दु बिम्ब–
मन्य. क इच्छति जन सहसा ग्रहीतुम् ॥३॥

वक्तुं गुणान्गुण समुद्र शशाङ्क–कान्तान्
कस्ते क्षम· सुर–गुरु–प्रतिमोऽपि बुद्धया ।
कल्पान्त–काल–पवनोद्धत–नक्र–चक्रं
को वा तरीतुमलमम्बुनिधि भुजाभ्याम् ॥४॥

सोऽह तथापि तव भक्ति–वशान्मुनीश
कर्तु स्तव विगत–शक्तिरपि प्रवृत ।
प्रीत्यात्म–वीर्यमविचार्य मृगी मृगेन्द्रं
नाभ्येति किं निज–शिशो परिपालनार्थम् ॥५॥

अल्पश्रुत श्रुतवतां परिहासधाम ।
त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम् ।
यत्कोकिल किल मधौ मधुर विरौति
तच्चारु–चाम्र–कलिका–निकरैकहेतु ॥६॥

आगम के अभ्यास पूर्वक श्रद्धाज्ञान चरित्र सवार।
निज मे ही सकल भाव लाकर तू अपना रुप निहार ॥

त्वत्संस्तवेन भव-सन्तति-सन्निबद्धं
पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम्।
आक्रान्त-लोकमलि-नीलममेषमाशु
सूर्याशु भिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ॥७॥
मंत्त्वेति नाथ तव सस्तवनं मयेद-
मारभ्यते तनु-धियापि भव प्रभावात्।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनी-दलेषु
मुक्ता-फलद्युतिमुपैति ननूद-बिन्दु ॥८॥
आस्ता तव स्तवनमस्त-समस्त-दोषं
त्वत्संकथाऽपि जगता दुरितानि हन्ति।
दूरे सहस्रकिरण· कुरुते प्रभैव
पद्माकरेषु जलजानि विकासभाजि ॥९॥
नात्यद्भुत भुवनभूषण भूतनाथ
भुतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्त।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन कि वा
भूत्याश्रित य इह नात्मसमं करोति ॥१०॥
दृष्टवा भवन्तमनिमेषविलोकनीय
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षु।
पीत्वा पय शशिकरद्युति दुग्धसिधो
क्षारं जलं जलनिधेरसितु क इच्छेत ॥११॥
यै शान्तराग-रुचिभि· परमाणुभिस्त्व
निर्मापितस्त्रिभुवनैकललामभूत।
तावन्त एव खलु तेप्यणव· पृथिव्यां
यत्ते समानमपर न हि रूपमस्ति ॥१२॥
वक्त्र क्व ते सुरनरोरगनेत्रहारि
नि शेष-निर्जित-जगत्त्रितयोपमानम्।
बिम्बं कलङ्कमलिनं क्व निशाकरस्य
यद्वासरे भवति पाण्डु पलाशकल्पम् ॥१३॥

यदि समता परिणाम नहीं है तो स्वभाव की प्राप्ति नहीं।
यदि स्वभाव की प्राप्ति नहीं तो होती सुख की व्याप्ति नहीं ।।

संपूर्ण मंडल शशाक कला कलाप
शुभ्रा गुणस्त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति।
ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वर नाथ मेकम्
कस्तान्निवारयति सचरतो यथेष्टम् ।।१४।।
चित्र किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्गनाभि
र्नीत मनागपि मनो न विकारमार्गम् ।
कल्पान्तकालमरुता चलिताचलेन
कि मन्दराद्रिशिखर चलितं कदाचित् ।।१५।।
निर्धूमवर्तिरपवर्जिततैलपूर
कृत्स्न जगत्त्रयमिद प्रकटीकरोषि ।
गम्यो न जातु मरुता चलिताचलानां
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ ! जगत्प्रकाश ।।१६।।
नास्त कदाचिदुपयासि न राहुगम्य·
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति ।
नाम्भोधरोदरनिरुद्धमहाप्रभाव
सूर्यातिशायि–महिमासि मुनीन्द्र !लोके ।।१७।।
नित्योदय दलितमोहमहान्धकार
गम्यं न राहु वदनस्य न वारिदानाम् ।
विभ्राजते तव मुकाब्जमनल्पकान्ति
विद्योतयज्जगदपूर्व–शशाङ्क–बिम्बम् ।।१८।।
कि शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा
युष्मन्मुखेन्दु–दलितेषु तमस्सु नाथ ।
निष्पन्न–शालि–वन–शालिनि जीव–लोके
कार्य कियज्जलधरैर्जल–भार–नम्रै ।।१९।।
ज्ञान यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं
नैवं तथा हरि–हरादिषु नायकेषु ।
तेज स्फुरन्मणिषु याति तथा महत्त्वं
नैवं तु काचशकले किरणाकुलेऽपि ।।२०।।

यदि चुनाव करना है तुमको तो फिर निज का करो चुनाव।
पर द्रव्यो अरु परभावो का करना होगा तुम्हे अभाव ॥

मन्ये वरं हरि-हरादय एव दृष्टा
दृष्टेषु येषु हृदय त्वयि तोषमेति।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्य·
कश्चिन्मनो हरति नाथ भवान्तरेऽपि ॥२१॥

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान
नान्या सुतं त्वदुपम जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्त्र-रश्मिं
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥२२॥

त्वामामनन्ति मुनय परम पुमास -
मादित्य-वर्णममलं तमस· पुरस्तात्।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं
नान्य शिव· शिव-पदस्य मुनीन्द्र! पन्था ॥२३॥

त्वामव्यय विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्यं
ब्रम्हाणमीश्वर मनन्तमनङ्गकेतुम्।
योगीश्वर विदित-योगमनेकमेकं
ज्ञान-स्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्त:॥२४॥

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधात्।
त्व शकरोऽसि भुवनत्रयशंकरत्वात्।
धातासि धीर शिवमार्गविधेर्विधानात्।
व्यक्त त्वमेव भगवन्पुरूषोत्तमोसि ॥२५॥

तुभ्य नमस्त्रिभुवनार्तिहराय नाथ,
तुभ्यं नमः क्षितितलामलमूषणाय।
तुभ्य नमस्त्रिजगत परमेश्वराय,
तुभ्यं नमो जिनभवोदधिशोषणाय ॥२६॥

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै
स्त्वंसश्रितो निरवकाशतया मुनीश।
दोषैरुपात्तविविधाश्रयजातगर्वै·।
स्वप्नांतरेपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥२७॥

राग द्वेष को चुनो न अब तुम ये दोनों है भवदुख मूल।
आत्मा का हित करने वाले शुद्ध भाव ही है अनुकूल॥

उच्चैरशोकतरुसंश्रितमुन्मयूख
माभाति रूपममल भवतो नितांतम्।
स्पष्टोल्लसत्किरणमस्ततमोवितानं,
बिम्ब रवेरिवपयोधरपार्श्ववर्ति ॥२८॥
सिहासने मणिमयूखशिखाविचित्रे।
विभ्राजते तव वपु कनकावदातम्।
विम्बं वियद्विलसदशु लतावितानं
तुगोदयाद्रिशिरसीव सहस्त्ररश्मे ॥२९॥
कुंदावदातचलचामर चारुशोभं,
विभ्राजते तव वपु कलधौतकांतम्।
उद्यच्छशांकशुचिनि–झरवारिधार
मुच्चैस्तट सुरगिरेरिव शातकौंभम् ॥३०॥
छत्रत्रय तव विभाति शशाककात
मुच्चैस्थितं स्थगितभानुकरप्रतापम्।
मुक्ताफलप्रकर–जालविवृद्धशोभ,
प्रख्यापयत्त्रिजगत परमेश्वरत्वम् ॥३१॥
गंभीरताररवपूरितदिग्विभाग
स्त्रैलोक्यलोकशुभसगमभूतिदक्ष ।
सद्धर्मराज–जयघोषणघोषक सन्,
खे दुंदुभिर्ध्वनति ते यशस प्रवादी ॥३२॥
मंदारसुदरनमेरुसुपारिजात
संतानकादिकुसुमोत्करवृष्टिरुद्धा।
गधोदबिंदुशुभमंदमरुत्प्रपाता
दिव्यादिव पतति ते वचसां ततिर्वा ॥३३॥
शुम्भत्प्रभावलयभूरि विभा विभोस्ते,
लोकत्रये द्युतिमतां द्युतिमाक्षि–पन्ति।
प्रोद्यद्दिवाकर निरंतर भूरिसंख्या,
दीप्त्याजयत्यपि निशामपिसोमसौम्याम् ॥३४॥

कर्मोदय ये ज्ञाता दृष्टा बन कर कर्म निर्जरा का।
कर्मोदय मे दुख न कर्म बध मत करना निश्चय कर ॥

स्वर्गापवर्गगममार्गविमार्गणेष्ट:,
सद्धर्मतत्वकथनैक पटुस्त्रिलोक्या: ।
दिव्यध्वनिर्भवति ते विशदार्थ सर्व
भाषास्वभावपरिणामगुणै: प्रयोज्य:॥३५॥

उन्निद्रहेमनवपंकजपुंजकांती,
पर्युल्लसन्नखमयूख शिखाभिरामौ ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेंद्र ! धत्त: .
पद्मानि तत्र विबुधा: परिकल्पयंति ॥३६॥

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेंद्र,
धर्मपदेशनविधौ न तथा परस्य ।
याद्दक्प्रभा दिनकृत प्रहताधकारा
ताद्दक्कुतो ग्रहगणस्य विकाशिनोपि ॥३७॥

श्चयोतन्मदाविलविलोलकपोलमूल
मत्तभ्रमद्भ्रमरनादविवृद्धकोप ।
ऐरावताभमिभमुद्धतमापततं,
द्दष्ट्वां भयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ॥३८॥

भिन्नेभकुभगलदुज्जवलशोणिताक्त
मुक्ताफलप्रकरभूषितभूमिभाग ।
बद्धक्रम क्रमगतं हरिणाधिपोऽपि,
नाक्रामति क्रमयुगाचलसंश्रितं ते ॥३९॥

कल्पात कालपवनोद्धतवह्निकल्पम्,
दावानलज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिंगम् ।
विश्वं जिघित्सुमिव समुखमापततम्,
त्वन्नामकीर्त्तनजल शमयत्यशेषम् ॥४०॥

रक्तेक्षण समदकोकिलकंठनीलं,
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतंतम् ।
आक्रामति क्रमयुगेण निरस्तशंक
त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुंस ॥४१॥

अपने मुख से अगर प्रशंसा करता है अपनी पागल।
तो तू नीच गोत्र बाधेगा अगले भव होगा पागल ॥

बल्गत्तुरंगगजगर्जितभीमनाद
माजौ बलं बलवतामपि भूपतीना।
उद्यद्दिवाकरमयूखशिखापविद्धं,
त्वत्कीर्त्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ॥४२॥
कुंताग्रभिन्नगजशोणितवारिवाह
वेगावतारतरणातुरयोधभीमे।
युद्धे जयं विजितदुर्जयजेयपक्षस्,
त्वत्पादपंकजवना श्रयिणो लभंते ॥४३॥
अंभोनिधौक्षुभितभीषणनक्रचक्र
पाठीनपीठभयदोल्वणवाडवाग्नौ।
रंगत्तरंगशिखरस्थितयानपात्र
स्त्रासं विहाय भवत स्मरणाद् व्रजंति ॥४४॥
उद्भूत भीषणजलोदरभारमुग्नाः
शोच्यां दशामुपगताश्च्युतजीविताशा :।
त्वत्पादपंकजरजोमृतदिग्धदेहा,
मर्त्या भवंति मकर ध्वजतुल्यरूपा. ॥४५॥
आपादकंठमुरुश्रृंखलवेष्टितांगा,
गाढं वृहन्निगडकोटिनिघृष्टजंघाः।
त्वन्नाममंत्रमनिशं मनुजाः स्मरंतः,
सद्यः स्वयं विगतबंधभ्याभवंति ॥४६॥
मत्तद्विपेद्रमृगराज दवानलाहि
संग्रामवारिधिमहोदरबंधनोत्थम्।
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव,
यस्तावकंस्तवमिमं मतिमानधीते ॥४७॥
स्तोत्र स्रजं तव जिनेंद्र गुणैर्निबद्धां,
भक्त्या मया विविधवर्णविचित्रपुष्पाम्।
धत्ते जनो य इह कंठगतामजस्रं,
तं मानतुंगमवशा समुपैति लक्ष्मीः॥४८॥

भक्तामर स्तोत्र भाषा

कविवर राजमल पवैया

भक्त अमर मुकुटों की मणियाँ,
ज्योतित हैं जिन युगल चरण से।
अघतम नाशक परमशरण भव,
जलरत बदू सम्यक मन से॥१॥
जिन श्रुत अर्थ बोध से जिनकी,
बुद्धि प्रवीण हुई जगमनहर।
उन प्रभु प्रथम जिनेन्द्र आदि की,
संस्तुति करता उर निश्चय धर॥२॥
जल में लख प्रतिबिम्ब चन्द्र का,
जैसे बालक लेना चाहे।
बुद्धिहीन मेरा मन भी सुरपूजित,
प्रभु थुति करना चाहे॥३॥
इन्द्रादिक भी नही कर सके,
धवल चन्द्र सम तुम गुण वर्णन।
झझावात मयी समुद्र को कौन,
पार कर सकता भगवन॥४॥
भक्तिवशात अशक्त स्वय मै,
आतुर हूँ स्तुति करने को।
जैसे मृगी सिह से जूझे निज,
शिशु की रक्षा करने को॥५॥
अल्प ज्ञान ही हास्य पात्र होता,
प्रभु शक्ति उमड आती है।
ज्यो मधु ऋतु मे आम्र चारु लख,
कोकिल विवश गीत गाती है॥६॥

घोर तिमिर रजनी का जैसे,
सूर्य किरण ही क्षय करती है।
उस प्रकार संस्तुति प्रभु तेरी,
जन्म मरण के दुख हरती है।।७।।
यही मान मै क्षीण बुद्धि संस्तवन,
करू जनमन प्रिय होवे।
कमल पत्र पर जल की बूंदे,
जैसे मुक्ता काति संजोवे ।।८।।
स्तुति क्या प्रभु नाम मात्र से,
कट जाते हैं पातक सारे।
सूर्य किरण पा पद्‌म सरोवर,
खिल जाते हैं तत्क्षण सारे ।।९।।
नही नाथ आश्चर्य भक्त जन,
तुम जैसे ही यदि बन जावें।
उस धनपति से लाभ अरे क्या,
निज समान जो बना न पावें ।।१०।।
निर्निमेष दर्शन से साधक को,
संतुष्टि नहीं होती है।
क्या क्षीरोदधि जल पीकर खारे,
जल की इच्छा होती है ।।११।।
त्रिभुवन भूषण जितने थे,
परमाणु शान्त उनसे तुम निर्मित।
अतुलनीय तुम सदृश धरा पर ,
कोई भी छवि कहीं न दृष्टित ।।१२।।
सुर नर उरग नेत्रहारी प्रभु,
अनुपमेय है रूप तुम्हारा।
चन्द्र कलक मलिन है दिन में,
पांडुरंग निस्तेज विचारा ।।१३।।

जब तक मूल भूल है भीतर तब तक ज्ञान नहीं होगा।
भेदज्ञान तू पा न सकेगा सच्चा ध्यान नहीं होगा।।

पूर्ण चन्द की ज्योति सदृशगुण,
तीन लोक को लाघ रहे हैं।
जगदीश्वर तुव आश्रय में,
स्वाधीन विचर निर्बाध रहे हैं ।।१४।।
देवांगना तुम्हारे मन को लेश,
विकारित ना कर पाई।
क्या आश्चर्य सुमेरु शिखर को,
प्रलय पवन भी डिगा न पाई ।।१५।।
ऐसे अद्वितीय दीपक हो,
जिसमे तेल धूम्र ना बाती।
अखिल विश्व को करे प्रकाशित,
तूफानो में भी दिनराती ।।१६।।
अस्तहीन सातिशय सूर्य हो,
जहा राहु का गमन नहीं है।
तीनो लोक उजागर करते,
लेश मेघ आवरण नहीं है।।१७।।
क्षय करता मोहान्धकार,
नित्योदित है मुख चन्द्र प्रभामय।
राहु मेघ असमर्थ आच्छादित,
करने मे दिव्य विभामय ।।१८।।
तुम मुख चन्द्र देख तम विनशे,
सूर्य चन्द्र से अब न प्रयोजन।
खेतों में पक चुकी धान्य तो,
नही चाहिये नम्र नीर घन ।।१९।।
ज्ञान शौर्य जो प्रभो,
आप में नही दूसरे देवो में है।
रत्नों की जो ज्योति दीप्तिमय,
नहीं कांच के टुकडों में है ।।२०।।

सम्यक् दर्शन के बिन जो भी जप तप व्रत धारण करते।
वे अपने स्वरूप की महिमा अपने ही हाथो हरते ॥

अन्य देवताओं का दर्शन,
शुभ है तुम्हें देख लेने पर।
मिली तृप्ति फिर जन्मान्तर ,
में कोई लुभा न पाता पलभर ॥२१॥
शत जननी शत पुत्र जन्मतीं,
कोई तुमसा सुत न जन सकी।
सर्व दिशा नक्षत्र जन्मती,
पूर्व दिशा ही सूर्य जन सकी ॥२२॥
हे तेजोमय पुरुष तुम्हें पा,
मृत्युन्जयी साधु हो जाते।
तुम्हें छोडकर नाथ मुक्ति का,
मार्ग लोक में कहीं न पाते ॥२३॥
अव्यय अक्षय आद्य ब्रह्म विभु,
ज्ञानस्वरूप अनंत गुणाकर।
एक अनेक अनंत केतु,
योगेश अमल कहते हैं मुनिवर ॥२४॥
पुरुषोत्तम नारायण शंकर,
मोक्ष विधाता बुद्धि तुम्हीं हो।
भुवनत्रय को परम स्वस्तिकर,
सुरनर गणधर पूज्य तुम्हीं हो ॥२५॥
तीन लोक के संकटहर्ता,
भव समुद्र जल शोषण हारे।
तुम्हें नमन है तुम्हें नमन है,
परमेश्वर गुण भूषण वारे ॥२६॥
हे मुनीश सम्पूर्ण गुणों ने,
शरण आपकी आन गही है।
रंच न विस्मय इसमे स्वामी,
दोष स्वप्न में भी न कही है ॥२७॥

जिसने न किया न निज से परिचय वह क्या समकित पाएगा।
जिसने किया न निज का निश्चय वह क्या शिवपुर जाएगा।।

तरु अशोक के तले विराजित,
निर्मल रूप सुशोभित होता।
ज्यों बादल के निकट सूर्य,
द्युतिमत तिमिर हर द्योतित होता।।२८।।

मणि विचित्र चित्रित सिंहासन,
पर शोभित तुम स्वर्ण देह है।
उदयालचल के शीर्ष तुंग पर,
ज्यों प्रभु शोभित रवि अमेह।। २९।।

स्वर्ण मेरु पर शुभ चन्द्र की,
ज्योति किरण का झरता झरना।
स्वर्ण देह पर कुन्द पुष्प सा,
चामर ढुरते उज्ज्वल वरना।।३०।।

मुक्ता झालर मयी छत्रत्रय,
सौम्यचन्द्र सम शोभित सिरपर।
भानु ज्योति अवरुद्ध कर रहे,
तीन जगत के तुम परमेश्वर।।३१।।

नभ मे दुन्दुभि गूंज रही,
दिशि दिशि मे जय घोष तुम्हारा।
सत्य धर्मपति जय से गूजा,
तीन लोक मे सुयश तुम्हारा।।३२।।

मद पवन गधोदक सुरतरू,
पुष्प वृष्टि नभ से होती है।
पा मंगलमय नाथ आपकी,
पावन वचन पक्ति होती है।।३३।।

भामडल की द्युति के सम्मुख,
रवि असख्य की प्रभा तिरस्कृत।
सौम्य चन्द्र समरात्रि जीतती,
त्रिभुवन के पदार्थ सब लज्जित।।३४।।

मोक्षमार्ग जानता नहीं जो उसका जप तप सयम व्यर्थ।
मात्र स्वर्ग सुख देता कुछ दिन फिर करता है महा अनर्थ ॥

स्वर्ग मोक्ष का मार्ग बताती,
विषद अर्थ भाषा मय वाणी।
धर्म कथन त्रिभुवनहित करती,
दिव्य ध्वनि समझे हर प्राणी ॥३५॥
जिनवर चरण जहां पडते,
सुर स्वर्ण कमल रचना करते हैं।
हेम कान्ति सम दोनो पद नख,
किरण मयी शोभा धरते है ॥३६॥
धर्म देशना विधि विभूतिमय,
औरो मे न कही प्रभु होती।
तम हर ज्योति प्रभा मय,
अन्यग्रहो मे नही रोशनी होती ॥३७॥
भ्रमरो से पीडित क्रोधित गज,
देख निरंकुश ऊपर आता।
तुम पद युगल आश्रय लेने,
वालो को भय नही सताता ॥३८॥
शीश गयंद विदीर्ण नखौं से,
गज मुक्त बिखराये भू पर।
ऐसा क्रुद्ध सिंह भी करता,
नहीं आक्रमण प्रभु भक्तों पर ॥३९॥
प्रबल पवन से उत्तेजित,
दावाग्नि जलाने जग को आये।
तुम सकीर्त्तन रूपी जल से,
पल में पूर्ण शान्त हो जाये ॥४०॥
कोकिल कंठ समान नाग,
क्रोधित डसने को हो आतुर।
नाम नागदमनी तुम लेकर,
भक्त लांघ जाता है सत्वर ॥४१॥

मिथ्या दर्शन का तूफान ज्ञानियो पर भी आता है।
जो ज्ञानी विचरित हो जाता अज्ञानी हो जाता है ।।

रण में शत्रु भूप के सैनिक,
शस्त्र अश्व गज प्रबल दुष्ट हों।
नाम आपका लेते क्षय हों,
ज्यों सूरज से तिमिर नष्ट हो ।।४२।।
कुन्त अग्रक्षत गज शोणित सरि,
में हो योद्धा शत्रु भयंकर।
दुर्णय रण मे जय होती है,
तुम पद पंकज आश्रय लेकर ।।४३।।
मच्छ मगर घडियाल क्रुद्ध या,
बडवानल के धधके सागर।
डगमग टकराता जलपोत ध्यान,
करते ही आता तट पर ।।४४।।
रोग जलोदर भुग्नकाय अति,
जीवन की आशा न शेष है।
चरण कमल रज के लगते ही,
कामदेव सम हुआ वेश है।।४५।।
लौह श्रृंखला से जो वेष्टित,
बेडी से जंघाएं छिलतीं।
प्रभु का नाम मंत्र जपते ही,
होता बन्धन मुक्त तुरन्त ही ।।४६।।
हाथी सिंह जलोदर बन्धन,
युद्ध समुद्र आग नाग सब।
प्रभु स्तोत्र पाठ कर्त्ता ही होता,
कभी नहीं भय दुख अब ।।४७।।
जिन भक्ति सहित जो उर मे,
धरता गुणमय स्तुति माला।
मानतुग निज लक्ष्मी पाकर,
होता त्रिभुवन भूप निराला ।।४८।।

卐

अविरति कितना जोर लगाए समकित नहीं छीन सकती।
समकितधारी प्राणी के समकित को नहीं बीन सकती ॥

भक्तामर स्तोत्र भाषा

कविवर प कमलकुमार शास्त्री

भक्त अमरनत मुकुट सुमणियों, की सुप्रभा का जो भासक।
पापरूप अतिसघन तिमिर का, ज्ञान-दिवाकर-सा-नासक ॥
भवजल पतित जनों को जिसने, दिया आदि में अवलम्बन।
उनके चरण-कमल को करते, सम्यक् बारम्बार नमन ॥१॥

सकल वाड्मय तत्वबोध से, उदभव पटुतर धीधारी।
उसी इन्द्र की स्तुति से है, वन्दित जग जन मन-हारी ॥
अति आश्चर्य कि स्तुति करता, उसी प्रथम जिनस्वामी की।
जगनामी-सुखधामी तद्भव, शिवगामी अभिरामी की ॥२॥

स्तुति को तैयार हुआ हूँ, मैं निर्बुद्धि छोड के लाज।
विज्ञजनों से अर्चित हे प्रभु, मन्द बुद्धि की रखना लाज।
जल मे पडे चन्द्र-मण्डल को, बालक बिना कौन मतिमान।
सहसा उसे पकडने वाली प्रबलेच्छा करता गतिमान ॥३॥

हे जिन! चन्द्रकांत से बढकर, तव गुण विपुल अमल अतिश्वेत।
कह न सकें नर हे गुण-सार, सुर-गुरु के सम बुद्धि समेत ॥
मक्र-नक्र-चक्रादि-जन्तु युत, प्रलयपवन से बढा अपार।
कौन भुजाओ से समुद्र के, हो सकता है परले पार ॥४॥

वह मै हूँ कुछ शक्ति न रखकर, भक्ति प्रेरणा से लाचार।
करता हूँ स्तुति प्रभु तेरी, जिसे न पौर्वापूर्व विचार ॥
निजशिशु की रक्षार्थ आत्मबल बिना विचारे क्या न मृगी।
जाती है मृगपति के आगे, प्रेम-रंग में हुई रंगी ॥५॥

अल्पश्रुत हूँ श्रुतवानो से हास्य कराने का ही धाम।
करती है वाचाल मुझे प्रभु, भक्ति आपकी आठों याम ॥
करती मधुर गान पिकमधु मे, जनजन मनहर अति अभिराम।
उसमें हेतु सरस फल फूलों से युत हरे-भरे तरु-आम ॥६॥

जिनवर की स्तुति करने से, चिरसंचित भविजन के पाप ।
पल भर मे भग जाते निश्चित, इधर -उधर अपने ही आप ॥
सकललोक मे व्याप्त रात्रि मे, भ्रमर सरीका काला ध्वांत ।
प्रातः रवि की उग्रकिरण लख, हो जाता क्षण में प्राणात ॥७॥

मैं मतिहीन दीन प्रभु तेरी, शुरू करूं स्तुति अघहान ।
प्रभु-प्रभाव ही चित्त हरेगा, सन्तों का निश्चय से मान ॥
जैसे कमल-पत्र पर जलकण, मोती जैसे आभावन ।
दिपते है फिर छिपते है असली मोती में है भगवान ॥८॥

दूर रहे स्त्रोत आपका जो कि सर्वथा है निर्दोष ।
पुण्य-कथा ही किन्तु आपकी, हर लेती, कल्मष कोष ॥
प्रभा प्रफुल्लित करती रहती, सर के कमलो को भरपूर ।
फेका करता सूर्य किरणो को, आप रहा करता है दूर ॥९॥

त्रिभुवन तिलक जगत्पति हे प्रभु ! सद्‌गुरुओ के हे गुरुव्र्य्य ।
सद्‌भक्तो के निजसम करते, इसमे नही अधिक आश्चर्य ॥
स्वाश्रितजन को निजसम करते, धनी लोग धन धरती से ।
नही करे तो उन्हे लाभ क्या, उन धनिकों की करनी से ॥१०॥

हे अनिमेष विलोकनीय प्रभु, तुम्हें देखकर परम पवित्र ।
तोषित होते कभी नहीं हैं, नयन मानवो के अन्यत्र ॥
चन्द्र-किरणसम उज्ज्वल निर्मल, क्षीरोदधि का करजलपान ।
कालोदधि का खारा पानी, पीना चाहे कौन पुमान ॥११॥

जिन जितने जैसे अणुओं से, निर्मापित प्रभु आपकी देह ।
थे उतने वैसे अणु जग मे, शान्त राग-मय निस्सन्देह ॥
हे त्रिभुवन के शिरोभाग के, अद्वितीय आभूषण-रूप ।
इसीलिये तो आप सरीखा नही दूसरों का है रूप ॥१२॥

दिव्य ध्वनि सुनकर भी दिव्य ध्वनि की बात यदि मानी।
तो फिर चारो गति मे ही भटकेगा बनकर अज्ञानी ॥

कहां आपका मुख अति सुन्दर, सुर -नर-उरग नेत्र-हारी।
जिसने जीत लिये सब जग के, जितने थे उपमा धारी ॥
कहा कलकी बंक चन्द्रमा, के समान कीट-सा दीन।
जो पलाश-सा फीका पडता, दिन में होकर के छवि हीन ॥१३॥

तव गुण पूर्ण शशाक कान्तिमय, कलाकलापों से बढके।
तीन लोक में व्याप रहे है, जो कि स्वच्छता में चढके ॥
विचरे चाहे जहा कि उनको, जगन्नाथ का एकाधार।
कौन माई का जाया रखता, उन्हे रोकने का अधिकार ॥१४॥

मद की छकी अमर ललनायें, प्रभु के मन में तनिक विकार।
कर न सकी आश्चर्य कौन सा, रह जाती हैं मन में मार ॥
गिरि-गिर जाते प्रलय पवन से, तो फिर क्या वह मेरु-शिख।
हिल सकता है रचमात्र भी, पाकर झझावत प्रखर ॥१५॥

धूम न बत्ती तेल बिना ही, प्रकट दिखाते तीनो लोक।
गिरि के शिखर उडाने वाली बुझा न सकती मारुत झोक ॥
तिस पर सदा प्रकाशित रहते-गिनते नही कभी दिन-रात।
ऐसे अनुपम आप दीप है, स्व-पर-प्रकाशक जग-विख्यात ॥१६॥

अस्त न होता कभी न जिसको, ग्रस पाता है राहु प्रबल।
एक साथ बतलाने वाला, तीन लोक का ज्ञान विमल ॥
रुकता कभी प्रभाव न जिसका, बादल की आकर के ओट।
ऐसी गौरव-गरिमा वाले, आप अपूर्व दिवाकर कोट ॥१७॥

मोह महातम दलने वाला, सदा उदित रहने वाला।
राहु न बादल से दबता पर, सदा स्वच्छ रहने वाला।
विश्व-प्रकाशक मुखसरोज तव, अधिककातिमय शातिस्वरूप।
है अपूर्व जगका शशि-मंडल, जगतशिरोमणि शिवकाभूप ॥१८॥

नाथ आपका मुख जब करता, अधकार का सत्यनाश।
तव दिन में रवि और रात्रि में, चन्द्र -बिंब का विफल प्रयास ॥

धान्य-खेत जब धरती तल के, पके हुए हों अति अभिराम।
शोर मचाते जल को लदे, हुए घनौ से तब क्या काम ॥१९॥

जैसा शोभित होता प्रभु का, स्व-पर-प्रकाशक उत्तम ज्ञान।
हरिहरादि देवों में वैसा, कभी नहीं हो सकता भान ॥
अति ज्योतिर्मय महारतन का, जो महत्व देखा जाता।
क्या वह किरणाकुलित कांच में, अरे कभी लेखा जाता ॥२०॥

हरिहरादि देवों का ही मै, मानूं उत्तम अवलोकन।
क्योकि उन्हें देखने भर से, तुझसे तोषित होता मन॥
है परन्तु क्या तुम्हें देखने, से हे स्वामिन मुझको लाभ।
जन्म-जन्म मे लुभा न पाते, कोई यह मेरा अमिताभ ॥२१॥

सौ सौ नारी सौ सौ सुतको, जनती रहती सौ सौ ठौर।
तुम से सुत को जनने वाली जननी महती क्या है और ॥
तारागण को सर्व दिशाये धरे नही कोई खाली।
पूर्व दिशा ही पूर्ण प्रतापी, दिनपति को जनने वाली ॥२२॥

तुमको परमपुरुष मुनि माने, विमलवर्ण रवि तमहारी।
तुम्हे प्राप्त कर मृत्युञ्जय के, बन जाते जन अधिकारी ॥
तुम्हे छोडकर अन्य न कोई, शिवपुर पथ बतलाता है।
किन्तु विपर्यय मार्ग बताकर, भव-भव मे भटकाता है॥२३॥

तुम्हें आद्य अक्षय अनन्त प्रभु एकानेक तथा योगीश।
ब्रह्मा ईश्वर या जगदीश्वर विदितयोग मुनिनाथ मुनीश ॥
विमल ज्ञानमय या मकरध्वज, जगन्नाथ जगपति जगदीश।
इत्यादिक नामो कर माने, सन्त निरन्तर-विभो निधीश ॥२४॥

ज्ञान पूज्य है, अमर आपका, इसीलिये कहलाते बुद्ध।
भुवनत्रय के सुख-सम्वर्धक, अत तुम्हीं शकर हो शुद्ध।
मोक्ष मार्ग के आद्य प्रवर्तक, अत· विधाता कहे गणेश।
तुम सम अवनी पर पुरुषोत्तम, और कौन होगा अखिलेश ॥२५॥

दृष्टि निमित्ताधीन अगर है तो कल्याण नहीं होगा।
उपादान पर दृष्टि न हो तो फिर निर्वाण नहीं होगा ।।

तीन लोक के दुख-हरण, करने वाले हे तुम्हें नमन ।
भूमण्डल के निर्मल भूषण, आदि जिनेश्वर तुम्हे नमन ।।
हे त्रिभुवन के अखिलेश्वर है, तुमको बारम्बार नमन ।
भव सागर के शोषक, पोषक भव्यजनों के तुम्हें नमन ।।२६।।

गुण समूह एकत्रित होकर, तुझमें यदि पा चुके प्रवेश ।
क्या आश्चर्य न मिल पाये हों, अन्य आश्रय उन्हें जिनेश ।।
देव कहे जानेवालों से आश्रित होकर गर्वित दोष ।
तेरी ओर न झाक सके वे, स्वप्न मात्र में हे गुणकोष ।।२७।।

उन्नत तरु अशोक के आश्रित, निर्मल किरणोन्नतवाला ।
रूप आपका दिखता सुन्दर, तमहर मनहर छविवाला ।।
वितरक किरण निकरतमहारक, दिनकर घनके अधिक समीप।
नीलाचल पर्वत पर होकर, नीराजन करता ले दीप ।।२८।।

मणिमुक्ता किरणो से चित्रित, अद्‌भुत शोभित सिंहासन ।
कांतिमान कंचन सा दिखता, जिस पर तव कमनीय वदन ।।
उदयाचल के तुङ्ग शिखर से, मानों सहस्र-रश्मिवाला ।
किरण-जाल फैलाकर निकला, हो करने को उजियाला ।।२९।।

ढुरते सुन्दर चंवर विमल अति, नवलकुन्द के पुष्प-समान ।
शोभा पाती देह आपकी रोप्य-धवल-सी आभावान ।।
कनकाचल से तुङ्ग शृङ्ग से, झर झर झरता है निर्झर ।
चन्द्रप्रभा-सम उछल रही हो, मानो उसके ही तट पर ।।३०।।

चन्द्रप्रभा-सम वल्लरियो से, मणि-मुक्तामय अतिकमनीय ।
दीप्तिमान शोभित होते हैं, सिर पर छत्र त्रय भवदीय ।।
ऊपर रहकर सूर्य रश्मि का, रोक रहे है प्रखर प्रताप ।
मानो वे घोषित करते हैं, त्रिभुवन के परमेश्वर आप ।।३१।।

ऊंचे स्वर से करने वाली, सर्व दिशाओं में गुञ्जन ।
करने वाली तीन लोक के, जन-जन का शुभ सम्मेलन ।।

पीट रही है डका, हो सत्, धर्म-राज की नित जय-जय ।
इस प्रकार बज रही गगन मे, भेरी तव यश की अक्षय ।।३२।।

कल्पवृक्ष के कुसुम मनोहर, पारिजात एवं सुन्दर ।
गन्धोदक की मन्द वृष्टि, करते हैं प्रमुदित देव उदार ।।
तथा साथ ही नभ से बहती, धीमी धीमी मन्द पवन ।
पंक्ति बांधकर बिखर रहे हो, मानो तेरे दिव्य-वचन ।।३३।।

तीनलोक की सुन्दरता यदि, मूर्तिमान बनकर आवे ।
तव-भामण्डल की छवि लखकर, तव सम्मुख शरमा जावे ।।
कोटि सूर्य के ही प्रतापसम, किन्तु नही कुछ भी आताप ।
जिसके द्वारा चन्द्र सुशीतल, होता निष्प्रभ अपने आप ।।३४।।

मोक्ष-स्वर्ग के मार्ग-प्रदर्शक, प्रभुवर तेरे दिव्य वचन ।
करा रहे है 'सत्यधर्म' के, अमर-तत्व का दिग्दर्शन ।।
सुनकर जग के जीव वस्तुत., कर लेते अपना उद्धार ।
इस प्रकार परिवर्तित होते, निज निज भाषा के अनुसार ।।३५।।

जगमगात नख जिसमे शोभे जैसे नभ में चन्द्रकिरण ।
विकसित नूतन सरसीरुहसम, हे प्रभु तेरे विमल चरण ।।
रखते जहा वहा रचते है स्वर्ण कमल सुर दिव्य ललाम ।
अभिनन्दन के योग्य चरणतव, भक्ति रहे उनमे अभिराम ।।३६।।

धर्म-देशना के विधान मे, था जिनवर का जो ऐश्वर्य ।
वैसा क्या कुछ अन्य कुदेवों, मे भी दिखता है सौन्दर्य ।
जो छवि घोर-तिमिर के नाशक, रवि मे है देखी जाती ।।
वैसी ही क्या अतुल कान्ति, नक्षत्रो मे देखी जाती ।।३७।।

लोल कपोलो से झरती है, जहा निरन्तर मद की धार ।
होकर अति मदमत्त कि जिस पर, करते हैं भौरे गुंजार ।।
क्रोधासक्त हुआ यो हाथी, उद्धत ऐरावत सा काल ।
देख भक्त छुटकारा पाते, पाकर तव आश्रय तत्काल ।।३८।।

जब पर्याय सिंह की पायी उपादान जाग्रत पाया ।
ऋद्धिधारी मुनियो का पाकर निमित्त दृढ़ समकित पाया ॥

क्षत-विक्षत कर दिये गजों के, जिसने उन्नत गण्डस्थल ।
कान्तिमान गज-मुक्ताओं से, पाट दिया हो अवनी-तल ॥
जिन भक्तों को तेरे चरणों, के गिरि की हो उन्नत ओट ।
ऐसा सिंह छलांगे भरकर, क्या उस पर कर सकता चोट ॥३९॥

प्रलय काल की पवन उडाकर, जिसे बढा देती सब ओर ।
फिके फुलिगे ऊपर तिरछे, अङ्गारों का भी हो जोर ॥
भुवनत्रय को निगला चाहे, आती हुई अग्नि भभकार ।
प्रभु के नाम मन्त्र जल से वह, बुझ जाती है उस ही बार ॥४०॥

कंठ कोकिला-सा अति काला, क्रोधित हो फण किया विशाल ।
लाल लाल लोचन करके यदि, झपटे नाग महा विकराल ॥
नाम रूप तब अहि दमिनी का, लिया जिन्होंने ही आश्रय ।
पग रखकर नि शड्क नाग पर, गमन करें वे नित निर्भय ॥४१॥

जहां अश्व की और गजों की, चीत्कार सुन पडती घोर ।
शूरवीर नृप की सेनाए, रव करती हो चारो घोर ॥
वहा अकेला शक्तिहीन नर, जप कर सुन्दर तेरा नाम ।
सूर्य-तिमिर सम शूर-शैन्यका कर देता है काम तमाम ॥४२॥

रण में भालों से बेधित गज, तन से बहता रक्त अपार ।
वीर लडाकू जहँ आतुर हैं, रुधिर नदी करने को पार ॥
भक्त तुम्हारा हो निराशतब, लख अरिसेना दुर्जय रूप ।
तव पादारविन्द पा आश्रय, जय माता उपहार-स्वरूप ॥४३॥

वह समुद्र कि जिसमें होवें, मच्छ मगर एवं घडियाल ।
तूफा लेकर उठती होवे, भयकारी लहरें उत्ताल ॥
भ्रमर-चक्र मे फंसा हुआ हो, बीचो बीच अगर जल-यान ।
छुटकारा पा जाते दुख से, करने वाले तेरा ध्यान ॥४४॥

असहनीय उत्पन्न हुआ हो, विकट जलोदर पीडा भार ।
जीने की आशा छोड़ी हो, देख दशा दयनीय अपार ॥

पार्श्वनाथ ने हाथी की पर्याय मध्य ज्ञान पाया।
मुनि निमित्त पा समकित पाया एक देशव्रत उर भाया।।

ऐसा व्याकुल मानव पाकर, तेरी पद-रज संजीवन।
स्वास्थ्यलाभ कर बनता उसका, कामदेव-सा सुन्दर तन।।४५।।
लोह-श्रृंखला में जकडी हो, नख से शिख तक देह समस्त।
घुटने-जंघे छिले बेडियों से अधीर जो है अतित्रस्त।।
भगवन ऐसे बन्दीजन भी, तेरे नाम मन्त्र की जाप।
जपकर गत-बन्धन हो जाते, क्षणभर मे अपने ही आप।।४६।।

वृषभेश्वर के गुणस्तवन का, करते निशदिन जो चिन्तन।
भयभी भयाकुलित हो उनसे, भग जाता है हे स्वामिन्।।
कुजर-समर-सिंह-शोक-रुज, अहि दावानल कारागार।
इनके अतिभीषण दु खो का भी, हो जाता क्षण मे सहार।।४७।।

हे प्रभु तेरे गुणोद्यान की, क्यारी से चुन दिव्य-ललाम।
गूथी विविध वर्ण सुमनो की, गुणमाला सुन्दर अभिराम।।
श्रद्धासहित भविकजन जो भी, कण्ठाभरण बनाते हैं।
'मानतुङ्ग' सम निश्चित सुन्दर, मोक्षलक्ष्मी को पातें।।४८।।

महावीराष्टक स्तोत्र

कविवर प भागचन्द्र

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचित:,
सम भांति ध्रौव्यव्ययजनिलसंतोलरहिता.।
जगत्साक्षी मार्गप्रकटपरो भानुरिवायो,
महावीर स्वामी नयनपथगामी भवतु मे (न)।।१।।

अताम्र यच्चक्षु: कमलयुगलं स्पदरहितं,
जनान्को पापायं प्रकटयति वाभ्यतरमपि।
स्फुट मूर्तिर्यस्य प्रशमितमयी वातिविमला,
महावीर स्वामी नयनपथगामी भवतु मे (न.)।।२।।

नाना जीव लब्धि श्री नाना नाना उनकी बुद्धि अनेक।
वाद विवाद न करो किसी से उर मे धारो स्वपर विवेक ॥

नमन्नाकेंद्राली मुकुटमणिभाजालजटिलं,
लसत्पादाभोजद्वयमिह यदीयं तनुभृताम् ।
भवज्ज्वालाशांत्यै प्रभवति जलं वा स्मृतमपि,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥३॥

यदर्चाभावेन प्रमुदितमना दर्दुर इह,
क्षणादासीत्स्वर्गी गुणगणसमृद्ध· सुखनिधि· ।
लभंते सद्भक्ता· शिवसुखसमाजं किमुतदा,
महावीर स्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥४॥

कनत्स्वर्णाभासोऽप्यपगत तनुर्ज्ञान निवहो,
विचित्रात्माप्येको नृपति वर सिद्धार्थ तनय· ।
अजन्मापि श्रीमान् विगत भव रागोद्भुतगतिर् ,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (न) ॥५॥

यदीया वाग्गंगा विविध नय कल्लोल विमला,
बृहज्ज्ञानाभोभिर्जगति जनतां या स्नपयति ।
इदानीमप्येषा बुध जन मरालै परिचिता,
महावीरस्वामी नयन पथ गामी भवतु मे (नः) ॥६॥

अनिर्वारोद्रेकस्त्रिभुवनजयी काम सुभटः,
कुमारावस्थायामपि निजबलाद्येन विजित·।
स्फुरन्नित्यानदप्रशम पद राज्याय स जिन ,
महावीर स्वामी नयनपथगामी भवतु मे (न) ॥७॥

महामोहातकप्रशमनपराकस्मिक भिषग,
निरापेक्षो बंधुर्विदित महिमा मंगलकर ।
शरण्य· साधूनां भव भयभृतामुत्तम गुणो,
महावीर स्वामी नयनपथगामी भवतु मे (न) ॥८॥

महावीराष्टकं स्तोत्र भक्त्या भागेदु ना कृत ।
य· पठेच्छ्टणुयाच्चापि स याति परमां गतिम् ॥९॥

निश्चय मुनि व्रत धार करके मुक्तिमार्ग पर चले चलो।
यथाख्यात की महाशक्ति से कर्म घातिया ढले चलो ।।

स्तुति

सकल ज्ञेय ज्ञायक

कविवर प. दौलत रामजी

दोहा

सकल ज्ञेयज्ञायक तदपि, निजानद रसलीन ।
सो जिनेद्र जयवत नित, अरि रज रहस विहीन ।।१।।

जय वीतराग विज्ञानपूर, जय मोहतिमिरको हरन सूर ।
जय ज्ञानअनतानत धार, दृगसुख वीरज मडित अपार ।।२।।

जय परमशात मुद्रा समेत, भविजन को निज अनुभूति हेत ।
भवि भागन वच जोगेवशाय, तुम ध्वनि ह्वै सुनि विभ्रम नशाय।।३।।

तुम गुण चिन्तत निजपरविवेक, प्रगटै विघटै आपद अनेक ।
तुम जगभूषण दूषणवियुक्त, सब महिमायुक्त विकल्पमुक्त ।।४।।

अविरुद्ध शुद्ध चेतनस्वरूप, परमात्म परम पावन अनूप ।
शुभअशुभ विभावअभाव कीन, स्वाभाविक परिणति मय अधीन ।।५।।

अष्टादश दोषविमुक्त धीर, स्वचतुष्टमय राजत गभीर ।
मुनिगणधरादि सेवत महत, नव केवल लब्धि रमा धरत ।।६।।

तुम शासन सेय अमेय जीव, शिव गये जाहि जैहे सदीव ।
भवसागर मे दुख छार वारि, तारनको अवरन आप टारि ।।७।।

यह लखि निज दुख गदहरणकाज, तुमही निमित्तकारणइलाज ।
जाने तातै मै शरण आय, उचरो निज दुख जो चिर लहाय ।।८।।

मै भ्रम्यो अपनपो विसरि आप, अपनाये विधि फल पुण्यपाप ।
निजको पर को करता पिछान, पर मे अनिष्टता इष्ट ठान ।।९।।

आकुलित भयो अज्ञान धारि, ज्यो मृग मृगतृष्णा जानि वारि ।
तनपरणति मे आपो चितार , कबहूँ न अनुभवो स्वपदसार ।।१०।।

तुमको विन जाने जो कलेश, पाये सो तुम जानत जिनेश ।
पशु नारक नरसुर गतिमझार, भव धर धर मरयो अनतबार ।।११।।

अब काललब्धिबलतै दयाल, तुम दर्शन पाय भयो खुशहाल ।
मन शातभयो मिटि सकल द्वद, चाख्यो स्वातमरस दुखनिकद ।।१२।।

तातै अब ऐसी करहु नाथ, विछुरै न कभी तुव चरण साथ ।
तुम गुणगण को नहिं छेव देव, जग तारन को तुव विरद एव ।।१३।।

आतम के अहित विषय कषाय, इनमे मेरी परिणति न जाय ।
मै रहू आप मेआप लीन, सो करो होउँ ज्यो निजाधीन ।।१४।।

मेरे न चाह कछु और ईश, रत्नत्रयनिधि दीजै मुनीश ।
मुझ कारज के कारन सुआप, शिव करहु, हरहु मम मोहताप ।।१५।।

शशि शातिकरन तपहरन हेत, स्वयमेव तथा तुम कुशल देत ।
पीवत पियूष ज्यो रोग जाय, त्यो तुम अनुभवतै भव नसाय ।।१६।।

त्रिभुवनतिहुँकाल मँझार कोय, नहि तुम बिन निज सुखदाय होय।
मोउर यह निश्चय भयो आज, दुखजलधिउतारन तुम जिहाज ।।१७।।

दोहा

तुम गुणगणमणि गणपति, गणत न पावहि पार ।
'दौल' स्वल्पमति किम कहै, नमू त्रियोगसभार ।।१८।।

धर्म

निज आतमा को जानना पहिचानना ही धर्म है ।
निज आतमा की साधना आराधना ही धर्म है ।।
शुद्धातमा की साधना आराधना का मर्म है ।
निज आतमा की ओर बढती भावना ही धर्म है ।।
वैराग्य जननी भावना का एक ही आधार है ।
ध्रुवधाम की आराधना आराधना का सार है ।।

छहढाला

कविवर प दौलतराम जी

(मंगलाचरण)

(सोरठा)

तीन भुवन मे सार, वीतराग विज्ञानता ।
शिवस्वरूप शिवकार, नमौं त्रियोग सम्हारिकै ॥

पहली ढाल

ससार के दु:खों का वर्णन

(चौपाई)

जे त्रिभुवन मे जीव अनन्त, सुख चाहै दुख तै भयवन्त ।
तातै दुखहारी सुखकार, कहैं सीख गुरु करुणा धार ॥१॥
ताहि सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहौ अपनो कल्याण ।
मोह महामद पियो अनादि, भूलि आपको भरमत बादि ॥२॥
तास भ्रमण की है बहु कथा, पै कछू कहू कही मुनि जथा ।
काल अनत निगोद मझार, बीत्यो एकेद्री तन धार ॥३॥
एक श्वास में अठ-दस बारजन्म्यौ मर्यो भर्यो दुखभार ।
निकसिभूमि जल पावक भयो, पवन प्रतेक वनस्पतिथयो ॥४॥
दुर्लभ लहि ज्यौ चितामणि, त्यौ परजाय लही त्रसतणी ।
लट-पिपीलि-अलि आदि शरीर, धर-धर मर्यो सहीबहुपीर ॥५॥
कबहूँ पचेन्द्रिय पशु भयो, मन बिन निपट अज्ञानी थयो ।
सिहादिक सैनी ह्वै क्रूर, निबल पशू हति खाये भूर ॥६॥
कबहूँ आप भयो बलहीन, सबलनि करि खायो अति दीन ।
छेदन भेदन भूख पियास, भारवहन हिम-आतप त्रास ॥७॥
बध बन्धन आदिक दुख घने, कोटि जीभ ते जात न भने ।
अति सक्लेश भाव तै मर्यो, घोर शुभ्रसागर मे पर्यो ॥८॥
तहाँ भूमि परसत दुख इस्यो, बीच्छु सहस डसै नहि तिसो ।
तहां राध-श्रोणित वाहिनी, कृमि-कुल कलित देह दाहिनी ॥९॥

सेमर तरु जुत दल असिपत्र, असि ज्यों देह विदारैं तत्र।
मेरु समान लोह गलि जाय, ऐसी शीत उष्णता थाय ॥१०॥
तिल-तिल करहि देह के खंड, असुर भिडावे दुष्ट प्रचण्ड।
सिधु-नीर तैं प्यास न जाय, तो पण एक न बूद लहाय ॥११॥
तीन लोक को नाज जु खाय, मिटै न भूख कणा न लहाय।
ये दुख बहु सागर लौं सहै, करम-जोग तैं नरगति लहै ॥१२॥
जननी उदर वस्यो नव मास, अंग सकुचतैं पाई त्रास।
निकसत जे दुख पाये घोर, तिनको कहत न आवै ओर ॥१३॥
बालपने में ज्ञान न लह्यो, तरुण समय तरुणीरत रह्यो।
अर्द्धमृतक सम बूढापनो, कैसे रुप लखै आपनो ॥१४॥
कभी अकाम निर्जरा करै, भवनत्रिक मे सुरतन धरै।
विषयचाह-दावानल दह्यो, मरत विलाप करत दुख सह्यो ॥१५॥
जो विमानवासी हू थाय, सम्यग्दर्शन बिन दुख पाय।
तह तै चय थावर-तन धरै, यों परिवर्तन पूरे करैं ॥१६॥

दूसरी ढाल

सासारिक दुःखो के मूल कारण

(पद्धरि छन्द)

ऐसे मिथ्यादृग-ज्ञान-चरण वश, भ्रमत भरत दुख जन्म-मरण।
तातै इनको तजिये सुजान, सुन तिन सक्षेप कहूं बखान ॥
जीवादि प्रयोजनभूत तत्व, सरधैं तिन मांहि विपर्ययत्व।
चेतन को है उपयोग रूप, बिन मूरत चिन्मूरत अनूप ॥१॥
पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल, इन तै न्यारी है जीव चाल।
ताको न जान विपरीतमान, करि कर देह में निज पिछान ॥२॥
मै सुखी दुखी मै रंक राव मेरे धन गृह गोधन प्रभाव।
मेरे सुत तिय मै सबल दीन, बेरूप सुभग मूरख प्रवीन ॥३॥
तन उपजत अपनी उपजजान, तन नशत आपको नाशमान।
रागादि प्रगट ये दुःख दैन, तिनही को सेवत गिनत चैन ॥४॥

कारण परमात्मा तू ही है सदा कार्य परमात्मा तू।
सिद्धात्मा है ज्ञायक भी है एकमात्र शुद्धात्मा तू॥

शुभ-अशुभ बध के फल मझार रति अरतिकरै निजपद विसार।
आतमहित हेतु विराग ज्ञान ते लखै आपको कष्टदान ॥५॥
रोकी न चाह निजशक्ति खोय शिवरूप निराकुलता न जोय।
याही प्रतीतिजुत कछुक ज्ञान, सो दुखदायक अज्ञान जान ॥६॥
इन जुत विषयनि में जो प्रवृत्त ताको जानो मिथ्याचरित।
यों मिथ्यात्वादिक निसर्ग जेह, अब जे गृहीत सुनिये सुतेह ॥७॥
जो कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव, पोषै चिरदर्शनमोह एव।
अन्तर रागादिक धरै जेह बाहर धन अम्बर ते सनेह ॥८॥
धारै कुलिग लहि महत भाव ते कुगुरु जन्म-जल उपल नाव।
जे राग-द्वेष मल करिमलीन, वनितागदादिजुत चिन्हचीन ॥९॥
ते है कुदेव तिनको जु सेव, शठकरत न तिन भव-भ्रमणछेव।
रागादि भाव हिसा समेत, दर्वित त्रस थावर मरण खेत ॥१०॥
जे क्रिया तिन्हैं जानहु कुधर्म, तिन सरधै जीव लहै अशर्म।
याकू गृहीत मिथ्यात्व जान, अब सुन गृहीत जो है अजान ॥११॥
एकान्तवाद-दूषित समरत, विषयादिक पोषक अप्रशस्त।
कपिलादिरचितश्रुत को अभ्यास, सो है कुबोध बहु देनत्रास ॥१२॥
जो ख्याति लाभ पूजादि चाह, धरिकरतविविध विध देहदाह।
आतम अनात्म के ज्ञानहीन, जे-जे करनी तन करन छीन ॥१३॥
ते सब मिथ्याचारित्र त्याग, अब आतम के हितपथलाग।
जगजाल-भ्रमण को देहुत्याग, अब 'दौलत' निज आतम सुपाग॥१४॥

तीसरी ढाल

निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग तथा सम्यग्दर्शन का स्वरूप एवं महिमा

(नरेन्द्र छन्द। जोगीरास छन्द)

आतम को हित है सुख, सो सुख आकुलता बिन कहिये।
आकुलता शिव माहि न तातें, शिव-मग लाग्यौ चहिये ॥१॥
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरन, शिव-मग सो दुविध विचारो।
जो सत्यारथ-रूप सो निश्चय, कारण सो व्यवहारो ॥२॥

स्याद्वाद मे हो प्रवीण जो निश्चय सयम अपनाता।
परम पारिणामिक स्वभाव से सिद्ध स्वपद निज प्रगटता ॥

परद्रव्यनितैं भिन्न आप में, रूचि सम्यक्त्व भला है ।
आपरूप को जान पनो सो, सम्यक् ज्ञान कला है ॥३॥
आपरूप मे लीन रहे थिर, सम्यक चारित सोई ।
अब व्यवहार मोख मग सुनिये, हेतु नियत को होई ॥४॥
जीव अजीव तत्व अरु आस्रव, बन्ध रुसंवर जानो ।
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिनको, ज्यो का त्यो सरधानो ॥५॥
है सोईसमकित व्यवहारी, अब इन रूप बखानी ।
तिनको सुन सामान्य विशेष, दृढ प्रतीति उर आनो ॥६॥
बहिरातम, अन्तर-आतम परमातम जीव त्रिधा है ।
देह जीव को एक गिनै, बहिरातम तत्व मुधा है ॥७॥
उत्तम मध्यम जघन त्रिविध के, अतर आतम ज्ञानी ।
द्विविध सघ विन शुद्ध-उपयोगी, मुनि उत्तम निजध्यानी ॥८॥
मध्यम अन्तर आतम है जो देशव्रती अनगारी ।
जघन कहे अविरत समदृष्टि तीनो शिवमगचारी ॥९॥
सकल निकल परमातम द्वै विधि, तिन मे घाति निवारी ।
श्री अरहत सकल परमातम, लोकालोक निहारी ॥१०॥
ज्ञानशरीरी त्रिविध कर्म-मल, वर्जित सिद्ध महता ।
ते है निकल **अमल परमात**म, भोगे शर्म अनन्ता ॥११॥
बहिरातमता हेय जानि तजि, अतर-आतम हूजै ।
परमातम ध्याय निरन्तर जो नित आनद पूजै ॥१२॥
चेतनता बिन सो अजीव है पच भेद ताके है ।
पुद्गल पच वरन रसपन, गध दो, फरस वसु जाके है ॥१३॥
जिय पुद्गल को चलन सहाई, धर्मद्रव्य अनरुपी ।
तिष्ठत होय अधर्म सहाई, बिनमूरित अनिरूपी ॥१४॥
सकल द्रव्य् को वास जास मे, सो आकाश पिछानो ।
नियत वर्तना निशदिन सो, व्यवहारकाल परिमानो ॥१५॥
यो अजीव अब आस्रव सुनिये, मन वच-काय त्रियोगा ।
मिथ्या अविरति अरु कषाय, परमाद सहित उपयोगा ॥१६॥

आशा रूपी पिशाचिनी को वश मे कर के जो सविवेक।
निज चैतन्य स्वरूप प्रगट कर करता नाथ कर्म प्रत्येक ॥

ये ही आतम को दु ख कारन, तातैं इनको तजिये ।
जीव प्रदेश बन्धे विधि सों, सो बन्धन कबहुँ न सजिये ॥१७॥
शम-दम तै जो कर्म न आवैं, सोसवर आदरिये ।
तपबल तै विधि झरन निरजरा, ताहि सदा आचरिये ॥१८॥
सकल कर्म तैं रहित अवस्था, सो शिव थिर सुखकारी ।
इह विधि जो सरधा तत्वन की, सो समकित व्यवहारी ॥१९॥
देव जिनेन्द्र, गुरु परिग्रह बिन, धर्म दयाजुत सारो ।
येहु मान समकित को कारण, अष्ट - अगजुत धारो ॥२०॥
वसु मद टारि निवारि त्रिसठता, षट् अनातन त्यागो ।
शकादिक वसु दोष बिना, संवेगादिक चित्त पागो ॥२१॥
अष्ट अग अरु दोष पचीसों, तिन संक्षेप हु कहिये ।
बिन जानै तै दोष गुनन को, कैसे तजिये गहिये ॥२२॥
जिन-वच मे शका न धारि वृष, भवसुख-वाछा भानै।
मुनि तन मलिन न देख घिनावै, तत्व कुतत्व पिछानै ॥२३॥
जिन गुण अरु पर-औगुण ढाकैं, वा निज धर्म बढावे ।
कामादिक कर वृषतें चिगते, निजपर को सु दिढावैं ॥२४॥
धर्मी सौ गौ-बच्छ प्रीति सम, कर जिन धर्म दिपावै ।
इन गुन तैं विपरीत दोष वसु तिनको सतत खिपावे ॥२५॥
पिता भूप व मातुल नृप जो होय न तो मद ठानै ।
मद न रूप को मद न ज्ञान को, धन बल को मद भाने ॥२६॥
तप को मद न, मद जु प्रभुता को करै न, सो निज जानै ।
मद धारै तौं जहा दोष वसु, समकित को मल ठानै ॥२७॥
कुगुरु कुदेव कुवृष सेवक को, नहि प्रशंस उचरे हैं।
जिनमुनि जिनश्रुत बिन कुगुरादिक तिन्हैं न नमनकरे है ॥२८॥
दोष रहित गुणसहित सुधी जे, सम्यग्दर्श सजै हैं।
चरितमोहवश लेश न सजम तै सुरनाथ जजैं है ॥२९॥
गेही पै गृह मे न रचे ज्यो जल तै भिन्न कमल है ।
नगरनारि को प्यार यथा, कादे में हेम अमल है ॥३०॥

ज्ञायक तत्व लक्ष में लेकर करो आत्मा का श्रम ।
सम्यक् दर्शन मिल जाएगा मिल जाएगा सम्यक् ज्ञान ।।

प्रथम नरक बिन षट् भू ज्योतिष, वान भवन षंड नारी ।
थावर विकलत्रय पशु में नहीं, उपजत सम्यक् धारी ।।३१।।
तीनलोक तिहुँकाल मांहि, नहि दर्शन सो सुखकारी ।
सकल धरम को मूल यही, इस बिन करनी दुखकारी ।।३२।।
मोक्षमहल की परथम सीढी, या बिन ज्ञान चरित्रा ।
सम्यक्ता न लहै, सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा ।।३३।।
दौल समझ सुन चेत सयानें, काल वृथा मत खोवै ।
यह नरभव फिर मिलन कठिन, है जो सम्यक् नहिं होवै ।।३४।।

चौथी ढाल

सम्यग्दर्शन व एकदेशचारित्र का स्वरुप भेद एव महिमा

दोहा

सम्यक्श्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यग्ज्ञान ।
स्व-पर अर्थ बहु धर्मजुत, जो प्रगटावन भान ।।१।।

रोला

सम्यक् साथै ज्ञान होय, पै भिन्न अराधो ।
लक्षण श्रद्धा जानि दुहु मे भेद अबाधो ।।२।।
सम्यक् कारण जान, ज्ञान कारज है सोई ।
युगपत् होतैं हूँ , प्रकाश दीपक तै होई ।।३।।
तास भेद दो हैं, परोक्ष परतछ तिन माहीं ।
मति श्रुति दोय परोक्ष, अक्ष मन तै उपजाहीं ।।४।।
अवधिज्ञान मनपर्जय, दो हैं देश प्रतच्छा ।
द्रव्य क्षेत्र परिमान लिए जानै जिय स्वच्छा ।।५।।
सकल द्रव्य के गुन अनन्त, परजाय अनन्ता ।
जानै एकै काल प्रगट, केवलि भगवन्ता ।।६।।
ज्ञान समान न आन जगत में, सुख को कारण।
इह परमामृत जन्म-जरा-मृतु रोग निवारण ।।७।।

चिन्मय चेतन शुद्ध आत्मा जड़ पुद्गल तन से है भिन्न।
अपने निर्मल ज्ञान शरीरी तन से है यह सदा अभिन्न ।।

कोटि जन्म तप तपै, ज्ञान बिन कर्म झरैं जे ।
ज्ञानी के छिन माहि, त्रिगुप्ति तै सहज टरै ते ।।८।।
मुनिव्रत धार अनन्त बार, ग्रीवक उपजायो ।
पै निजआतम ज्ञान बिना, सुख लेश न पायो ।।९।।
तातै जिनवर कथित, तत्व अभ्यास करीजै ।
सशय विभ्रम मोह त्याग, आपौ लख लीजै ।।१०।।
यह मानुष पर्याय सुकुल, सुनिवौ जिनवानी ।
इह विधि गये न मिलै, सुमणिज्यौं उदधि समानी ।।११।।
धन समाज गज बाज, राज तो काज न आवै ।
ज्ञान आपको रूप भये फिर अचल रहावै ।।१२।।
तास ज्ञान को कारण, स्व-पर विवेक बखानो ।
कोटि उपाय बनाय, भव्य ताको उर आनो ।।१३।।
जे पूरब शिव गये, जाहिं अरु आगे जैहें ।
सो सब महिमा ज्ञानतनी, मुनिनाथ कहै है ।।१४।।
विषय चाह दव दाह, जगत जन अरनि दझावै ।
तासु उपाय न आन, ज्ञान घनधान बुझावै ।।१५।।
पुण्य-पाप फल मांहि, हरख विलखो मत भाई ।
यह पुद्गल परजाय, उपज विनसै थिर थाई ।।१६।।
लाख बातकी बात, यहै निश्चय उर लाओ ।
तोरि सकल जग दन्द-फन्द, निज आतम ध्याओ ।।१७।।
सम्यग्ज्ञानी होय बहुरि, दृढ चारित लीजै ।
एकदेश अरु सकलदेश, तसु भेद कहीजै ।।१८।।
त्रस हिंसा को त्याग, वृथा थावर न सहारै ।
पर वधकार कठोर निंद्य, नहि वयन उचारै ।।१९।।
जल मृतिका बिन और, नाहि कछू गहै अदत्ता ।
निज वनिता बिन सकल, नारि सौ रहै, विरत्ता ।।२०।।
अपनी शक्ति विचार, परिग्रह थोरो राखै ।
दश दिशि गमन प्रमान ठान, तसु सीम न नाखै ।।२१।।

ताहू में फिर ग्राम, गली गृह बाग बजारा ।
गमनागमन प्रमान, ठान अन सकल निवारा ॥२२॥
काहू की धनहानि, किसी जय हार न चिन्तै ।
देय न सो उपदेश, होय अघ बनिज कृषि तै ॥२३॥
कर प्रमाद जल भूमि, वृक्ष पावक न विराधै ।
असि धनु हल हिंसोपकरन, नहिं दे जस लाधै ॥२४॥
राग-द्वेष करतार कथा, कबहूं न सुनीजै ।
और हु अनरथदड हेतु अघ तिन्है न कीजै ॥२५॥
धर उर समता भाव, सदा सामायिक करिये ।
परब चतुष्टय माहि, पाप तज प्रोषध धरिये ॥२६॥
भोग और उपभोग, नियम करि ममत निवारै ।
मुनि को भोजन देय, फेर निज करहि अहारै ॥२७॥
बारह व्रत के अतीचार, पन पन न लगावै ।
मरण समै सन्यास धारि, तसु दोष नशावै ॥२८॥
यों श्रावक व्रत पाल स्वर्ग सोलम उपजावै ।
तहं तै चय नर जन्म पाय, मुनि है शिव जावै.॥२९॥

पाँचवी ढाल

बारह भावना

(चाल छन्द)

मुनि सकलव्रती बडभागी, भव भौगन तै बैरागी ।
वैराग्य उपावन माई, चिन्तै अनुप्रेक्षा भाई ॥१॥
इन चिन्तत समसुख जागै, जिमि ज्वलन पवन के लागै ।
जबही जियआतम जानै, तब ही जिय शिवसुख ठानै ॥२॥
जोवन गृह गो धन नारी, हय गय जन आज्ञाकारी ।
इन्द्रिय-भोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई ॥३॥
सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरि काल दले ते ।
मणि मंत्र तंत्र बहु होई, मरते न बचावे कोई ॥४॥

एक समय मे सर्व द्रव्य गुण पर्यायो को लेता जान।
घाति नाश होने पर होता ऐसा निर्मल केवल ज्ञान ।।

चहुँगति दुःख जीव भरे हैं, परिवर्तन पंच करे हैं।
सब विधि संसार असारा, तामें सुख नाहिं लगारा ।।५।।
शुभ-अशुभ करम फल जेते, भोगे जिय एक हि तेते।
सुत दारा होय न सीरी, सब स्वारथ के हैं भीरी ।।६।।
जल-पय ज्यों जियतन भेला, पै भिन्न-भिन्न नहिं भेला।
तो प्रगट जुदे धनधामा, क्यो ह्यौ इकमिलि सुतरामा ।।७।।
पल रुधिर राध मल थैली, कीकस वसादि तैं मैली।
नव द्वार बहै घिनकारी, अस देह करे किमि यारी ।।८।।
जो योगन की चपलाई, ताते है आस्रव भाई।
आश्रव दुखकार घनेरे, बुधिवंत तिन्हैं निरवेरे ।।९।।
जिन पुण्य-पाप नहिं कीना, आतम अनुभव चित दीना।
तिनही विधि आवत रोके, सवर लहिसुख अवलोके ।।१०।।
निजकालपाय विधि झरना, तासो निजकाज न सरना।
तप करि जो कर्म खिपावे, सोई शिवसुख दरसावे ।।११।।
किनहूँ न करौ न धरै को, षट्द्रव्यमयी न हरै को।
सो लोकमांहि बिनसमता, दु ख सहै जीव नित भ्रमता ।।१२।।
अन्तिम ग्रीवक लौं की हद, पायी अनन्त बिरिया पद।
पर सम्यक्ज्ञान न लाध्यो, दुर्लभ निज मे मुनि साध्यो ।।१३।।
जो भाव मोह तै न्यारे, दृग ज्ञान व्रतादिक सारे।
सो धर्म जबे जिय धारे, तब ही सुख अचल निहारे ।।१४।।
सो धर्म मुनिन करि धरिये, तिनकी करतूति उचरिये।
ताको सुनिये भवि प्रानी, अपनी अनुभूति पिछानी ।।१५।।

छठी ढाल

सकलचारित्र एव स्वरूपाचरणचारित्र का
स्वरूप एव फल

षट्काय जीव न हनन तैं, सब विधि दरबहिंसा टरी।
रागादि भाव निवार तै, हिसा न भावित अवतरी ।।१।।

जिनके न लेश मृषा न जल, तृन हू बिना दियौ गहै ।
अठदश सहसविधि शीलधर, चिद्ब्रह्म में नितरमि रहैं ।।२।।
अन्तर चर्तुदस भेद बाहिर, संग दशधातैं टलैं ।
परमाद तजि चौ कर मही लखि, समिति ईर्या ते चलें ।।३।।
जग सुहितकर सब अहितहर, श्रुति सुखद सब संशयहरे ।
भ्रमरोग हर जिनके वचन मुखचन्द्र ते अमृत झरें ।।४।।
छय्यालीस दोष बिना सुकुल, श्रावक तनैं घर अशन को ।
लैं तप बढावन हेत नहिं तन, पोषते तजि रसन को ।।५।।
शुचि ज्ञान संजम उपकरन, लखिकै गहैं लखि कै धरै।
निर्जन्तु थान विलोकि तन मल-मूत्र-श्लेषम परिहरें ।।६।।
सम्यक प्रकार निरोध मन-वच-काय, आतम ध्यावते ।
तिन सुथिर मुद्रा देख मृगगण, उपल खाज खुजावते ।।७।।
रस रूप गंध तथा फरस अरु शब्द शुभ असुहावने ।
तिन में न राग विरोध, पचेन्द्रिय जयन पद पावने ।।८।।
समता सम्हारै थुति उचारैं, वन्दना जिनदेव को ।
नित करैं श्रुति-रति करैं प्रतिक्रम, तजै तन अहमेवं को ।।९।।
जिनके न न्हौंन दंतघोवन, लेश अम्बर आवरन ।
भू माहिं पिछली रयनि में, कछू शयन एकासन करन ।।१०।।
इक बार दिन मे लै अहार,खडे अलप निज-पान मे ।
कचलोंच करत न टरत परिषह, सों लगे निज ध्यान में ।।११।।
अरि-मित्र महल-मसान कंचन-कांच निन्दन-थुतिकरन ।
अर्घावतारन असि प्रहारन में, सदा समता धरन ।।१२।।
तप तपें द्वादश धरैं वृष दश, रतनत्रय सेवै सदा ।
मुनि साथ में वा एक विचरैं, चहैं नहिं भव-सुख कदा ।।१३।।
यो है सकल संयम चरित, सुनिये स्वरूपाचरन अब ।
जिस होत प्रकटै आपनी निधि, मिटै पर की प्रवृत्ति सब ।।१४।।
जिन परम पैनी सुबुधि छैनी डारी अन्तर भेदिया ।
वरणादि अरु रागादि तैं, निजभाव को न्यारा किया ।।१५।।

पूर्ण ज्ञान लोचन जिसके हो वह केवल ज्ञानी होता।
शेष कर्म निज क्षय करता है हर्षित हर प्राणी होता॥

निज मांहि निज के हेतु, निज कर आपको आपै गह्यो।
गुण-गुणी ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय, मंझार कछू भेद न रह्यो ॥१६॥
जहंध्यान-ध्याता-ध्येय को न विकल्प वच-भेद न जहा।
चिद्भाव कर्म चिदेश कर्ता, चेतना किरिया तहा ॥१७॥
तीनों अभिन्न अखिन्न सुध, उपयोग की निश्चल दशा।
प्रगटी जहां दृग-ज्ञान-व्रत, ये तीनधा एकै लसा ॥१८॥
परमाण-नय-निक्षेप को, न उद्योत अनुभव में दिखै।
दृगज्ञान सुख बलमय सदा, नहिं आन भावजु मोविखै ॥१९॥
मैं साध्य साधक मै अबाधक, कर्म अरु तसु फलनि तै।
चित्पिड चड अखड सगुण-करंड, च्युत पुनिकलनि तै ॥२०॥
योचिन्त्य निज मे थिरभये, तिन अकथ जो आनद लह्यो।
सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा, अहमिन्द्र के नाही कह्यो ॥२१॥
तबही शुकल ध्यानाग्नि करि, चउघाति विधि काननदह्यो।
सब लख्यौ केवलज्ञान करि, भविलोकक्कों शिवमग कह्यो ॥२२॥
पुनघाति शेषअघाति विधि, छिनमांहि अष्टम भू बसै।
वसुकर्म विनसै सुगुणवसु, सम्यक्त्व आदिक सब लस ॥२३॥
ससार खार अपार, पारावार तरि तीरहिं गये।
अविकार अचल अरूप शुधि, चिद्रूप अविनाशी भये ॥२४॥
निजमाहि लोक अलोक, गुण परजाय प्रतिबिंबित थये।
रहि हैं अनन्तानन्त काल, यथा तथा शिव परिणये ॥२५॥
धनि धन्य है जे जीव नरभव, पाय यह कारज किया।
तिन ही अनादि भ्रमण पंचप्रकार तजि वरसुख लिया ॥२६॥
मुख्योपचार दु भेद यों, बडभागि रतनत्रय धरैं।
अरु धरेगे ते शिव लहैं, तिन सुयश-जल जग-मल हरे ॥२७॥
इमजानि आलसहानि, साहस-ठानि यह सिख आदरो।
जबलो न रोग जरा गहै, तबलो झटिति निजहित करो ॥२८॥
यह राग-आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये।
चिर भये विषय-कषाय अब तो त्याग निज-पद वेइये ॥२९॥

ज्ञान रहित लोचन से कुछ भी नहीं दृष्टि मे आता है।
सम्यक् दर्शन कभी नहीं वह पल भर को भी पाता है ।।

कहा रच्यौ पर-पद मे न तेरो, पद यहै क्यों दुख सहे ।
अब दौल' होउ सुखी स्व-पद रचि, दावमत चूको यहै ।।३०।।
इक नव वसु इक वर्ष की, तीज शुक्ल बैसाख ।
कर्‌यो तत्व उपदेश यह, लखि बुधजन की भाख ।।३१।।
लगु धी तथा प्रमाद तै, शब्द अर्थ की भूल ।
सुधीसुधार पढो सदा, जो पावो भव-कूल ।।३२।।

समाधिमरण भाषा

कविवर सूरचन्द

(नरेन्द्र छन्द)

वन्दो श्री अरहत, परमगुरू जो सबको सुखदाई ।
इस जग में दु ख जो मै भुगते सो तुम जानो राई ।।
अब मैं अरज करूँ प्रभु तुमसे कर समाधि उर माँही ।
अन्त समय में यह वर मांगू सो दीजै जग राई ।।१।।

भव-भव मे तन धार नये मै भवभव शुभ सङ्ग पायो ।
भव-भव मे नृप रिद्ध लई मैं मात पिता सुत थायो ।।
भव-भव में तन पुरुष-तनों धर, नारी हूँ तन लीनो ।
भव-भव में मै भयो नपुंसक, आतमगुण नहिं चीनो ।।२।।

भव-भव मे सुरपदवी पाई, तामें सुख अति ।
भव-भव मे गति नरकतनी, दुख पाये विधि भोगे ।।
भव-भव मे तिर्यञ्च योनिधर, पायो दु'ख अति भारी ।
भव-भव मे साधर्मीजन को, सङ्ग मिल्यो हितकारी ।।३।।

भव-भव मे जिन पूजन कीनो, दानसुपात्रहिं दीनो ।
भव-भव मे मै समवशरण मे, देख्यो जिनगुण भीनो ।
एती वस्तु मिलि भव भव मे, सम्यकगुण नहिं पायो ।
ना समाधियुत मरण कियो मैं, तातै जग भरमायो ।।४।।

ज्ञानी जन की शुद्ध शलाका आज रहे हो जब गुरुदेव।
तब तुम श्री गुरु चरण वन्दन करना चेतन स्वयमेव ।।

काल अनादि भयो जग भ्रमते, सदा कुमरणहिं कीनों ।
एक बार हूँ सम्यकयुत मै, निज आतम नहिं चीनो ।।
जो निजपर को ज्ञान होय तो, मरण समय दुःख काँई ।
देह विनाशी मैं निजभासी, ज्योतिस्वरूप सदाई ।।५।।

विषयकषायन के वश होकर, देह आपनो जान्यो ।
कर मिथ्या सरधान हियेविच, आतम नाहिं पिछान्यो ।।
यों कलेश हियधार मरणकर, चारो गति भरमायो ।
सम्यकदर्शन-ज्ञान-चरन ये हिरदे में नहि लायो ।।६।।

अब या अरज करूं प्रभु सुनिये, मरण समय यह मांगो ।
रोगजनित पीडा मत होवो, अरु कषाय मत जागो ।।
ये मुझ मरण समय दुःखदाता, इन हर साता कीजै ।
जो समाधियुत मरण होय मुझ, अरु मिथ्यामद छीजै ।।७।।

यह तन सात कुधातमई है, देखत ही घिन आवै ।
चर्म लपेटी ऊपर सोहै, भीतर विष्टा पावै ।।
अति दुर्गन्ध अपावनसो यह मूरख प्रीति बढावै ।
देह विनासी, जिय अविनाशी नित्यस्वरूप कहावै ।।८।।

यह तन जीर्ण कुटीसम आतम, यातैं प्रीति न कीजै ।
नूतन महल मिले जब भाई तब यामैं क्या छीजै ।।
मृत्यु होन से हानि कौन है, याको भय मत लावो ।
समता से जो देह तजोगे, तो शुभतन तुम पावो ।।९।।

मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, इस अवसर के मांही ।
जीरन तन से देत नयो यह, या सम साहू नाहीं ।।
या सेती इस मृत्यु समय पर, उत्सव अति ही कीजै ।
क्लेशभाव को त्याग सयाने, समता भाव धरीजे ।।१०।।

जो तुम पूरब पुण्य किये हैं, तिनको फल सुखदाई।
मृत्युमित्र बिन कौन दिखावे, स्वर्गसम्पदा भाई॥
रागरोष को छोड सयाने, सात व्यसन दुखदाई।
अन्य समय में समता धारो, परभवपन्थ सहाई॥११॥

कर्म महादुठ बैरी मेरो, तासेती दुःख पावै।
तन पिजर मे बन्द कियो मोहि, यासों कौन छुडावे॥
भूख तृषा दुःख आदि अनेकन, इस ही तन मे गाढै।
मृत्युराज अब आय दयाकर, तन पिंजर सों काढे॥१२॥

नाना वस्त्राभूषण मैने इस तन को पहराये।
गन्ध सुगन्धित अतर लगाये, षटरस असन कराये॥
रात दिना मैं दास होयकर, सेव करी तनकेरी।
सो तन मेरे काम न आयो, भूल रह्यो निधि मेरी॥१३॥

मृत्युराय को शरन पाय तन, नूतन ऐसो पाऊँ।
जामे सम्यकरतन तीन लहि आठों कर्म खपाऊँ॥
देखो तन सम और कृतघ्नी, नाहिं सु या जगमाहीं।
मृत्यु समय मे ये ही परिजन, सबही हैं दुखदाई॥१४॥

यह सब मोह बढावन हारे, जियको दुर्गतिदाता।
इनसे ममत निवारो जियरा, जो चाहो सुख साता॥
मृत्यु कल्पद्रुम पाय सयाने, मांगो इच्छा जेती।
समता धरकर मृत्यु करो तो पावो संपत्ति तेती॥१५॥

चौ आराधन सहित प्राण तज, तौ ये पदवी पावो।
हरि प्रतिहरि चक्री तीर्थेश्वर स्वर्गमुकति में जावो॥
मृत्यु कल्पद्रुम सम नहि दाता, तीनों लोक मझारै।
ताको पाय कलेश करो मत, जन्म जवाहर हारे॥१६॥

इस तन मे क्या राचै जियरा, दिन-दिन जीरन हो है।
तेजकांति बल नित्य घटत है, वा सम अथिर सुको है।।
पांचों इन्द्री शिथिल भई अब, श्वास शुद्ध नहिं आवै ।
तापर भी समता नहिं छोडे समता उर नहिं लावै ।।१७।।

मृत्युराज उपकारी जियको तनसो तोहि छुडावै ।
नातर या तनबन्दीग्रह में परयों-परयों बिललावै ।।
पुदगल के परमाणु मिलकै पिण्डरूप तन भासी ।
याही मूरत मैं अमूरती ज्ञान ज्योति गुणखासी ।।१८।।

रोग-शोक आदिक जो वेदन ते सब पुद्गल लारैं ।
मैं तो चेतन व्याधि बिना नित है सो भाव हमारे ।।
या तनसों इस क्षेत्र सम्बन्धी कारण आन बन्यो है ।
खान पान दे याको पोष्यो अब सम भाव ठन्यो है ।।१९।।

मिथ्यादर्शन आत्मज्ञान बिन यह तन अपना जान्यो ।
इन्द्रीभोग गिने सुख मैने, आपो नाहिं पिछान्यो ।।
तन विनशनतैं नाश जान निजयह अयान दुखदायी ।
कुटुम आदि को अपनी जान्यो भूल अनादी छाई ।।२०।।

अब निज भेद जथारथ समझयो मैं हूँ ज्योतिस्वरूपी ।
उपजै विनसै सो यह पुदगल जान्यो याको रूपी ।।
इष्टऽनिष्ट जेते सुख-दु:ख हैं सो सब पुदगल सागै ।
मैं जब अपनो रूप विचारों तब वे सब दु ख भागैं ।।२१।।

विन समता तनऽनंत धरें मै तिनमें ये दु ख पायो ।
शस्त्रघाततैंऽनन्त बार मर नाना योनि भ्रमायो ।।
बार अनन्तहि अग्नि माहि जर मूवो सुमति न लायो ।
सिंह-व्याघ्र अहिऽनन्त बार मुझ नाना दुख दिखायो ।।२२।।

विन समाधि ये दुःख लहे मैं अब उर समता आई ।
मृत्युराज को भय नहिं मानो देवै तन सुखदाई ।।
यातैं जब लग मृत्यु न आवै तबलग जपतप कीजै ।
तप तप बिन इस जग के माहीं कोई भी ना सीजै ।।२३।।

स्वर्ग सम्पदा तपसों पावै तपसो कर्म नसावै ।
तपही सों शिवकामिनिपति ह्यौ यासों तप चित लावै ।।
अब मैं जानी समता बिन मुझ कोऊ नाहि सहाई ।
मात पिता सुत बाधव तिरिया ये सब हैं दुखदाई ।।२४।।

मृत्यु समय मे मोह करें, ये तातैं आरत हो है।
आरततैं गति नीची पावै यों लख मोह तज्यो है ।।
और परिग्रह जेते जग में, तिनसों प्रीत न कीजै ।
परभव में ये सङ्ग न चालैं नाहक आरत कीजे ।।२५।।

जे जे वस्तु लखत हैते पर तिनसो नेह निवारो ।
परगति में ये साथ न चालै, ऐसो भाव विचारो ।।
जो परभव में सङ्ग चलै तुझ, तिनसों प्रीत सु कीजै ।
पंच पाप तज समता धारो, दान चार विध दीजै ।।२६।।

दशलक्षणमय धर्म धरो उर, अनुकम्पा उर लावो ।
षोडशकारण नित्य विचारो, द्वादश भावन भावो ।।
चारौ परवी प्रोषध कीजैं, अशन रात को त्यागो ।
समता धर दुरभाव निवारो, संयमसो अनुरागो ।।२७।।

अन्त समय में यह शुभ भावहि, होवै आनि सहाई ।
स्वर्ग मोक्ष फल तोहि दिखावें ऋद्धि देहिं अधिकाई ।।
खोटे भाव सकल जिय त्यागो, उर में समता लाकैं ।
जासेती गतिचार दूर कर, बसहु मोक्षपुर जाकै ।।२८।।

प्रभु का जन्हन नीर कल कल कर सरिता के सम बहता है।
पान्डुक वन आनद मग्न हो वर्षों तक खुश रहता है।।

मन थिरता करकै तुम चिंतो, चौ आराधन भाई।
ये ही ताको सुखकी दाता, और हितू कोउ नाही।।
आगै बहु मुनिराज भये है तिन गही थिरता भारी।
बहु उपसर्ग सहे शुभ पावन, आराधन उरधारी।।२९।।

तिन मै कछु इक नाम कहूँ मै, सो सुन जिय चित लाकै।
भावसहित अनुमोदे तासों, दुर्गति होय न ताकै।
अरु समता निज उरमें आवै, भाव अधीरज जावै।
यों निशदिन जो उन मुनिवर को, ध्यान हिये विच लावै।।३०।।

धन्य धन्य सुकुमाल महामुनि, कैसे धीरज धारी।
एक श्यालनी जुग बच्चायुत, पाव भख्यो दुखकारी।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दु ख है? मृत्यु महोत्सव भारी।।३१।।

धन्य धन्य जु सुकौशल स्वामी, व्याघ्रीने तन खायो।
तो भी श्रीमुनि नेक डिगे नहि आतम सो हित लायो।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दु ख है ? मृत्यु महोत्सव भारी।।३२।।

देखो गजमुनि के शिर ऊपर, विप्र अगिनि बहु बारी।
शीश जलै जिमि लकडी तिनको तौ भी नाहि चिगारी।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आराधन चित धारी।
तो तुमरे कौन दु ख है? मृत्यु महोत्सव भारी।।३३।।

सनतकुमार मुनि के तन में कष्ट वेदना भारी।
छिन्न-भिन्न तन तासो हूवो तब चिन्त्यो गुण आपी।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आराधन चित धारी।
तन मैं क्षुधावेदना आई तो दुख मैं मुनि नेक न डिगियो।।३४।।

ऐरावत गौरव से प्रभु को सादर शीष झुकाता है।
उन्हे विराजित कर नगरी मत्त चाल से आता है ।।

श्रेणिकसुत गङ्गा मे डूब्यो, तब जिननाम चितार्‌यो ।
धर सलेखना परिग्रह छोड्‌यो, शुद्ध भाव उर धार्‌यो ।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आराधन चित धारी ।
तो तुम्हरे जिय कौन दु ख है? मृत्यु महोत्सव भारी ।।३५।।

समंतभद्रमुनिवर के तन मे–क्षुधावेदना आई ।
तो दु ख मै मुनि नेक न डिगियो चिन्त्यौ निज गुणभाई ।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आराधना चित धारी ।
तो तुमरे जिय कौन दु ख है? मृत्यु महोत्सव भारी ।।३६।।

ललितघटादिक तीस दोय मुन कौशाबीतट जानो ।
नदी में मुनि बहकर मूवे सो दु ख उर नहिं मानो ।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आराधना चित धारी ।
तो तुमरे जिय कौन दु ख है? मृत्यु महोत्सव भारी ।।३७।।

धर्मघोष मुनि चम्पानगरी बाह्य ध्यान धर ठाडे ।
एक मास की कर मर्यादा तृषा दु ख सहे गाढे।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आराधन चित धारी ।
तो तुमरे जिय कौन दु ख है? मृत्यु महोत्सव भारी ।।३८।।

श्रीदत्तमुनि को पूर्वजन्म को वैरी देव सु आके ।
विक्रिय कर दु ख शीततनो सो, सह्यो साध मन लाके ।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आराधन चित धारी ।
तो तुमरे जिय कौन दु ख है? मृत्यु महोत्सव भारी ।।३९।।

वृषभसेन मुनि उष्ण शिलापर, ध्यान धरत मनलाई ।
सूर्यघाम अरु उष्ण पवन की, वेदन सहि अधिकाई ।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आराधन चित धारी ।
तो तुमरे जिय कौन दु·ख है? मृत्यु महोत्सव भारी ।।४०।।

अभयघोषमुनि काकन्दीपुर, महावेदना पाई ।
वैरी चण्डने सब तन छेद्यो, दुख दीनो अधिकाई ।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आराधन चित धारी ।
तो तुमरे जिय कौन दु:ख है? मृत्यु महोत्सव भारी ।।४१।।

विद्युतचर ने बहु दु:ख पायो, तो भी धीर न त्यागी ।
शुभभावनसो प्राण तजे निज, धन्य और बडभागी ।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आराधन चित धारी ।
तो तुमरे जिय कौन दु:ख है? मृत्यु महोत्सव भारी ।।४२।।

पुत्रचिलाती नामा मुनिको, वैरी ने तन घाता ।
मोटे मोटे कीट पडे तन, तापर निज गुण राता ।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आराधन चित धारी ।
तो तुमरे जिय कौन दु ख है? मृत्यु महोत्सव भारी ।।४३।।

दण्डकनामा मुनिकी देहा, बानो कर अरि भेदी ।
तापर नेक डिगे नहि वे मुनि, कर्म महारिपु छेदी ।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आराधन चित धारी ।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ।।४४।।

अभिनन्दन मुनि आदि पाच सौ, घानी पेलि जु मारे ।
तो भी श्रीमुनि समताधारी पूरबकर्म विचारे ।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आराधन चित धारी ।
तो तुमरे जिय कौन दु ख है? मृत्यु महोत्सव भारी ।।४५।।

चाणकमुनि गौघर के माही, मूद अगिनि परजाल्यो ।
श्रीगुरु उर समभाव धारकै, अपनो रुप सम्हाल्यो ।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आराधन चित धारी ।
तो तुमरे जिय कौन दु:ख है? मृत्यु महोत्सव भारी ।।४६।।

सातशतक मुनिवर दु:ख पायो, हथनापुर में जानो ।
वलिब्राह्मणकृत घोरउपद्रव, सो मुनिवर नहिं मानो ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आराधन चित धारी ।
तो तुमरे जिय कौन दु:ख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४७॥

लोहमयी आभूषण गढके, ताते कर पहराये ।
पांचों पाडव मुनि के तनमे, तो भी नांहि चिगाये ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आराधन चित धारी ।
तो तुमरे जिय कौन दु ख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४८॥

सम्यकदर्शन ज्ञान चरन तप, ये आराधन चारों ।
ये ही मोको सुख के दाता, इन्हे सदा उर धारो ॥
यो समाधि उरमाहीं लावो, अपने हित जो चाहो ।
तज ममता अरु आठो, मदका ज्योतिस्वरूपी ध्यावो ॥४९॥

जो कोई नित करत पयानो, ग्रामातर के काजै ।
सो भी शकुन विचारैं नीके, शुभ के कारण साजै ॥
मातपितादिक सर्व कुटुम्ब सब, नीके शकुन बनावैं ।
हलदी धनिया पुङ्गी अक्षत, दूब दही फल लावै ॥५०॥

एक ग्राम जाने कै कारण, करै शुभाशुभ सारे ।
जब परगति को करत पयानो, तब नहि सोचो प्यारे ॥५१॥

सबकुटुम जब रोवन लागै, तोहि रुलावै सारे ।
ये अपशकुन करै सुन तोकों, तू यो क्यो न विचारै ॥
अब परगति को चालत बिरियॉं, धर्मध्यान उर आनो ।
चारों आराधन आराधो, मोहतनो दु ख हानो ॥५२॥

होय नि:शल्य तजो सब दुविधा, आतम राम सुध्यावो ।
जब परगति को करहु पयानो, परम तत्व उर लावो ॥

मोहजाल को काट पियारे, अपने रूप विचारो ।
मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, यों निश्चय उर धारो ॥५३॥

मृत्यु महोत्सव पाठको, पढो सुनो बुधिवान ।
सरधा धर नित सुख लहो, 'सूरचन्द' शिवथान ॥
पञ्च उभय नव एक नभ, सम्वत् सो सुखदाय ।
आश्विन श्यामा सप्तमी, कह्यो पाठ मनलाय ॥५४॥

बारह भावना

कविवर राजमल पवैया

अनित्य भावना

सम्राट राजराजेश्वर नृप, देवेन्द्र नरेन्द्र बली अविजित ।
कोई न अमर होकर आया है, मृत्यु समय सबका निश्चित ॥
तन योवन धन वैभव परिजन, सयोगो का है क्षणिक नृत्य ।
चितन अनित्य भावना श्रेष्ठ है, आत्म द्रव्य ही एक नित्य ॥१॥

अशरण भावना

सुत मात पिता भ्राता भगिनी, बाधव बेबस हो जाते है ।
चक्री देवादिक मत्र तत्र, मरने से रोक न पाते हे ॥
अशरण है कोई शरण नही, है आत्म ज्ञान ही एक शरण ।
निज शरण प्राप्त करले चेतन, निश्चित होगा भवकष्टहरण ॥२॥

ससार भावना

यह जीव जगत मे जन्म मरण, अरु जरा रोग से हुआ दुखी।
पर द्रव्यो की लिप्सा मे लय, जग मे देखा कोई न सुखी ॥
सुर नर तिर्यच नारकी, सब जड कर्मो के अधीन हुए ।
जिसने स्वभाव को पहचाना, ससार त्याग स्वाधीन हुए ॥३॥

बिन समकित के मोक्षमार्ग पर कभी न आने पाएगा।
केवल पुण्य भाव मे रहकर तू निगोद मे जाएगा ॥

एकत्व भावना

यह जीव अकेला आता है, यह जीव अकेला ही जाता ।
शुभ अशुभ कर्म का फल भी तो, यह जीव अकेला ही पाता ॥
पर में कर्तृत्वबुद्धि मानी, इसलिए दुखी होता आया ।
पर से विभक्त निज शुद्ध रूप, एकत्व भाव अब उर भाया ॥४॥

अन्यत्व भावना

अपना तन अपना नही, अरे तो कोई क्या होगा अपना ।
सुत पत्नि वैभव राज्य आदि, अपनेपन का झूठा सपना ॥
पर द्रव्य नही कोई अपना, अपनत्व मोह मैंने त्यागा ।
मै चिदानद चैतन्य रूप, अन्यत्व भाव चिन्तन जागा ॥५॥

अशुचि भावना

मल मूत्र मांस मज्जा लोहू से, देह अपावन भरी हुई ।
ढांचा है घृणित हड्डियो का, ऊपर से चमडी चढी हुई ॥
दिन रात गलित मल बहता है, नव द्वारो से आती है घिन ।
शुचिमय पवित्र मै चेतन हूँ, है अशुचि भावना का चिन्तन ॥६॥

आश्रव भावना

शुभ अशुभ भाव के द्वारा ही,कर्मों का आश्रव है होता ।
वसु कर्म बन्ध होते रहते, संसारी जीव दुखी होता ॥
आश्रव दुख का निर्माता है, परिवर्तन पंच कराता है।
निज का जो अवलबन लेता, आश्रव को सहज हराता है ॥७॥

संवर भावना

आश्रव का रूकना संवर है, शुभ अशुभ भाव का नाशक है ।
शुद्धोपयोग है धर्मध्यान सवर, नित ज्योति प्रकाशक है ॥
जग के विकल्प से रहितसदा, अविकल्प आत्मा शुद्ध विमल ।
निश्चय से शुद्धस्वभावी है गुण ज्ञान अनंत सहित अविकल॥८॥

बिन समकित के कोई भी मुनि श्रेणी चढ पाया न कभी।
बिना चढ़े श्रेणी कोई शिवपद पर बढ़ पाया न कभी ॥

निर्जरा भावना

सविपाक अकाम निर्जरा तो, चारो गतियो मे होती है ।
अविपाक सकाम निर्जरा ही, कर्मो के मल को धोती है ॥
मैं ज्ञान ज्योति प्रज्जवलित करूं, निर्जरा करू तप के द्वारा ।
निश्चय रत्नत्रय धारण से, निज सूर्य प्रकट हो उजियारा ॥९॥

लोक भावना

जीवादिक छह द्रव्यो से है, परिपूर्ण अनादि अनन्त लोक ।
पुद्गल और जीव अधर्म धर्म, आकाश काल मय सर्व लोक ॥
इस लोक बीच चारो गति मे, मै तो अनादि से भटक रहा ।
शुभ अशुभ के कारण ही, विन ज्ञान लोक में अटक रहा ॥१०॥

बोधिदुर्लभ भावना

अहमिन्द्र देवपद प्राप्ति, सरल पाचो इन्द्रिय के भोग सुलभ ।
मिथ्यात्व मोह के कारण ही है, सम्यक् ज्ञान महा दुर्लभ ॥
निजपर विवेक जागृत हो तो निज को निज पर को पर मानूं।
हो सम्यक्ज्ञान सहजमुझको, निजआत्मतत्व ही को जानू॥११॥

धर्म भावना

सददर्शन ज्ञान चरित्ररूप, रत्नत्रय धर्म महा सुखकर ।
उत्तम क्षमादिदश धर्मश्रेष्ठ, निज आत्मधर्म ही भवदुखहर ॥
मैं धर्म भावना चितन कर, भव रज को दूर हटाऊंगा ।
शाश्वत अविनाशी सिद्धस्वपद, निज मे निज से प्रगटाऊंगा ॥१२॥
द्वादश भावना चिंतवन से, वैराग्य भाव उर मे आता ।
जो निज पर रूप जान लेता, वह स्वय सिद्धवत हो जाता ॥
निर्वाण प्राप्त हो जाता है, जग के बन्धन कट जाते है ।
निज अनादि अनत समाधि प्राप्त, होते भवदुख मिट जाते है ॥

卐

जिसका सदाचार अच्छा है वह ही समकित पाता है।
शुद्ध स्वरूपाचरण प्राप्त कर मोक्षमार्ग पर आता है॥

बारह भावना

कविवर भूधरदास

राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी अपनी बार॥१॥

दल बल देई देवता, मात पिता परिवार।
मरती विरियाँ जीव को, कोऊ न राखन हार॥२॥

दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णा वश धनवान।
कहूँ न सुख ससार मे, सब जग देख्यो छान॥३॥

आप अकेला अवतरे, मरै अकेला होय।
यूँ कब हूँ इस जीव को, साथी सगा न कोय॥४॥

जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपना कोय।
घर सम्पत्ति पर प्रगट ये, पर है परिजन लोय॥५॥

दिपै चाम चादर मढी, हाड पींजरा देह।
भीतर या सम जगत में, और नहीं घिन गेह॥६॥

मोह नींद के जोर, जगवासी घूमै सदा।
कर्म चोर चहुँ ओर, सरवस लूटै सुध नही॥७॥

सतगुरु देय जगाय, मोह नीद जब उपशमैं।
तब कछु बने उपाय, कर्म चोर आवत रूकैं॥८॥

ज्ञान दीप तप तेल भर, घर शोधै भ्रम चोर।
या विधि बिन निकसैं नहीं, बैठे पूरव चोर॥९॥

पच महाव्रत सचरन, समिति पंचपरकार।
प्रबल पच इन्द्रिय विजय, धार निर्जरा सार॥१०॥

सदाचार भी नहीं पास मे तो फिर जप तप व्रत कैसा।
बिना नीव के भवन बनाने वाले कारीगर जैसा ॥

चौदह राज उतंग नभ, लोक पुरुष संठान ।
तामें जीवन अनादि ते, भरमत है बिन ज्ञान ॥११॥

धन कन कचन राज सुख, सबहि सुलभकर जान ।
दुर्लभ है संसार मे, एक जथारथ ज्ञान ॥१२॥

जाँचे सुर तरु देय सुख, चिन्तन चिन्ता रैन ।
बिन जॉचे बिन चिन्तये, धर्म सकल सुख दैन ॥१३॥

भजन

जिनवर के दर्शन पूजन से, पापो का पुज प्रलय होता ।
जिनश्रुत बचनामृत सुनने से, विपरीत विभाव विलय होता ॥
जिनरूप दिगम्बर दर्शन से मन रूप मयूर मुदित होता ।
निजनाथ निरजन अनुभव से समकित का सूर्य उदय होता ॥
यह रहस्य जो जानते-जिनपूजन का बन्धु ।
जिन सम निज को जानकर पाते है सुखसिन्धु ॥

सामयिक करने की विधि

शरीर से शुद्ध होकर शुद्ध वस्त्र पहनकर किसी मन्दिर आदि एकान्त स्थान मे सामायिक करना चाहिए। प्रत्येक दिशा मे तीन आवर्त व एक शिरोनति करके नमस्कार पूर्वक अपने आसन पर बैठना चाहिए व सामायिक की प्रत्येक क्रिया को मनपूर्वक करना चाहिए। मन को पवित्र रखना चाहिए, जब तक सामायिक पूर्ण न हो अपने आसन को नही छोडना चाहिए। छोटे बालकों को अपने पास नही बैठाना चाहिए।

सामयिक के बाद एक वृहत् कायोत्सर्ग करना चाहिए जिसमे कम से कम २७ बार या १०८ बार णमोकार मन्त्र का जाप करना चाहिए। सामयिक के समय दृष्टि व मन पर कडा नियन्त्रण रखना चाहिए। अन्त मे पूर्ववत् ही दिशावन्दन करना चाहिए।

सुदृढ नीव समकित कहीं तो मुक्ति गवन होता निर्वाण।
बिना किसी भय के यह प्राणी पा लेता है पद निर्वाण ॥

सामायिक पाठ

कविवर महाचन्द कृत

॥ प्रथम प्रतिक्रमण कर्म ॥

काल अनन्त भ्रम्यो जग में सहिये दुख भारी ।
जन्म-मरण नित किये पापको है अधिकारी ॥
कोटि भवातर माहिं मिलन दुर्लभ सामायिक ।
धन्य आज मैं भयो जोग मिलियो सुखदायक ॥१॥
हे सर्वज्ञ जिनेश ! किये जे पाप जु मै अब ।
ते सब मन-वच-काय योग की गुप्ति बिना लाभ ॥
आप समीप हजूर माहि मैं खडो खडो सब ।
दोष कहूँ सो सुनो करो नठ दु ख देहि जब ॥२॥
क्रोध मान मद लोभ मोह माया वशि प्रानी ।
दु·ख सहित जे किये दया तिनकी नहि आनी ॥
बिना प्रयोजन एकेन्द्रिय वि ति चउ पंचेन्द्रिय ।
आप प्रसादहि मिटै दोष जो लग्यो मोहि जिय ॥३॥
आपस मे इकठौर थापकरि जे दुख दीने ।
पेलि दिये पगतलै दाबि करि प्राण हरी ने ॥
आप जगत के जीव जिते तिन सबके नायक ।
अरज करूँ मै सुनो दोष मेटो दुखदायक ॥४॥
अंजन आदिक चोर महा घनघोर पापमय ।
तिनके जे अपराध भये ते क्षमा क्षमा किय ॥
मेरे जे अब दोष भये ते क्षमहु दयानिधि ।
यह पडिकोणो कियो आदि षट्कर्म माहिं विधि ॥५॥

॥ द्वितीय प्रत्याख्यान कर्म ॥

जो प्रमादवशि होय विराधे जीव घनेरे ।
तिनको जो अपराध भयो मेरे अघ ढेरे ॥
सो सब झूठो होऊ जगतपति के परसादै ।
जा प्रसाद तैं मिलै सर्व सुख दु·ख न लाधै ॥६॥

मै पापी निर्लज्ज दयाकरि हीन महाशठ ।
किये पाप अघ ढेर पापमति होय चित्त दुठ ॥
निंदूँ हूँ मैं बार बार निज जिय को गरहूँ ।
सब विधि धर्म उपाय पाय फिर पापहिं करहूँ ॥७॥
दुर्लभ है नरजन्म तथा श्रावक कुल भारी ।
सत संगति सयोग धर्म निज श्रद्धा धारी ॥
जिन वचनामृत धार समावर्ते जिनवाणी ।
तोहू जीव सहारे धिक् धिक् धिक् हम जानी ॥८॥
इन्द्रियलपट होय खोय निज ज्ञान जमा सब ।
अज्ञानी जिमि करै तिसि विधि हिंसक ह्वै अब ॥
गमनागमन करतो जीव विराधे भोले ।
ते सब दोष किये निन्दूँ अब मन वच तोले ॥९॥
आलोचन विधि थकी दोष लागे जु घनेरे ।
ते सब दोष विनाश होउ तुमतै जिन मेरे ॥
बार बार इस भांति मोह मद दोष कुटिलता ।
ईर्षादिक तें भये निदिये जे भयभीता ॥१०॥

॥तृतीय सामयिक भाव कर्म ॥

सब जीवन में मेरे समता भाव जग्यो है ।
सब जिय मो सम समता राखो भाव लग्यो है ॥
आर्त्तरौद्र द्वय ध्यान छाडि करिहूं सामायिक ।
संयम मो कब शुद्ध होय यह भावबधायक ॥११॥
पृथ्वी जल अरु अग्नि वायु चउकाय वनस्पति ।
पंचहि थावरमाहिं तथा त्रय जीव बसैं जित ॥
बे इन्द्रिय तिय चउ पंचेन्द्रिय माहिं जीव सब ।
तिन तैं क्षमा कराऊं मुझ पर क्षमा करो अब ॥१२॥
इस अवसर मे मेरे सब सम कंचन अरु तृण ।
महल मसान समान शत्रु मित्रहिं सम समगण ॥
जामन मरण समान जानि हम समता कीनी ।

सामायिक का काल जितै यह भाव नवीनी ।।१३।।
मेरो है इक आतम तामें ममत जु कीनो ।
और सबै मम भिन्न जानि समतारस भीनो ।।
मात पिता सुत बन्धु मित्र तिय आदि सबै यह ।
मोसे न्यारे जानि जथारथ रूप करयो गह ।।१४।।
मैं अनादि जगजाल माहि फंसि रूप न जाण्यो ।
एकेन्द्रियद्वि आदि जतुको प्राण हराण्यो ।।
ते सब जीव समूह सुनो मेरी यह अरजी ।
भव भव को अपराध छिमा कीज्यो करि मरजी ।।१५।।

।। चतुर्थ स्तवन कर्म ।।

नमों वृषभ जिनदेव अजित जिन जीत कर्म को ।
सम्भव भवदुखहरण करण अभिनन्दन शर्म को ।।
सुमतिसुमति दातार तार भवसिन्धु पार कर ।
पदमप्रभु पद्माभ भानि भव भीति प्रीति धर ।।१६।।
श्री सुपार्श्व कृतपाश नाश भव जास शुद्ध कर ।
श्री चन्द्रप्रभ चंद्रकांति सम देह काति धर ।।
पुष्पदंत दमि दोषकोश भविपोष रोषहर ।
शीतल शीतल करण हरण भव ताप दोषहर ।।१७।।
श्रेयरूप जिनश्रेय ध्येय नित सेय भव्यजन ।
वासुपूज्य नितपूज्य वासवादिक भयभयहन ।।
विमल विमलमति देत अन्तगत हैं अनन्त जिन ।
धर्मशर्म शिवकरण शांति जिन शांतिविधायिन ।।१८।।
कुन्थकुन्थमुख जीवपाल अरनाथजाल हर ।
मल्लि मल्लसम मोहमल्लमारन प्रचार धर ।।
मुनिसुव्रत व्रतकरण नमतसुरसंघ हि नमि जिन ।
नेमिनाथ जिननमि धर्म रथमांहिं ज्ञानधन ।।१९।।
पार्श्वनाथ जिन पार्श्व उपलसम मोक्षरमापति ।

दुष्ट पुरुष सग रहने से नरको मे रहना अच्छा है।
नाना पीड़ा सहना अच्छा पर दु सग न अच्छा है ॥

वर्द्धमान जिन नमूँ वमूँ भव दुख कर्मकृत ॥
या विधि मैं जिन सघरूप चौबीस संख्यधर ॥
स्तवूँनमूँ हूं बार बार बन्दूं शिव सुखकर ॥२०॥

॥ पंचम वंदना कर्म ॥

बन्दूँ मैं जिनवीर धीर महावीर सुसन्मति ।
वर्द्धमान अतिवीर वंदिहूँ मनवचतन कृत ॥
त्रिशला तनुज महेशधीश विद्यापति बदूँ ।
बदूँ नितप्रति कनकरूप तनु पाप निकंदूँ ॥२१॥
सिद्धारथ नृप नद द्वन्द दुःख दोष मिटावन ।
दुरित दवानल ज्वलित ज्वाल जग जीव उधारन ॥
कुन्डग्राम करि जन्म जगत जिय आनंद कारन ।
वर्ष बहत्तर आयु पाय सब ही दुख टारन ॥२२॥
सप्तहस्त तनु तुंग भंगकृत जन्म मरण भय ।
बालब्रह्ममय ज्ञेय हेय आदेय ज्ञानमय ॥
दे उपदेश उधारि तारि भवसिधु जीवघन ।
आप बसे शिव माहिं ताहिं बंदो मनवचतन ॥२३॥
जाके बंदन थकी दोष दुख दूरहि जावै ।
जाके बदन थकी मुक्तितिय सन्मुख आवै ॥
जाके बंदन थकी वंद्य होवें सुरगन के ।
ऐसे वीर जिनेश बदि हूँ पदयुग तिनके ॥२४॥
सामायिक षट्कर्ममाहिं बंदन यह पंचम ।
बंदो वीर जिनेन्द्र इद्रशतवंद्य वंद्य मम ॥
जन्ममरण भय हरो, करो अघ शांति शांतिमय ।
मैं अघकोष सुपोष दोष को दोष विनाशय ॥२५॥

॥ षष्टम् कायोत्सर्ग कर्म ॥

कायोत्सर्ग विधान करूं अंतिम सुखदाई ।
काय त्यजनमय होय काय सबको दुखदाई ॥
पूरब दक्षिण नमूं दिशा पश्चिम उत्तर मैं ।

जिनगृह वंदन करूं हरूं भव पाप तिमिर मैं ।।२६।।
शिरोनति मैं करूं नमूं मस्तक कर धरिकै ।
आवर्तादिक क्रिया करूं मन वच मद हरिके ।।
तीन लोक जिन भवन माहिं जिन हैं जु अकृत्रिम ।
कृत्रिम हैं द्वय अर्द्धद्वीपमाहीं बंदो जिन ।।२७।।
आठ कोडि परि छप्पन लाख जू सहस सत्याणूं ।
चार शतक पर अस्सी एक जिन मंदिर जाणूं ।।
व्यंतर ज्योतिषि माहिं संख्यरहिते जिन मंदिर ।
ते सब बंदन करूं हरहू मम पाप-संघकर ।।२८।।
सामायिक समनाहिं और कोऊ बैर मिटायक ।
सामायिक समनाहिं और कोऊ मैत्री दायक ।।
श्रावक अणुव्रत आदि अंत सप्तम गुण थानक ।
यह आवश्यक किये होय निश्चय दुखहानक ।।२९।।
जे भवि आतम काज मरण उद्यम के धारी ।
ते सब काज विहाय करो सामायिक सारी ।।
राग द्वेष मद मोह क्रोध लोभादिक जे सब ।
बुध महाचन्द्र विलाय जाय तातै कीज्यो अब ।।३०।।

आलोचना पाठ

प जौहरीलाल

(दोहा)

बंदों पांचों परम-गुरु, चौबीसों जिनराज ।
करूं शुद्ध आलोचना, शुद्धिकरनके काज ।।१।।

(सखी छन्द)

सुनिये जिन अरज हमारी, हम दोष किये अति भारी ।
तिनकी अब निवृति काज तुम सरन लही जिनराज ।।२।।
इक बे. ते चउ इंदी वा, मनरहित सहित जे जीवा ।

तिनकी नहिं करुणा धारी, निरदइ ह्वै घात विचारी ॥३॥
समरंभ समारंभ आरंभ, मन वच तन कीने प्रारंभ ।
कृत कारित मोदन करिकै, क्रोधादि चतुष्टय धरिकैं ॥४॥
शत आठ जु इमि भेदनतैं, अघ कीने परिछेदनतै ।
तिनकी कहुँ कोलो कहानी, तुम जानत केवलज्ञानी ॥५॥
विपरीत एकांत विनयके, संशय अज्ञान कुनयके ।
वश होय घोर अघ कीने, वचतैं नहिं जाय कहीने ॥६॥
कुगुरन की सेवा कीनी, केवल अदयाकरि भीनी ।
याविधि मिथ्यात भ्रमायो, चहुँगति मधि दोष उपायो ॥७॥
हिंसा पुनि झूठ जु चोरी, पर-वनितासो दृग जोरी ।
आरभ परिग्रह भीनो, पन पाप जुया विधि कीनो ॥८॥
सपरस रसना घ्राननको, चखु कान विषय-सेवनको ।
बहु करम किये मनमाने, कछु न्याय अन्याय न जाने ॥९॥
फल पच उदबर खाये, मधु मास मद्य चित चाये ।
नहिं अष्ट मूलगुण धारी, विसनन सेये दुखकारी ॥१०॥
दुइवीस, अभख जिन गाये, सो भी निस दिन भुंजाये ।
कछु भेदाभेद न पायो, ज्यो त्यों करि उदर भरायो ॥११॥
अनंतानु जु बधी जानो, प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो ।
सज्वलन चौकरी गुनिये, सब भेद जु षोडश सुनिये ॥१२॥
परिहास अरति रति शोक, मय ग्लानि त्रिवेद संयोग ।
पनवीस सु भेद भये इम, इनके वश पाप किये हम ॥१३॥
निद्रावश शयन कराई, सुपने मधि दोष लगाई ।
फिर जागि विषय-वन धायो, नानाविध विष-फल खायो ॥१४॥
आहार विहार निहारा, इनमें नहिं जतन विचारा ।
बिन देखी धरी उठाई, विन शोधी वस्तु जु खाई ॥१५॥
तब ही परमाद सतायो, बहुविधि विकलप उपजायो ।
कछु सुधि बुधि नाहिं रही है, मिथ्या मति छाय गई है ॥१६॥
मरजादा तुम ढिंग लीनी, ताहूँ में दोष जु कीनी ।

गृहस्थाश्रम की शोभा है भक्तिदान व्रत तत्वाभ्यास।
इसके बिन यह गृहस्थाश्रम मानो है पशुओ का वास ॥

भिन्न-भिन्न अब कैसे कहिये, तुम ज्ञानविषैं सब पइये ॥१७॥
हा हा ! मैं दुठ अपराधी, त्रस-जीवन-राशि विराधी ।
थावरकी जतन न कीनी, उर में करुणा नहिं लीनी ॥ ८॥
पृथिवी बहु खोद कराई, महलादिक जांगा चिनाई ।
पुनि विन गाल्यो जल ढोल्यो,पंखातैं पवन विलोल्यो ॥१९॥
हा हा ! मै अदयाचारी, बहु हरितकाय जु विदारी ।
तामधि जीवन के खंदा, हम खाये धरि आनंदा ॥२०॥
हा हा ! परमाद बसाई, बिन देखे अगनि जलाई ।
तामधि जे जीव जु आये, ते हू परलोक सिधाये ॥२१॥
बींध्यो अन राति पिसायो, ईधन बिन सोधि जलायो ।
झाडू ले जाँगा बुहारी, चिवटी आदिक जीव बिदारी ॥२२॥
जल छानि जिवानी कीनी, सो हू पुनि डारि जु दीनी ।
नहिं जल-थानक पहुचाई, किरिया बिन पाप उपाई ॥२३॥
जल मल मोरिन गिरवायो, कृमि-कुल बहु घात करायो ।
नदियन बिच चीर धुवाये, कोसन के जीव मराये ॥२४॥
अन्नादिक शोध कराई, तामैं जु जीव निसराई ।
तिनका नहि जतन कराया, गलियारै धूप डराया ॥२५॥
पुनि द्रव्य कमावन काज, बहु आरंभ हिसा साज ।
किये तिसनावश अघ भारी, करुना नहिं रच विचारी ॥२६॥
इत्यादिक पाप अनता, हम कीने श्री भगवंता ।
सतति चिरकाल उपाई, वानी तैं कहिय न जाई ॥२७॥
ताको जु उदय जब आयो, नानाविध मोहि सतायो ।
फल भुंजत जिय दुख पावै वचतै कैसे करि गावै ॥२८॥
तुम जानत केवलज्ञानी, दुख दूर करो शिवथानी ।
हम तो तुम शरण लही है, जिन तारन विरद सही है ॥२९॥
जो गांवपती इक होवे, सो भी दुखिया दुख खोवै ।
तुम तीन भुवनके स्वामी, दुख मेटहू अंतरजामी ॥३०॥
द्रोपदिको चीर बढायो, सीताप्रति कमल रचायो ।

अंजन से किये अकामी, दुख मेटयो अंतरजामी ॥३१॥
मेरे अवगुन न चितारो, प्रभु अपनो विरद सम्हारो ।
सब दोषरहित करि स्वामी, दुख मेटहु अंतरजामी ॥३२॥
इंद्रादिक पद नहिं चाहूँ, विषयनि में नाहिं लुभाऊँ ।
रागादिक दोष हरीजै, परमातम निज-पद दीजै ॥३३॥

दोहा

दोषरहित जिनदेवजी, निजपद दीज्यो मोय ।
सब जीवन के सुख बढै, आनंद मंगल होय ॥३४॥
अनुभव माणिक पारखी, "जोहरि" आप जिनन्द ।
ये ही वर मोहि दीजिये, चरन शरन आनन्द ॥३५॥

आचार्य अमितगति कृत-भावना द्वात्रिंशति पद्यानुवाद

श्री जुगल किशोर जी 'युगल'

प्रेम भाव हो सब जीवों से, गुणी जनों में हर्ष प्रभो ।
करुणा-स्रोत बहे दुखियों पर, दुर्जन मे मध्यस्थ विभो ॥१॥
यह अनन्त बल-शील आतमा, हो शरीर से भिन्न प्रभो ।
ज्यो होती तलवार म्यान से, वह अनन्त बल दो मुझको ॥२॥
सुख-दुख वैरी बन्धु वर्ग में, काच-कनक में समता हो ।
वन-उपवन प्रसाद कुटी में, नही खेद नहिं ममता हो ॥३॥
जिस सुन्दरतम पथकर चलकर, जीते मोह मान मन्मथ ।
वह सुन्दर पथ ही प्रभु ! मेरा, बना रहे अनुशीलन पथ ॥४॥
एकेंद्रिय आदिक प्राणी की, यदि मैने हिंसा की हो ।
शुद्ध हृदय से कहता हूं वह निष्फल हो दुष्कृत्य प्रभो ॥५॥
मोक्षमार्ग प्रतिकूल प्रवर्तन, जो कुछ किया कषायों से ।
विपथ-गमन सब कालुष मेरे, मिट जावे सद्भावों से ॥६॥
चतुर वैद्य विष विक्षत करता, त्यों प्रभु ! मैं भी आदि उपांत ।
अपनी निंदा आलोचन से, करता हूँ पापो को शान्त ॥७॥
सत्य "अहिंसादिक व्रत मे भी, मैने हृदय मलीन किया ।

व्रत विपरीत-प्रवर्तन करके, शीलाचरण विलीन किया ॥८॥
कभी वासना की सरिता का, गहन सलिल मुझ पर छाया।
पी पीकर विषयों की मदिरा, मुझमें पागलपन आया ॥९॥
मैंने छली और मायावी, हो असत्य-आचरण किया।
पर-निन्दागाली चुगली जो, मुंह पर आया वमन किया ॥१०॥
निरभिमान उज्जवल मानस हो, सदा सत्य का ध्यान रहे।
निर्मलजल की सरिता सदृश, हिय में निर्मल ज्ञान बहे ॥११॥
मुनि चक्री शक्री के हिय में, जिस अनन्त का ध्यान रहे।
गाते वेद पुराण जिसे वह, परम देव मम हृदय रहे ॥१२॥
दर्शन-ज्ञान स्वभावी जिसने, सब विकार ही वमन किये।
परम ध्यान गोचर परमातम, परम देव मम हृदय रहे ॥१३॥
जो भव-दु ख का विध्वंसक है, विश्व-विलोकी जिसका ज्ञान।
योगी-जन के ध्यानगम्य वह, बसे हृदय में देव महान ॥१४॥
मुक्ति मार्ग का दिग्दर्शक है, जन्म मरण से परम अतीत।
निष्कलक त्रैलोक्य-दर्शि वह, देव रहे मम हृदय समीप ॥१५॥
निखिल विश्व के वशीकरण मे, राग रहे ना-द्वेष रहे।
शुद्ध अतींद्रिय ज्ञान स्वरूपी, परम देव मम हृदय रहे ॥१६॥
देख रहा जो निखिल विश्व को, कर्म-कलंक-विहीन विचित्र।
स्वच्छ विनिर्मल निर्विकार वह, देव करे मम हृदय पवित्र ॥१७॥
कर्म-कलक अछूत न जिसका, कभी छू सके दिव्य प्रकाश।
मोह तिमिर को भेद चला जो, परमशरण मुझको वह आप्त ॥१८॥
जिसकी दिव्य ज्योति के आगे, फीका पडता सूर्य प्रकाश।
स्वयं ज्ञानमयस्वपर-प्रकाशी, परमशरण मुझको वह आप्त ॥१९॥
जिसके ज्ञानरूप दर्पण में, स्पष्ट झलकते सभी पदार्थ।
आदिअत से रहित शांत शिव, परमशरण मुझको वह आप्त ॥२०॥
जैसे अग्नि जलाती तरु को, तैसे नष्ट हुए स्वयमेव।
भय-विषाद चिन्ता सब जिसके, परमशरण मुझको वह देव ॥२१॥
तृण, चौकी शिल, शैलशिखर नहिं, आत्म समाधि के आसन।

पचाचार पालते प्रतिपल धर्म अकिंचन के अवतार।
क्षमाशील गुण से भूषित हो आने देते नहीं विकार।।

संस्तर, पूजासंग सम्मिलन, नहीं समाधी के साधन ।।२२।।
इष्ट-वियोग अनिष्ट योग मे, विश्व मनाता है मातम ।
हेयसभी हैं विश्व वासना, उपादेय निर्मल आतम ।।२३।।
बाह्य जगत कुछ भी नहि मेरा, और न बाह्य जगत का मैं ।
यह निश्चयकर छोड बाह्य को, मुक्त हेतु नित स्वस्थ रमें ।।२४।।

आराधना पाठ

प द्यानतरायजी

मैं देव नित अरहन्त चाहूँ, सिद्ध का सुमिरन करौं।
मैं सुर गुरु मुनि तीन पद, ये साधु पद हिरदय धरौ ।।
मैं धर्म करुणामयी चाहूँ, जहाॅ हिंसा रंच ना।
मैं शास्त्र ज्ञान विराग चाहूँ, जासु में परपच ना ।।१।।

चौबीस श्री जिनदेव चाहूँ, और देव न मन बसै।
जिन बीस क्षेत्र विदेह चाहूँ, वदिते पातक नसे ।।
गिरनार शिखर सम्मेद चाहूँ, चम्पापुरी पावापुरी।
कैलाश श्री जिनधाम चाहूँ, भजत भाजे भ्रम जुरी ।।२।।

नव तत्व का सरधान चाहूँ, और तत्व न मन धरौ ।
षट् द्रव्य गुण परजाय चाहूँ, ठीक तासौं भय हरौं ।।
पूजा परम जिनराज चाहूँ, ताप नही लागे कदा।
तिहुँ काल की मै जाप चाहूँ, पाप नही लागे कदा ।।३।।

सम्यक्त्व दर्शन ज्ञान चारित्र, सदा चाहूँ भाव सो।
दशलक्षणी मैं धर्म चाहूँ, महा हर्ष उछाव सो ।।
सोलह जु कारण दुख निवारण, सदा चाहूँ प्रीति सो।
मै नित अठाई पर्व चाहूँ, महामगल रीति सो ।।४।।

मै वेद चारो सदा चाहूँ, आदि अन्त निवाह सों।
पाये धरम के चार चाहूँ, अधिक चित्त उछाह सो ।।

मुनियों को एकान्तवास मे आत्मानद सुहाता है।
सुख दुख हर्ष विषाद न उर मे साम्यभाव ही भाता है ॥

मैं दान चारों सदा चाहूँ, भुवनवशि लाहो लहूँ।
आराधना मै चार चाहूँ, अन्त में ये ही गहूँ ॥५॥

भावना बारह जु भाऊँ, भाव निरमल होत है।
मै व्रत जु बारह सदा चाहूँ, त्याग भाव उद्योत हैं ॥
प्रतिमा दिगम्बर सदा चाहूँ, ध्यान आसन सोहना।
वसुकर्म ते मैं छुटा चाहूँ, शिव लहूँ जहँ मोह ना ॥६॥

मै साधुजन को संग चाहूँ, प्रीति तिनही सो करौं।
मै पर्व के उपवास चाहूँ, आरभ मैं सब परिहरों ॥
इस दुखद पचम काल माहीं, सुकुल श्रावक मै लह्यो।
अरू महाव्रत धरि सको, नाहीं निबलतन मैने गह्यो ॥७॥

आराधना उत्तम सदा चाहूँ, सुनो रे जिनराय जी।
तुम कृपानाथ अनाथ "द्यानत", दया करना न्याय जी ॥
वसुकर्म नाश, विकाश ज्ञानप्रकाश मुझको दीजिये।
करि सुगति गमन, समाधि मरण सुभक्ति चरनन दीजिये ॥८॥